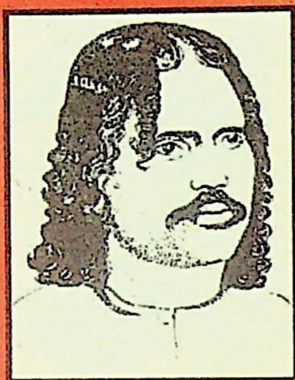
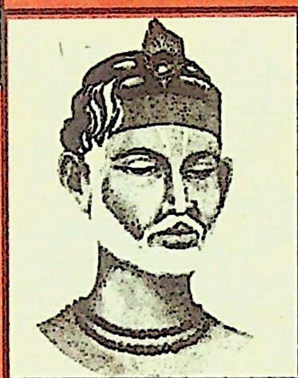
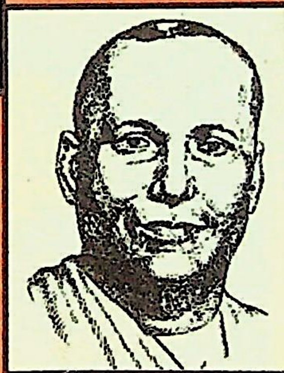
कवि समीक्षा







श्यामला कान्त वर्मा

कवि-समीक्षा

लेखक
डॉ श्यामला कान्त वर्मा

संजय बुक सेन्टर, गोलघर, वाराणसी

ISBN-81-86135-94-4

प्रकाशक : संजय बुक सेन्टर
K.38/6, गोलघर
वाराणसी -221001
फोन नं0 : 0542-2333504

संस्करण : द्वितीय संस्करण -

मूल्य : **Rs. 80.00**

मुद्रक एवं शब्द संयोजन : कुसुम प्रेस
कतुआपुरा, वाराणसी

KAVI SAMIKSHA - By Dr. Shyamla Kant Verma

अनुक्रमणिका



अपनी बात

वर्ण्य-वस्तु का सम्यक् ज्ञान पाठकों को हो सके, इस दृष्टि से टीकाएं और समीक्षाएं लिखी जाती रहीं हैं। समीक्षक और आचार्य के कार्य में एक प्रकार की समानता होती है अर्थात् ये दोनों ही रचना और रचनाकार के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी देते हैं। कवियों पर विचार करते समय समीक्षक उनके जीवन और कृतियों से पाठकों को परिचित कराता है तथा उनकी काव्य-कला पर प्रकाश डालता है। इसी समीक्षक-कर्म को स्वीकार कर 'कवि-समीक्षा' का भी लेखन किया गया। पूर्व में इसे 'आनन्द पुस्तक भवन' ने प्रकाशित किया था। पाठकों ने इससे लाभ प्राप्त किया और इसकी सराहना की। अब इसे पुनः प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। इस नये संस्करण में पूर्व की अपेक्षा अधिक कवियों पर विचार किया गया है। कवियों और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी दे सकने में यह पुस्तक सहायक होगी, यह मेरा विश्वास है।

श्यामला कान्त वर्मा

'कालिका-धाम'
सी० २३/२८-क-२,
कबीर चौरा वाराणसी
२२१००१

हिन्दी कविता का विकास

ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन पुस्तक है। उसकी भाषा वैदिक है। इस भाषा को व्याकरण-सम्मत बनाया गया। सुसंस्कार प्राप्त यह भाषा संस्कृत हुई। संस्कृत को ही साहित्य की भाषा माना गया। इस समय की बोल-चाल की भाषा प्राकृत थी। ई० पू० १०० वर्ष से ५०० ई० तक प्राकृत का स्वर्णकाल रहा। इस भाषा में ही बौद्ध तथा जैन आचार्यों ने अपनी शिक्षाओं का कथन किया। प्राकृत के उपभेदों के रूप में मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री को स्वीकृति मिली। कालान्तर में अपभ्रंश ही साहित्यिक-भाषा हुई। वर्तमान हिन्दी अपभ्रंश से ही उत्पन्न है। हिन्दी के विविध प्रान्तीय रूप हैं, किन्तु साहित्य में केवल तीन रूपों को ही स्वीकृति मिली :- ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली। इसके साथ ही हिन्दी साहित्य का क्रमागत विकास हुआ। सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को कालक्रम की सुविधा के अनुसार चार भागों में बाँटा गया है :-

(१) आदिकाल (१००० ई० से १४०० ई०)

(२) पूर्व मध्यकाल (१४०० ई० से १६०० ई०)

(३) उत्तर मध्यकाल (१६०० ई० से १८०० ई०)

(४) आधुनिक काल (१८०० ई० से वर्तमान समय तक)

आदिकाल :- १००० ई० का समय युद्धों की बहुलता का समय था। उत्तरी भारत का वातावरण युद्ध और आक्रमण के कारण उत्तेजनापूर्ण था। इस समय साहित्य की भाषा पुरानी हिन्दी थी। वातावरण के प्रभाव-रूप में उस समय के चारणों ने लोक-भाषा में वीररस-प्रधान काव्यों की रचना की। राजाओं की विरुदावली के कथन के प्रसंग में शृंगार-रसात्मक भावों का भी कथन हुआ। पारस्परिक वैमनस्य, कन्याहरण आदि के संदर्भ में ही अधिकांश युद्ध हुआ करते थे। इसीलिए एक ओर तो नायिका-भेद, शृङ्गार तथा विलास की चर्चा हो रही थी और दूसरी ओर वीरोत्तेजक उत्साहपूर्ण वीररसात्मक भावों का कथन हो रहा था। इसी मूल प्रवृत्ति को देखकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस काल को वीरगाथा काल कहकर पुकारा। इस काल की सर्वप्रमुख कृति थी- पृथ्वीराज रासो। ६९ सर्गों में लिखे गये इस काव्य में इस काल की वीर-रसात्मक शृङ्गारमयी प्रवृत्ति का सुन्दर समन्वय मिलता है। इस काल की अन्य प्रमुख रचनाओं की तालिका इस प्रकार है :-

(१) दलपतिविजयकृत खुमान रासो (चित्तौड़राज खुमान तथा अलमामू खलीफा के युद्धों का वर्णन है)।

(२) नाल्हसिंह कृत विजयपाल रासो (करौलीनरेश विजयपाल के युद्ध का सजीव वर्णन)।

(३) भट्ट केदार कृत जयचंद-प्रकाश (कन्नौज-नरेश जयचंद का यशगान)। --(अपूर्ण)

(४) मधुकर कृत जयमयंक-जस-चन्द्रिका (जयचन्द्र का यशगान)। --(अपूर्ण)

(५) नरपति नाल्ह कृत - बीसलदेव रासो (बीसलदेव की प्रशस्ति)।

(६) जगनिक कृत - परमाल रासो (आल्हा खण्ड) -- महोबा-नरेश परमाल की प्रशस्ति तथा आल्हा-ऊदल के युद्ध का सजीव-वर्णन।

इस काल में गीत पद्धति पर विद्यापति कृत विद्यापति-पदावली की रचना हुई। इसके साथ ही अमीर-खुसरो ने पहेलियों और मुकरियों का भी प्रणयन किया।

पूर्व मध्यकाल :- भारत धर्मपरायण देश है। यहाँ सदैव ही धर्म का वर्चस्व रहा है। प्रथम १० शताब्दियों में पुराणों की रचना के कारण भक्ति की शक्तिशाली लहर-सी उठ खड़ी हुई थी। रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, माध्वाचार्य, आदि के प्रयत्नों से इसमें प्रवाह आया और १५ वीं शताब्दी आते-आते उत्तरी भारत में राम-कृष्ण की भक्ति का पूर्ण वेग दिखाई पड़ने लगा। रामानन्द, चैतन्य महाप्रभु और बल्लभाचार्य के प्रयास से भक्ति की इस धारा में जन-समुदाय गोते लगाने लगा। इसके पूर्व सिद्धों और नाथों की रचनाओं के प्रभाव से निर्गुण-संतमत प्रतिष्ठित हो चुका था। निर्गुण-धारा की दूसरी शाखा सूफीमत का आरम्भ भी ६०० ई० से हो चुका था। १४०० ई० से १६०० ई० तक साहित्यकारों ने प्रमुखतः भक्तिमूलक पदों का ही गान किया। भक्त-कवियों का यह भक्ति-साहित्य दो भागों में विभक्त हुआ :- (१) निर्गुण मार्ग (२) सगुण मार्ग। निर्गुण-मार्ग पुनः दो शाखाओं में विभक्त हुआ। (१) संतमत या ज्ञानमार्गी शाखा (२) सूफीमत या प्रेममार्गी शाखा। इसी प्रकार सगुण-मार्ग भी दो शाखाओं में विभक्त हुआ। (१) राम-भक्ति शाखा (२) कृष्ण-भक्ति शाखा।

ज्ञानमार्गी (संतमत) शाखा के प्रवर्तक महात्मा कबीरदास जी माने गये। इनके अतिरिक्त गुरु नानक, दादूदयाल, सुन्दरदास, मलूकदास, रविदास आदि महात्माओं ने भी इस मार्ग को प्रतिष्ठित करने में अपना योगदान दिया। से सभी संत कवि थे। अपनी सारग्राही प्रवृत्ति के कारण इन्होंने साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को त्यागकर प्रत्येक धर्म के सारभूत तत्त्वों को स्वीकार किया। वेदान्त का अद्वैत, सूफियों की प्रेम-तन्मयता, नाथपंथियों की हठयोगी साधना तथा वैष्णवों की अहिंसा को इन्होंने स्वीकार किया। छूआछूत-और अंधविश्वासों का खण्डन कर इन कवियों ने सत्यासत्य का परिचय दिया। रहस्यवादी साधक की तरह उन्होंने साधना की और गुरु के महत्त्व को मान्यता देते हुए ईश्वर-प्राप्ति के लिए गुरु की आवश्यकता पर बल दिया। इन कवियों में अधिकांश की भाषा पचमेल थी।

सूफी कवियों ने प्रेममार्गी धारा की कविताएँ लिखीं। अवधी भाषा को माध्यम बनाकर इन कवियों ने अपने सिद्धान्तों का कथन करने के लिए भारतीय प्रेमाख्यानों को स्वीकार किया। मसनवी पद्धति पर दोहा, चौपाई आदि छंदों में इनके काव्य रचे गये। इन कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी को विशेष ख्याति मिली। उनकी पुस्तकों-अखरावट, आखिरी कलाम और पद्मावत में पद्मावत को विशेष प्रतिष्ठा मिली। जायसी के पूर्व कुतुबन कृत मृगावती (१५०१ ई०) तथा मंझन कृत मधुमालती से पाठक परिचित हो चुके थे। मृगावती में चन्द्रनगर के राजकुमार और कंचनपुर की राजकुमारी का प्रेम वर्णित है। मधुमालती में कनेसर के राजकुमार और महारसनगर की राजकुमारी के प्रेम की कथा को विषय बनाया गया है। इन्हीं प्रेमकथाओं के माध्यम से सूफी-सिद्धान्त 'अनलहक' की व्यंजना की गयी है। जीव का ब्रह्म के प्रति प्रेम, माया द्वारा अवरोध, गुरु द्वारा ज्ञान की प्राप्ति आदि बातों पर इस धारा के कवियों ने विशेष विचार व्यक्त किये हैं। जायसी के पद्मावत में रत्नसेन, पद्मावती, नागमती और सूआ क्रमशः मन, बुद्धि, माया और गुरु के प्रतीक रूप में ही स्वीकृत हुए हैं। 'जायसी' के पश्चात् उसमान ने चित्रावली तथा शेख नबी ने ज्ञानदीप का प्रणयन किया।

निम्बार्काचार्य, चैतन्य महाप्रभु और बल्लभाचार्य के प्रयास से कृष्णभक्ति की जो लहर तरंगित हुई उसमें सम्पूर्ण उत्तरीभारत बह-सा गया। कृष्ण-भक्त कवियों ने कृष्ण की बाल-लीलाओं और रासलीलाओं का सविस्तार गान किया। राधा-कृष्ण और गोपियों का प्रसंग लेकर इन कवियों ने शृंगार की अत्यन्त मधुर धारा प्रवाहित की। १२वीं शताब्दी में संस्कृत के कवि जयदेव की वाणी में जिस रस का माधुर्य प्राप्त हुआ उसे १४वीं शताब्दी में बँगला के कवि चण्डीदास ने अधिक मधुर बना दिया।

मैथिलकवि-कोकिल विद्यापति ने वयःसंधि-प्राप्त राधा के सौन्दर्य को गीतों में साकार कर दिया। इन्हीं प्रयासों की परिणति हिन्दी में भी हुई। महाकवि सूरदास जी ने नई उद्‌भावनाओं के साथ कृष्ण की लीलाओं का गान किया। पुष्टिमार्ग में दीक्षित होकर सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीला और शृङ्गार-चेष्टाओं का अत्यंत सुन्दर कथन किया। अष्टछाप के अन्य कवियों- कृष्णदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, नंददास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी तथा गोविन्द स्वामी- ने भी कृष्ण-लीला का कथन किया। इन कवियों की भाषा ब्रज थी और प्रमुखतः इन कवियों ने राग-रागिनियों से बँधे हुए पदों में सखा-भाव से लीलापदों का ही गान किया। हितहरिवंश जी ने राधा-कृष्ण के संयोग शृङ्गार का भी परिचय दिया। इनके अतिरिक्त कृष्ण-भक्त कवियों में मीराबाई, नरोत्तम दास, रसखान आदि को भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा में रामानन्द जी को विशेष ख्याति प्राप्त हुई। उन्होंने राम की भक्ति का प्रचार किया। गोस्वामी तुलसीदास जी ने उनके प्रभाव से राम के चरित्र का गुणगान किया। उनकी भक्ति दास भाव की थी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम के सम्पूर्ण जीवन को रामचरित मानस के द्वारा उन्होंने व्यक्त किया। अवधी भाषा में दोहा-चौपाई की शैली को मान्यता देते हुए उन्होंने अपनी भक्ति-भावना का कथन किया। राम के सम्पूर्ण जीवन का कथन होने के कारण उनकी कृतियों में सभी रसों का समावेश हो गया। इस धारा में तुलसीदास जी के अतिरिक्त नाभादास, अग्रदास, हृदयराम, प्राणचन्द चौहान आदि की कृतियों को भी विशिष्ट स्थान मिला।

उत्तर मध्यकाल :- भक्तिकाल और रीतिकाल के संगम-स्थल पर आचार्य केशवदास का स्थान है। इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि केशवदास जी पूर्व मध्यकाल और उत्तर-मध्यकाल के बीच की कड़ी थे। १५९१ ई० में 'रसिक-प्रिया' की और १६०१ ई० में 'कविप्रिया' की रचना कर केशवदास जी ने संस्कृत कवियों की रीति-परम्परा को हिन्दी में उपस्थित किया। अलंकार, नायिका-भेद, रस, छन्द आदि पर काव्य के माध्यम से विचार आरम्भ हुआ। केशवदास के प्रभाव से अन्य कवियों ने भी रीति-ग्रन्थों का निर्माण किया। इस काल में रीति की प्रमुखता को देखकर ही शुक्ल जी ने इस काल को रीतिकाल कहा। भाव की दृष्टि से इस काल में शृङ्गार रसात्मक कविताओं का ही प्राधान्य था। स्फुट रूप में वीर-रसात्मक, भक्तिमूलक और नीति विषयक रचनाएँ भी होती रहीं, किन्तु कवियों की वृत्ति प्रमुखतः मुक्तक-रचना की ओर ही रही।

रीतिकाल में कवियों की दृष्टि रीति-ग्रन्थों के निर्माण की ओर रही। रीति-ग्रन्थकारों में प्रमुख थे :-

चिन्तामणि त्रिपाठी, मतिराम, भूषण, देव, भिखारीदास, पद्माकर आदि।

इन कवियों में भूषण के अतिरिक्त अन्य सभी ने शृङ्गार रस में ही लक्षणों तथा रीति-ग्रन्थों की रचना की, किन्तु भूषण ने वीर-रस में उदाहरण प्रस्तुत किये।

रीतिकाल को तीन धाराओं में विभक्त किया गया है :-

(१) रीतिबद्ध धारा (२) रीतिमुक्त धारा (३) रीतिसिद्ध धारा।

रीतिबद्ध-धारा में उत्तर-मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल के उन कवियों को परिगणित किया गया जो रीतिमूलक ग्रन्थों के लेखक थे। इन कवियों ने भाव की अपेक्षा रीति को महत्ता दी। इनमें प्रमुख थे - केशव, भूषण, देव आदि। रीतिमुक्त-धारा के कवि स्वच्छन्दतावादी थे। 'हिय आँखिन प्रेम की पीर' देखकर इन कवियों ने नये ढंग से काव्य लिखा। इनमें भाव की प्रधानता थी, रीति की नहीं। इस धारा के प्रमुख कवि थे :- रसखान, घनानन्द, ठाकुर, बोधा आदि। इनके अतिरिक्त एक तीसरी धारा है। 'रीतिसिद्ध-धारा'। रीतिसिद्ध-धारा में केवल 'बिहारी' की ही गणना की जाती है। बिहारी ने रीति का

पालन करते हुए भी स्वच्छन्द भावपूर्ण रचनाएँ लिखीं हैं। उनमें पूर्ववर्णित दोनों धाराओं का समन्वय है। इन सभी कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया।

इस युग में ही 'वीरसिंह देव चरित' रचा गया। केशव की यह कृति वीर-रसात्मक है। पद्माकर कृत 'हिम्मत बहादुर विरदावली', भूषण कृत 'शिवराज भूषण', 'शिवा बावनी' और 'छत्रसाल-दशक'; लाल कवि कृत 'छत्र प्रकाश' और सूदन कवि कृत 'सुजान चरित्र' वीर रस में ही लिखित हैं। इस युग में रहीम वृन्द, गिरिधर कविराय और दीनदयाल गिरि ने नीति-मूलक दोहे, कुण्डलियों और अन्योक्तियों का कथन किया।

आधुनिक काल :- आधुनिक काल के आरम्भकर्ता के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का नाम आज बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया जाता है। उन्होंने भक्ति तथा शृङ्गार के पदों का ही गान किया। उनकी काव्य-भाषाब्रज बोली ही थी। खड़ी-बोली कविता का आरम्भ तो वस्तुतः श्रीधर पाठक की 'एकान्तवासी योगी' नामक पुस्तक से ही हुआ। हरिऔध कृत प्रियप्रवास और मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों ने खड़ीबोली कविता का परिष्कार किया। नाथूराम शर्मा, गया प्रसाद शुक्ल सनेही, रामनरेश त्रिपाठी आदि के द्वारा खड़ी-बोली काव्य को वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन के फलस्वरूप इन लोगों की कविता में सुधारवाद की झलक दीख पड़ी। इतिवृत्तिमूलक पद्धति पर लिखी गयी इन कविताओं का अपने युग में बड़ा महत्त्व था।

खड़ीबोली कविता के क्षेत्र में द्विवेदी युग के सुधारवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया आरम्भ हुई। १६२० में 'छायावादी-धारा' की कविताएँ लिखीं जाने लगीं। इस धारा का आरम्भ भी मुकुटधर पाण्डेय तथा सुमित्रानन्दन पंत की कविताओं से माना जाता है। बाद में इस धारा की कविताओं के कर्ता के रूप में 'प्रसाद', 'निराला' महादेवी वर्मा आदि को विशेष प्रतिष्ठा मिली। इस धारा के कवियों ने प्रकृति को मानवीय सम्बन्धों से युक्त देखा। कल्पना की अतिशयता, चित्र-विधान की क्षमता, नाद-सौन्दर्य की पूर्णता आदि छायावादी कविता की विशेषताएँ थीं।

हिन्दी काव्य में आधुनिक रहस्यवाद का भी दर्शन हुआ। महादेवी की कविताओं में परोक्ष-प्रियतम के प्रति जिज्ञासा का भाव देखकर आलोचकों ने उसे समझने का यत्न किया। फलतः रहस्यवाद की नवीन धारा का परिचय मिला। रवि बाबू की गीताञ्जली से प्रभावित हिन्दी कवियों ने परोक्ष के प्रति विविध जिज्ञासाएँ दिखाईं। इन जिज्ञासु रहस्यवादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा आदि को विशेष ख्याति मिली।

आधुनिक युग में हरिवंशराय 'बच्चन' ने 'हालावाद' को प्रचलित किया, किन्तु यह वाद कवि 'बच्चन' तक ही सीमित रह गया। निराशा की धुन में लिखी गयी अन्य कविताओं के रचयिता के रूप में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' को भी ख्याति मिली। इसके अतिरिक्त इस युग में मजदूरों और शोषितों की समस्या को लेकर कविताएँ की गयीं। इन कविताओं को 'प्रगतिवाद' के अन्तर्गत स्थान मिला। पंत, निराला, दिनकर, नागार्जुन आदि को प्रगतिवादी कवि के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त हुई। राष्ट्रीय-चेतना से पूर्ण कविताओं का लेखन भी इस युग में प्रचुर मात्रा में हुआ। मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारी सिंह 'दिनकर' आदि की कविताओं में राष्ट्र-प्रेम का सबल स्वर सुनाई पड़ा। इस युग की सबसे नवीन कविता-धारा के रूप में 'प्रयोगवाद' या 'नई कविता' को स्वीकृति मिली। इसके प्रवर्तक सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' थे। 'तारसप्तक' प्रथम-अंक के द्वारा इस धारा का आरम्भ माना जाता है। इसे मध्यमवर्गीय चेतना का परिचायक कहा जा सकता है। इस धारा के कवियों ने नये प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। इस धारा के प्रमुख कवि रहे हैं - सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय',

नरेश मेहता, सर्वेश्वर, रामशेर बहादुर, गिरजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध आदि।

आधुनिक युग विविध साहित्यिक-वादों का युग है। इस समय काव्य-क्षेत्र में नाना प्रकार के प्रयोग चल रहे हैं। इनमें कुछ सुन्दर हैं और कुछ असुन्दर। काल के प्रवाह में जो सुन्दर है, वह बच रहेगा और जो अग्राह्य है समाप्त हो जाएगा। अभी अन्य कितने वाद प्रचलित होंगे, यह कहा नहीं जा सकता है। हिन्दी-जगत भविष्य में होने वाले प्रयोगों को देखता रहेगा।

काव्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ

(१) छायावाद :- हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद को जन्म मिला। छायावाद का परिचय देते हुए नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है :- "छायावाद में एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्‌गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की आयोजना भी।" छायावाद की परिभाषा विभिन्न प्रकार से की गयी है। कवि जयशंकर प्रसाद के अनुसार छायावाद अद्वैत रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। कुछ लोगों ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहा है और कुछ लोगों ने प्रकृति में मानवीय अथवा ईश्वरीय भावों और सम्बन्धों के आरोप को छायावाद कहकर पुकारा है। कुछ विचारकों ने छायावाद को लाक्षणिक प्रयोगों और अमूर्त उपमानों से युक्त एक शैली कहा है। वस्तुतः इन सभी परिभाषाओं में छायावादी कविताओं की एक अथवा दूसरी विशेषता का कथन हुआ है। इन सभी विशेषताओं का दर्शन छायावादी कविता में मिलता है।

यह छायावादी स्वर लगभग १९१८ ई० से काव्य के क्षेत्र में सुनाई पड़ने लगा और १९३६ ई० तक इसे हिन्दी के पाठक सानन्द सुनते रहे। छायावादी-धारा के अन्तर्गत जिन कवियों को प्रमुख स्थान मिला, वे थे :- प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी आदि। सन् १९२१ तक 'छायावाद' शब्द का प्रयोग कविताओं के लिए चल पड़ा था। 'सरस्वती' में सुशील कुमार नामक व्यक्ति ने अपने लेख 'हिन्दी में छायावाद' में मुकुटधर पाण्डेय और सुमित्रानन्दन पन्त को छायावादी कवि कहकर पुकारा।

छायावाद को आरम्भ में 'मिस्टिसिज्म' का पर्याय समझा गया, किन्तु महादेवी वर्मा की कविताओं में परोक्ष प्रिय के प्रति जिज्ञासा का जब पाठकों ने दर्शन किया तो छायावाद को 'मिस्टिसिज्म' से अलग 'रोमांटिसिज्म' के पर्याय रूप में ग्रहण किया। परोक्ष प्रियतम से सम्बन्धित कविताओं को 'मिस्टिक' अर्थात् रहस्यात्मक मानकर उन कविताओं को छायावादी कविता कहा गया जिनमें वैयक्तिक अभिव्यक्ति, प्रकृति में मानवी सम्बन्धों का आरोप, कल्पना की अतिशयता, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, नये छन्दों का प्रयोग और लाक्षणिकता का दर्शन होता हो। छायावादी कविता में सामन्ती प्रभाव का दर्शन होता है, उसमें अपने विरह और अपनी भावनाओं का स्वछन्द कथन होता है।

छायावादी कविता में वैयक्तिक अभिव्यक्ति सर्वत्र दिखायी पड़ती है। जयशंकर प्रसाद जी का 'आँसू' काव्य इसी प्रकार का एक काव्य है। इसमें कवि ने अपनी घनीभूत पीड़ा की कहानी रो-रोकर और सिसक-सिसक कर अपने उस प्रिय को सुनाया है जो सुमन तोड़ने के बहाने उसे सुनने से आनाकानी करता रहता है। पन्तजी की 'उच्छ्वास' 'आँसू' 'ग्रन्थि' और निराला जी की 'विप्लवी बादल' 'सरोज-स्मृति' आदि कविताओं में भी वैयक्तिक अभिव्यक्ति का ही दर्शन होता है।

व्यक्तिवाद ने छायावादी कवियों में एक नया दृष्टिकोण उत्पन्न किया। वे अपनी पीड़ा का दर्शन संसार में करने लगे। प्रकृति के बाह्य रूप विधान की ओर अधिक उन्मुख न होकर उसकी सूक्ष्म स्थिति का आकलन करने में कवियों का मन रम उठा। प्रकृति में मानवीय सम्बन्धों का आरोप करते हुए पन्त ने कहा :-

"कौन कौन तुम परिहत-वसना
म्लानमना भू-पतिता सी
धूलि-धूसरित मुक्त-कुन्तला
किसके चरणों की दासी"

इसी प्रकार निराला ने देखा तो उन्हें 'सन्ध्या' 'नीरवता के कन्धे पर बाँह डाले छाँह-सी अम्बर पथ से' चलती दिखाई पड़ी।

छायावादी कविताओं में कल्पना का आधिक्य था। पन्त की 'बादल' शीर्षक कविता में बादल से सम्बन्धित सभी कल्पनाओं का कथन हुआ है। कहीं बादल 'सागर के धवल हास सा' लगता है, कहीं 'जल के धूम और गगन की धूल सा।' कभी वह 'भूतों सा आकार' धारण कर लेता है और 'मत्त मत्तंगज'-सा झूमता दिखायी पड़ता है। ध्वन्यात्मकता और चित्रात्मकता की ओर भी छायावादी कवियों की दृष्टि थी। शब्द-चयन और ध्वनि सौन्दर्य का एक उदाहरण देखिए। 'नौका विहार' में पन्त ने लिखा है :-

"मृदु मन्द-मन्द मन्थर-मन्थर
लघु तरणि हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर"

सन्ध्या का चित्र प्रस्तुत करते हुए ध्वनि और चित्र दोनों को महत्त्व देकर निराला ने भी कहा है :-

"दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सन्ध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।"

छन्द की दृष्टि से छायावादी कवियों ने मुक्त-वृत्त छन्दों का भी प्रचलन किया। अंग्रेजी के सानेट, बँगला के पयार आदि छन्दों को स्वीकार करने के साथ ही छायावादी कवियों ने मुक्तवृत्त छन्दों में भी रचनाएँ कीं। प्रसाद की 'प्रलय की छाया' इसी प्रकार की कविता है।

(२) रहस्यवाद :- भारतीय चिन्तन-परम्परा में 'रहस्यवाद' शब्द प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आया है। कबीर और जायसी की कविताओं में आलोचकों और विचारकों ने रहस्यवाद का दर्शन किया है, किन्तु इनसे भी पूर्व रहस्यवादी उक्तियाँ उपनिषदों में अत्यधिक मात्रा में मिलती हैं। जीवन और ब्रह्म के मिलन से सम्बन्धित उक्तियाँ भागवत में प्रेम-मूलक ढंग पर व्यक्त की गयीं हैं और उपनिषदों की उक्तियाँ सिद्धों और नाथों के माध्यम से कबीर की कविताओं में गृहीत हुईं हैं। इनके द्वारा निर्गुणपंथियों ने अद्वैतभाव का कथन किया। इन लोगों ने जीव और ब्रह्म के बीच माया को बाधक माना। इसी भाव से कबीर ने कहा :-

"जल में कुम्भ-कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तथ कथौ गियानी।"

जीव और ब्रह्म के मिलन से सम्बन्धित उक्तियाँ सूफियों के प्रभाव से प्रेममार्गी कवियों द्वारा भी कहीं गयीं। कबीर ने ब्रह्म को पति रूप में और जीव को पत्नी रूप में देखा किन्तु जायसी तथा अन्य सूफी

कवियों ने अपनी परम्परा के अनुसार ब्रह्म को माशूक और जीव को आशिक रूप में माना। कबीर और जायसी की इन उक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "जीवात्मा और परमात्मा के पारस्परिक सम्बन्ध में एकता का प्रतिपादन जब किया जाता है तब रहस्यवाद कहलाता है।" इसीलिए रहस्यभावना के मूल में 'परोक्ष सत्ता के प्रति जिज्ञासा भाव' को मान्यता मिली है।

रहस्यवाद की परिभाषा देते हुए डा० रामकुमार वर्मा ने कहा है :- "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है, जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तब बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।" आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसी भाव का परिचय देते हुए रहस्यवाद के सम्बन्ध में कहा है कि रहस्यवाद में "कवि उस अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है।" आचार्य शुक्ल ने इस रहस्यवाद को दो भागों में बाँट दिया है।

(१) साधनात्मक रहस्यवाद :- इसमें इड़ा, पिंगला आदि नाड़ियों के प्रयोग के द्वारा हठयोगी साधना की प्रवृत्ति पर बल दिया जाता है। इसका व्यवहार सिद्ध-पंथियों और नाथ-पंथियों ने अधिक किया है।

(२) भावात्मक रहस्यवाद :- इसमें प्रेम-सम्बन्ध के माध्यम से जीव और ब्रह्म की एकता प्रतिपादित होती है। कबीर के यहाँ जीव 'बहुरिया' और राम 'पिय' हैं। जायसी की कृतियों में भी भावनात्मक रहस्यवाद ही है।

रहस्यवाद की यह परम्परा रीतिकाल में विलीन सी हो गयी थी, किन्तु आधुनिक काल में इसे पुनः विकास मिला। १९२० ई० में मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद के लिए 'मिस्टिक' शब्द का प्रयोग किया और तब से ही 'रहस्यवाद' शब्द आधुनिक काल में सुनाई पड़ने लगा। कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजली को पाश्चात्य विचारकों ने 'मिस्टिक' कहा, अतः उसको हिन्दी में रहस्यवादी रचना कहा गया और उसपर कबीर का प्रभाव माना गया। रविबाबू के प्रभाववश हिन्दी कवियों की कविता में भी परोक्ष प्रियतम के प्रति जिज्ञासा-भाव का उदय हुआ। महादेवी की प्रत्येक कविता में परोक्ष प्रियतम के प्रति जिज्ञासा दिखायी पड़ी। अतः इस प्रकार की सभी कविताओं को 'रहस्यवादी कविता' कहा गया। इस प्रकार की कविता लिखनेवालों में जयशंकर प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवी वर्मा को विशेष ख्याति मिली।

परोक्ष के प्रति जिज्ञासा का भाव प्रकट करते हुए सुमित्रानन्दन पन्त को लगा जैसे लहरों के मिस कोई अनजान और अज्ञात निमंत्रण दे रहा हो। अज्ञात और असीम से मिलने की व्याकुलता लेकर महादेवी वर्मा ने कहा :-

"जब असीम से हो जाएगा
मेरी लघु सीमा का मेल
देखोगे तुम देव, अमरता
खेलेगी मिटने का खेल।।"

असीम और अज्ञात का कोई स्पष्ट रूप इन कवियों के सामने नहीं था। अतः वे केवल उसका अनुभव करते थे, उसका ठीक-ठीक कथन कर सकना उनके वश की बात नहीं थी। इसीलिए उन्होंने रहस्य-भाव को 'गूँगे का गुड़' कहा। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में अस्पष्टता है। असीम के इस अस्पष्ट रूप को ही प्रतीकों के माध्यम से महादेवी ने स्पष्ट किया है :-

मेरे प्रियतम को भाता है तम के पर्दे में आना'

निश्चित ही 'तम का पर्दा' अस्पष्टता का प्रतीक है। उस परोक्ष के प्रति जिज्ञासा-भाव का कथन करते हुए 'प्रसाद' जी ने कहा है :-

"तृण वीरुध लहलहे हो रहे, किसके रस में सिंचे हुए"

रहस्यवाद में जगत को उसी ईश्वर का अंश मानते हैं तथा प्रतीक के माध्यम से जगत और ब्रह्म का सम्बन्ध स्पष्ट करते हैं। रहस्यवादी कवि की दृष्टि में प्रकृति या जीव की सार्थकता ब्रह्म के सम्बन्ध के कारण ही है। प्राचीन रहस्यवाद और वर्तमान रहस्यवाद में एक बहुत बड़ा अन्तर यह है कि प्राचीन रहस्यवादी कवि मूलतः आध्यात्मिक विचारक थे और गौणतः कवि। आज का रहस्यवादी कवि मूलतः कवि है। इसीलिए आज की रहस्यवादी कविताओं में कल्पना का प्राधान्य है, धार्मिक अनुभूति का प्राधान्य नहीं। यह कहा जा सकता है कि अपने मूल रूप में जो रहस्यभाव आध्यात्मिक था, आज वह लौकिक हो उठा है।

(३) प्रगतिवाद :- द्विवे युग की प्रतिक्रिया के रूप में छायावाद को जन्म मिला और छायावादी कवियों ने कल्पना को महत्त्व देकर यथार्थ को एकदम ठुकरा दिया। समाज का प्रतिबिम्ब साहित्य में दिखाने की अपेक्षा कल्पना-प्रधान कविताओं की ओर ही इन कवियों की दृष्टि रही। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद को जन्म मिला।

असहयोग आन्दोलन के बाद बलिया के रामसिंहासन लाल 'मधुर' ने डोम और डोमिन को विषय बनाकर कविताएं लिखीं। रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्यों में कृषक वर्ग के प्रति सहानुभूति स्पष्ट थी। इसी प्रकार के दो एक कवि सामान्य जनता को विषय बनाकर कविता लिख रहे थे किन्तु यह प्रवृत्ति सार्वजनिक नहीं थी। १९३५ ई० में 'पेरिस' में ई०एम० फार्स्टर के सभापतित्व में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोशिएशन' नामक संस्था का प्रथम अधिवेशन हुआ। विदेश से लौटने पर डा० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के प्रयत्न से इस संस्था की शाखा भारत में खुली तथा उसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इसके बाद से प्रगतिवादी साहित्य-धारा का अविरल प्रवाह चल पड़ा।

प्रगतिवाद का आरम्भ आर्थिक और राजनीतिक आन्दोलन के रूप में हुआ। प्रगतिवाद ने किसान और मजदूर के लिए साहित्य की माँग की। इसका प्रभाव कवियों पर पड़ा और पन्त जी को संध्या के झुटपुटे में जब बाँस के झुरमुट में चिड़ियाँ टी-बी-टी-टुट-टुट बोल रही थीं, किसान डग भरता हुआ घर का मग नापता दिखायी पड़ा। निराला जी को इलाहाबाद के पथ पर पत्थर तोड़ती हुई मजदूरिन दिखायी पड़ी और 'मुँह फटी पुरानी झोली' लिये हुए एक भिखारी दिखायी पड़ा।

प्रगतिवादी साहित्य का दो रूप है (१) विशुद्ध कवित्वपूर्णरूप (२) प्रचार-भाव समन्वित रूप। साहित्य की दृष्टि से प्रथम रूप ही ग्रहण किया जाने योग्य है। प्रचार-भाव से नरेन्द्र शर्मा ने लाल रूस की प्रशंसा में लिखा :-

"लाल रूस का दुश्मन साथी, दुश्मन सब इन्सानों का।"

प्रगतिवाद की मुख्य विशेषता है शोषितों का चित्रण और यथार्थवाद का कथन। इसीलिए उसमें निर्धन व्यक्ति और उसके परिवार का वर्णन होता है। धनिकों के संसार में रहने वाले निर्धनों की वर्तमान वास्तविक स्थिति का कथन करते हुए दिनकर ने लिखा है :-

"श्वानों को मिलता दूध भात
भूखे बालक अकुलाते हैं
माँ की गोदी में ठिठुर-ठिठुर
जाड़े की रात बिताते हैं।
मालिक जब तेल फुलेलों पर
पानी सा द्रव्य बहाते हैं।
पत्नी की लज्जा वसन् बेंच
तब ब्याज चुकाये जाते हैं।"

इसी यथार्थवादी दृष्टि से पंत जी ने ग्राम का परिचय देते हुए कहा है :-

"भू की छाती पर फोड़ों से, कुछ उठे हुए हैं कच्चे घर।
मैं कहता हूँ खण्डहर उसको, वे कहते हैं उसे ग्राम ।।"

प्रगतिवादी कवि या विचारक आर्थिक दृष्टि से ही समाज व सभी समस्याओं का अध्ययन करने का पक्षपाती होती है। वह साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का विरोधी होता है। वह वर्तमान सामाजिक अवस्था से असंतुष्ट होकर क्रान्ति का आह्वान करता है। 'नवीन' ने इसी क्रान्ति की कामना करते हुए कहा है :-

"कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल-पुथल मच जाये
एक हिलोर इधर से आये
एक हिलोर उधर से आये
प्राणों के लाले पड़ जायें
'त्राहि-त्राहि' रव नभ में छाये
नाश और सत्यानाशों का
धुआँधार जग में छा जावे!"

पंत जी ने भी 'जीर्ण पुरातन' को नष्ट करने के लिए 'पावक कण' की वर्षा की कामना की है।

प्रगतिवादी कवियों ने भाव-पक्ष के साथ ही कला-पक्ष में भी महान परिवर्तन उपस्थित किया है। उन्होंने छन्द-बन्धन, भाषा के लालित्य आदि मान्यताओं का परित्याग किया और नये उपमानों की स्थापना की। निराला की 'भिक्षुक' शीर्षक कविता में शैली की नवीनता देखिए --

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक, चल रहा लकुटिया टेक
मुँह फटी पुरानी-झोली का फैलाता
वह आता।"

पन्त जी ने भी 'धोबी के नृत्य' आदि कविताओं में नई तर्ज को प्रस्तुत किया है।

(४) प्रयोगवाद : नई कविता :- १९४३ ई० में तार-सप्तक नामक कविता-संग्रह का

प्रकाशन अज्ञेयजी ने किया। इस पुस्तक के सम्पादकीय वक्तव्य में इस कृति की कविताओं की प्रमुख विशेषता के रूप में 'प्रयोग' और 'प्रयोगशीलता' शब्द का व्यवहार किया गया। इन्हीं शब्दों को पकड़कर लोगों ने ईन कविताओं को प्रयोगवादी कविता कहा। तार-सप्तक भाग २ का प्रकाशन सन् १९५१ में हुआ। उसमें भी 'प्रयोग' शब्द को महत्त्व दिया गया। अन्ततः प्रयोगवाद साहित्य की एक ध ारा के रूप में गृहीत हुआ जिसके अन्तर्गत अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र, शमशेर, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, भारत भूषण, मुक्तिबोध आदि कवियों को विशेष ख्याति मिली। प्रयोगवाद के लिए एक नया शब्द भी चल पड़ा- 'नयी कविता'। 'नयी कविता' और 'प्रयोगवादी कविता' दोनों से एक ही प्रकार की कविता का बोध होता है।

प्रयोगवाद का मुख्य आधार व्यक्तिवाद है। इसमें मध्यमवर्ग की अपनी विवशताओं का विविध प्रतीकों के माध्यम से कथन हुआ है। इसी प्रसंग में प्रयोगवादी कवियों ने दुख को एक दर्शन के रूप में स्वीकार किया है। ऐसे ही कवि ने कहा है :-

दुख सबको माँजता है
चाहे स्वयं सबको मुक्ति देना वह न जाने,
किन्तु-
जिनको माँजता है
उन्हें वह सीख देता है कि सबको मुक्त रक्खें।'

इन कवियों ने अपने मन की कुंठा और अपनी हीन स्थितियों का भी कथन विविध प्रतीकों का आलम्बन लेकर किया है। इत्यलम में अज्ञेय ने कहा है :-

''मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता
मैं ही वह मीनार-शिखर का प्रार्थी मुल्ला।''

उसने अपने अस्तित्व को 'नदी के द्वीप' के रूप में देखा जो कभी भी विपत्ति की लहर से ढक लिया जा सकता है।

यथार्थवाद की अतिशयता में नारी सौन्दर्य के उपमान भी परिवर्तित हो गये। छायावादी की तरह नारी के सौन्दर्य की प्रशंसा कर उसे देखना प्रयोगवादी कवि को अभीष्ट नहीं था। उसका मन वासना के आवेग में पुकार रहा था :-

''आह मेरा श्वास है उत्तप्त
धमनियों में है उमड़ आई लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो नारि।''

प्रयोगवादी कवि भाषा के सम्बन्ध में बहुत उदार रहा है। उसने विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया है। वह यह नहीं मानता कि कोई शब्द केवल कविता का होता है और कोई गद्य का। उसका मत है कि कोई भी शब्द अगर उचित स्थान पर प्रयुक्त हो तो वह भाव-व्यंजना का माध्यम बन जाता है और वह कविता और गद्य दोनों में प्रयुक्त हो सकने की क्षमता रखता है। इसलिए प्रयोगवादी कवि अंग्रेजी, बँगला, मराठी आदि के शब्दों का भी व्यवहार अपनी कविता में कर लेता है। यथार्थवादी होने के कारण वह विभिन्न वर्गों में- नाई, धोबी, भंगी आदि के बीच-प्रयुक्त होने वाले शब्दों को भी स्वीकार करता है। शमशेर लिखते हैं :-

"लुढ़की सुराही तो
हुचक हुचक पानी ढुरा
गर्द भरे खुँदे हुए फर्श पर
चुपचाप"

शमशेर की ही दूसरी कविता है :-

"सावन की उनहार
नदिया पार
मधु बरसे हुन बरसे
बरसे स्वाती धार।"

इसमें 'हुन' शब्द का प्रयोग द्रष्टव्य है। इनकी भाषा में लाक्षणिकता कम और अभिधात्मक प्रयोग अधिक हैं, किन्तु प्रतीकों की सांकेतिकता महत्त्वपूर्ण है।

इन कवियों ने पद्य में गद्यात्मकता लाने का प्रयास किया है। भावों को स्पष्ट करने के लिए प्रयोगवादी कवि विराम-चिह्नों का अपने ढंग से प्रयोग करते हैं तथा पंक्तियों को छोटी या बड़ी करके लिखते हैं। रूप-विधान की दृष्टि से इन कवियों ने अनेक प्रकार के अतुकान्त छन्दों को प्रस्तुत किया है। वे भावों को स्पष्ट करने के लिए शब्दों को भी तोड़ते हैं। खण्डहर का भाव स्पष्ट करने के लिए वे ख, ण्ड, ह, र, को अलग-अलग ऊपर-नीचे बिखराकर भी लिखने के पक्षपाती हैं। इन प्रयोगवादी कवियों की प्रतीक-योजना भी नवीन है, जिसमें यथार्थवादी दृष्टि की प्रधानता है।

प्रयोगवादियों ने अभिधात्मक प्रयोगों के द्वारा सरलता के प्रति अपनी रुचि दिखाने का प्रयास किया है, किन्तु उनकी कविता का भावपक्ष इतना दुरूह है कि पाठक कवि की भावनाओं को समझ सकने में अपने को असमर्थ पाता है। सब कुछ होने पर भी यह मानना पड़ता है कि मनःस्थितियों के चित्रण में प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि अपने पूर्ववर्ती कवियों से अधिक सूक्ष्म है। उनके गीतों से लोकगीतों को शक्ति मिली है। निश्चित ही प्रयोगवादी कविताओं ने ह्रासोन्मुख-मध्यमवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्र उपस्थित किया है।



सन्त कबीर

जन्म-संवत् :-- १४५५ वि० **मृत्यु-संवत् :-- १५७५ वि०**

जीवन-वृत्तः- सन्त कबीर के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। मिश्रबन्धु उनका जन्म-स्थान काशी मानते थे। श्यामसुन्दर दास इस मत के समर्थकों का खण्डन करते थे। कुछ लोगों के अनुसार उनका जन्म आजमगढ़ स्थित बैलहटा नामक गाँव में हुआ था, किन्तु जन्म स्थान के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। उनके माता-पिता के सम्बन्ध में भी विभिन्न प्रकार की बातें कही जातीं हैं। इतना निश्चित है कि नीरू और नीमा दम्पति ने कबीर को पुत्रवत पाला था। उनकी जन्म और निधन तिथि के सम्बन्ध में विवाद है, किन्तु अब यह मान लिया गया है कि उनका जन्म सं० १४५५ में हुआ और मृत्यु सं० १५७५ में हुई।

कबीर जाति के 'जुलाहा' थे। उन्होंने अपने विभिन्न पदों में अपने को जुलाहा कहा है-

''कहैं कबीर राम रस माते जोलहा दास कबीरा हो।''

इस पंक्ति से उनके जुलाहा होने का परिचय मिलता है। उनकी जाति के सम्बन्ध में पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'कबीर' की पृष्ठ सं० १३-१४ पर कहा है-''आज की बयनजीवी जातियों में से अधिकांश किसी समय जातिभेद और ब्राह्मण श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करती थीं। इनमें निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी। अवतारवाद में इनकी आस्था नहीं थी। मुसलमानों के आने के बाद ये लोग धीरे-धीरे मुसलमान भी होते रहे। कबीर दास जी इन्हीं नव-धर्मान्तरित लोगों में पालित हुए थे।''

सम्भवतः कबीर बारह वर्ष तक निश्चिंत भाव से बाल-सुलभ आनन्द में जीवन बिताते रहे। बारह वर्ष के बाद उन्हें जुलाहा का व्यापार गृहस्थी चलाने के लिए आरम्भ करना पड़ा। २० वर्ष तक अर्थात् ३२ वर्ष की वय तक वे गार्हस्थ जीवन में रमे रहे और ३२ वर्ष के वय से वे विरक्त-सा जीवन बिताने लगे। इन सबका प्रमाण स्वयं उनकी इस पंक्ति से मिलता है--

''बारह बरस बालपन बीते, बीस बरस कछु तप न कियो।''

श्री रामानन्द जी की शिक्षाओं से प्रभावित कबीर को कुछ लोग रामानन्द का ही शिष्य मानते हैं। एक दूसरा मत उन्हें सूफी-सिद्धान्त के प्रतिपादक शेख तकी का शिष्य मानता है। **'कहु कबीर मैं सो गुरु पाया, जाका नाम विवेक रे'** के आधार पर कुछ लोगों का मत है कि कबीर किसी व्यक्ति के शिष्य नहीं थे। वे अपने 'विवेक' को ही गुरु मानते थे। 'गुरु' के सम्बन्ध की उनकी धारणाओं को देखकर यह मानना पड़ता है कि 'कबीर' का कोई गुरु था। सभी मतों के विश्लेषण के बाद 'रामानन्द' ही उनके गुरु ठहरते हैं।

कबीर की दो पत्नियाँ थीं। एक का नाम लोई था और दूसरी का धनिया। उनके पुत्र का नाम कमाल था और पुत्री का नाम कमाली था। अपनी इस गृहस्थी को चलाते हुए वे सन्तों की संगति करते थे और स्वयं लोगों को उपदेश देते थे। उपदेश देने के लिए उन्होंने पर्यटन भी किया था। उन्होंने काव्य के माध्यम से उपदेश दिया। उनके उपदेशों का संग्रह 'बीजक' की संज्ञा से विभूषित हुआ। इसके तीन अंग है-रमैनी-चौपाइयों में लिखा गया अंश; सबद-पदों में लिखा गया अंश; साखी-दोहों में लिखा गया अंश। 'रमैनी' में आध्यात्मिक तत्त्वों का विवेचन है; 'सबद' या पद में भावना का उत्कर्ष है और

रहस्यवादी विचार पुष्ट हुआ है; तथा 'साखी' में व्यक्ति और समाज की समस्याओं को सुलझाने वाली उक्तियाँ हैं।

कविता का स्वरूप :- सन्त कबीर धार्मिक, समाज-सुधारक तथा कवि थे। उनके धार्मिक उपदेश और समाज-सुधार सम्बन्धी भाव भी उनकी कविताओं के माध्यम से व्यक्त हुए हैं। उन्होंने बड़े ही निर्भीक भाव से अपने अनुभूत सत्य का कथन किया है। समाज-सुधारक की दृष्टि से, अपने युग की पृष्ठभूमि में कबीरदास अत्यन्त प्रगतिशील थे। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों के अन्दर व्याप्त संकुचित-भाव के विरोधी थे। उन्होंने इन दोनों के ही अंधविश्वासों और त्रुटियों पर गहरा प्रहार किया है। हिन्दुओं द्वारा पूजित प्रस्तर-पिण्ड के सम्बन्ध ममें कथित उनकी एक उक्ति देखिए--

"दुनिया ऐसी बावरी, पाथर पूजन जाय।
घर की चकिया कोई न पूजै, जेहि का पीसा खाय।।"

मुसलमानों के 'रोजा के सम्बन्ध में वे कहते हैं --

'दिन भर रोजा रहत हैं, रात हनत हैं गाय।'

निर्भय भाव से कबीरदास ने विभिन्न धर्मावलम्बियों के दोषों का कथन किया है और राम तथा रहीम की एकरूपता घोषित की है।

कबीरदास सन्त थे। उन्होंने भक्ति के क्षेत्र में निर्गुण-भक्ति का आश्रय लिया। वे 'राम' की पूजा के सम्बन्ध में उपदेश देते हैं किन्तु उनके 'राम' दशरथ के कुल में उत्पन्न होकर रावण का हनन करने वाले राम नहीं थे। उनका 'राम' घट-घट में रमनेवाला परम तत्त्व था। 'राम' के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है--

"ना दशरथ घर औतरि राया, ना लंका का राव सताया।"

संत कबीर ने जीवात्मा को परमात्मा का ही अंश माना है। उन्हें जीवात्मा के अमरत्व पर विश्वास है और वे मुक्त स्वर में कह उठते हैं-

"हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं ?
हरि न मरै, हम काहे कूँ मरिहैं।"

जीवात्मा और परमात्मा का मिलन भक्ति से ही सम्भव होता है। बिना भक्ति के माया का बन्धन मिटता नहीं और माया जीवात्मा तथा परमात.. के बीच बाधक सिद्ध होती है। उन्होंने 'माया' को 'महा ठगनी' कहा है। "रमैया की दुलहिन लूटा बजार" जैसे पदों में 'रमैया की दुलहिन' माया का ही प्रतीक बनकर प्रयुक्त है। इस माया का निवास उन्होंने 'कामिनी' और 'कञ्चन' में स्वीकार किया है और इसीलिए इन दोनों को उन्होंने भक्ति के मार्ग में अभीष्ट तक पहुँचने के पूर्व मिलने वाली दो दुर्गम घाटियों की संज्ञा दी है :-

'एक कनक अरु कामिनी दुर्गम घाटी दोय।'

'माया' का बन्धन मिटने पर जीव को भगवान का साक्षात्कार हो जाता है। जीव ब्रह्म से मिल जाता है। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार सम्पादित होती है जैसे जल में जलयुक्त कुम्भ स्थित हो और कुम्भ के फूटने के बाद जल, जल में ही मिल जाए :-

'जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, यह तत कथौ गियानी।'

माया का यह यन्धन ब्रह्म की उस कल्पना की ओर संकेत करता है जिसमें ब्रह्म 'द्वैत' का आनन्द लेने के लिए कह उठा था, 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' तथा 'एकोऽहं बहुस्याम' और तब जीव की उत्पत्ति हुई थी। सन्त कबीर ने गुरु को बड़ी प्रतिष्ठा दी है। गुरु के उपदेश से वह ज्योति मिलती है जिससे 'माया' का तम दूर होता है और भक्ति प्रकाशित होती है। बिना गुरु के ज्ञान सम्भव नहीं है। वे मानते हैं कि 'हरि के रूठे तो ठौर है पर गुरु के रूठे कोई ठौर नहीं ।' उनके अनुसार गुरु सच्चा 'सूरमा' है :-

"सतगुरु साँचा सूरिमा नखशिख मारा पूरि।
बांहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूरि।।"

ऐसे गुरु के उपदेश रूपी बाण से विद्ध होकर जो भक्ति जागती है वह फिर नष्ट नहीं होती। यह हरि-रस की खुमारि जल्दी उतरती नहीं है :-

"हरि रस पीया जानिये कबहूँ न जाय खुमारि।
मैंमंता घूमत फिरै नाहीं तन की सारि।।"

राम से सच्चा प्रेम करना कबीर की दृष्टि में आसान नहीं है। वह बड़ी साधना से ही हो पाता है। उसे वे उतना ही कठिन मानते हैं जितना सिर काटकर उसे हाथ में लेकर चलना कठिन है।

"यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुइँ धरै सो पैठे घर माँहि।।"

भक्ति के क्षेत्र में कबीरदास ने बाह्याडंबर को स्थान नहीं दिया है। राम-नाम का माला फेरने या सिर मुड़ाने से भक्ति नहीं मिलती। सन्त कबीर ने जप, छापा, माला, तिलक का विरोध कर मन को पवित्र करने का सन्देश दिया है। उन्होंने 'कर का मनका डार के, मन का मनका फेरंने' की बात को सही माना है।

"माला फेरत जुग गया गया न मन का फेर।
कर का मनका डार के मन का मनका फेर।।"

उनकी दृष्टि में तो जबतक राम सच्चे रूप में हृदय में स्थान नहीं प्राप्त करते, तब तक 'जप छापा माला तिलक' से एक भी काम बन नहीं सकता है :-

"जप छापा माला तिलक सरे न एकौ काम।
मन काँचो नाच्यो वृथा, साँचे राँचे राम।।"

कबीर ने अपने भगवान को कहीं माँ रूप में देखा है तो कहीं स्वामी रूप में। अपने भगवान को माँ रूप में मान्यता देते हुए वे कहते हैं :-

"हरि जननी मैं बालक तेरा। काहे न अवगुन बकसहु मेरा।
सुत अपराध करै दिन केते। जननी के चित रहै न तेते।।"

राम को 'प्रिय' का रूप तो कई स्थानों पर दिया गया है। इन स्थलों पर कबीर मधुर-भाव की भक्ति करते दिखायी पड़ते हैं :-

"हरि मेरा पिउ भाई हरि मेरा पिउ" या "हरि मोर पिव, मैं राम की बहुरिया" जैसे पदों में उनका माधुर्य भाव स्पष्टतः लक्षित है।

कबीरदास का रहस्यवाद- रहस्यवाद की दो श्रेणियाँ हैं -

(१) हठयोगी रहस्य-भावना या साधनात्मक रहस्यवाद :- इसमें हठयोग की क्रियाओं एवं

साधनाओं द्वारा जीवात्मा परमात्मा से मिलने की ओर अग्रसर होती है। इस साधना में व्यक्ति कुण्डलिनी को उद्‌बुद्ध कर उसे विभिन्न चक्रों के माध्यम से ब्रह्मरन्ध में ले जाकर अवस्थित करता है और तब उसे खेंचरी मुद्रा प्राप्त होती है, उसे अनहद नाद सुनाई पड़ने लगता है।

(२) भावात्मक रहस्यवाद :- जब जीवात्मा परमात्मा से मधुर भाव या अन्य लौकिक-सम्बन्ध धारण कर मिलने को उत्सुक होती है तो भावात्मक रहस्यवाद की सिद्धि होती है।

कबीरदास ने दोनों ही प्रकार के रहस्यवाद की पुष्टि की है। उनकी जिन कविताओं में 'इंगला, पिंगला, ताना-भरनी' जैसे शब्दों का कथन है, वे उनकी साधनात्मक रहस्यवाद सम्बन्धी कविताएँ हैं :-

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे क ताना काहे क भरनी कौने तार से बीनी चदरिया।।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कँवल दल चरखा डोलै, पाँच तत्व गुन तीनी चदरिया।।"

इस पद में साधना-पक्ष पर ही बल दिया गया है। साधनात्मक रहस्यवाद का अन्य उदाहरण देखिए :-

"दस द्वार का पींजरा, तामे पंछी पौन।
रहने का अचरज महा, गए अचम्भा कौन।।"

और *"जब लग त्रिकुटी संघ न जानै।*
ससि-हर के घर सूर न आनै।।"

भावनात्मक रहस्यवादी साधक की तरह कबीर ने भी 'माया' का खण्डन किया है। उन्होंने भी गुरु को विशेष महत्त्व दिया है। सूफियों के प्रभाव-वश उन्होंने 'प्रेम-तत्व' को स्वीकार किया है, किन्तु वे अपने को पत्नी रूप में तथा ईश्वर को प्रिय रूप में देखते हैं। सूफियों के प्रेम-तत्व को भी उन्होंने भारतीय आदर्श पर ही स्वीकार किया है। वे स्वयं ही पत्नी रूप रहे हैं और भगवान को उन्होंने बराबर पति रूप में देखा है-'एक पुरुष मोहें व्याहन आये, मैं जोबन मदमाती' से उनकी प्रेम-पद्धति का पूरा परिचय मिलता है।

सच्चे रहस्यवादी साधक की तरह कबीर ने भी 'पत्र-लेखन' और 'विरह-निवेदन' को महत्त्व दिया है। 'पत्र-लेखन' के सम्बन्ध में वे कहते हैं:

"या तन जारौं मासे करौं, लिखूँ राम को नाँव।
लेखनि करौं करंक की, लिख लिख नाम पठाँव।।"

अपने प्रिय के दर्शन की उत्कंठा में वे पथ की ओर देखते हुए कह उठते हैं--

"आँखड़ियाँ झाँईं पड़ीं पंथ निहारि निहारि।
जीभड़ियाँ छाला पड्या नाम पुकारि पुकारि।।"

अपने प्रियतम के अनुराग-वर्ण से रंजित सारे संसार को देखकर वे कह उठते हैं --

"लाली मेरे लाल की जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गई लाल।।"

कबीर की उलटबासियाँ :- कबीरने भावों की व्यंजना उलटबासियों की पद्धति पर भी की है। 'उलटबाँसी' का अर्थ है 'विपरीत अर्थ का द्योतक' किन्तु इस प्रकार के सभी पद विपरीत अर्थ के

बोधक नहीं हैं। इन पदों को उलटबाँसी उनके विरोधमूलक स्थिति के कारण कहा जाता है। ये स्पष्टतः अटपटी बानी से लगते हैं पर अर्थ-विश्लेषण पर सही उतरते हैं। इनकी पंरपरा उपनिषदों और सिद्ध योगियों के ज्ञान से विकसित है। कहीं-कहीं श्लेषार्थ ले लेने में कोई विरोध नहीं रह जाता है-

''एक अचंभा देखा रे भाई, ठाड़ा सिंह चरावे गाई।
पहिलै पूत पीछे भइ माई, चेला के गुरु लागै पाई।।''

में यदि 'सिंह' का अर्थ 'ज्ञान' और 'गाय' का अर्थ 'मन सहित इन्द्रिय' ले लिया जाय तथा 'पूत' का अर्थ 'ज्ञान'; 'पीछे भई' का अर्थ 'अधीन' और 'माई' का अर्थ 'माया' मान लिया जाय तो अर्थ में कहीं भी विरोध नहीं रह जाएगा। 'चेला' को यदि विकार-रहित चित का तथा 'गुरु को विकार-युक्त मन का बोधक मान लिया जाय तो सारी शंकाएं दूर हो जाएंगीं।

कबीर की इन उलटबासियों को समझने में कोई कठिनाई न होगी, यदि हम कबीर द्वारा गृहीत अर्थ और प्रतीक का परिचय प्राप्त कर लें।

कबीर की भाषा-शैली :- कबीर की भाषा का विवेचन करते हुए कबीर-ग्रन्थावली की प्रस्तावना में लिखा गया है- ''कबीर में केवल शब्द ही नहीं, क्रियापद, कारक चिह्नादि भी कई भाषाओं के मिलते हैं। क्रियापदों के रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खड़ी-बोली के हैं। कारक चिह्नों में 'से', 'कै', 'सव', 'सा', आदि अवधी के हैं, 'कौ' ब्रज का है और 'थैं' राजस्थानी का। कबीर की भाषा में इस प्रकार का मिश्रण प्रमाणित है।

'कबीर कहता जात है, सुणता है सब कोई।' में 'सुणता' शब्द खड़ी-बोली का है। ''को बीनै प्रेम लागौरी माई को बीनै'' में 'को' और 'लागौं' शब्द ब्रजभाषा का है। 'पंडित सेती कहि रहे कहा न माने कोई' में 'सेती' अवधी का शब्द है। 'का जाणौं उस पीव कूँ कैसे रहसी रंग' में 'जाणौं' और 'रहसी' राजस्थानी का प्रयोग है। कबीर की भाषा में वैसे तो बहुत सी बोलियों के शब्द और क्रिया-पद आये हैं, किन्तु राजस्थानी का प्रभाव विशेष रूप से दिखायी पड़ता है। कबीर ने भाषा को उतना महत्त्व नहीं दिया है जितना भाव को। भाव को अभिव्यक्त करने के लिए जिस प्रकार के भी शब्द संभव हुए हैं उनका प्रयोग उन्होंने किया है। भाषा कबीरदास के भावों के पीछे-पीछे दौड़ी है, वे स्वयं भाषा के पीछे कभी नहीं रहे। कबीर ने विभिन्न देशों में पर्यटन किया था, अतः उनके भक्तों ने अपने ढंग से उनके पदों का पाठ किया। इसलिए उनके पदों में विभिन्न प्रदेश की भाषाओं का प्रभाव आ गया है।

कबीर की कविताओं में रूपक, अन्योक्ति और विरोधमूलक उलट-बाँसियाँ अधिक मात्रा में प्रयुक्त हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त अन्य अलंकार भी उनकी कविताओं में आये हैं। दृष्टांत अलंकार की बानगी देखिए --

'चित्त कपटी सबसों मिलै माहीं कुटिल कठोर।
इक दुरजन इक आरसी आगे पीछे और।।'

रस की दृष्टि से कबीरदास ने संयोग और वियोग शृङ्गार का कथन उन स्थलों पर किया है जहाँ उनके भावनात्मक रहस्यवाद की पुष्टि हुई है। सृष्टि की उत्पत्ति की कल्पना करने में वे 'अद्भुत-रस' की ओर मुड़े हैं। विभिन्न रसों का कथन करते हुए भी कबीर मुख्यतः 'शान्त' रस के कवि थे।

कबीर की भाषा और उनके छन्द को देखकर लोग उन्हें कवि मानने से इन्कार करते हैं, किन्तु यह मत ठीक नहीं है। कबीर कवि थे पर उनका समाज-सुधारक तथा सन्त और धार्मिक रूप उनके कवि रूप से अधिक मुखर था। उन्हें प्रमुखतः सन्त मानते हुए भी यह मानना पड़ता है कि वे भक्तिकाल के निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि थे।



मलिक मुहम्मद जायसी

जन्म-संवत् :--` १५४९ वि० **मृत्यु-संवत् :-- १५९९ वि०**

जीवन-वृत्त :- निर्गुण धारा की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य की सहायता से कुछ बातें कही गयी हैं। 'आखिरी कलाम' के तीसरे दोहे के बाद की पहली चौपाई में कवि ने अपने जन्म के सम्बन्ध में कहा है--

'भा औतार मोर नौ सदी', यह नव सदी हिजरी सम्वत् है अतः इसके आधार पर जायसी का जन्म सम्वत् १५४९ विक्रमी ठहरता है। कुछ लोग बहिर्साक्ष्य के आधार पर इनका जन्म गाजीपुर में मानते हैं। जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं है। वे जायस नगर में बस गये और वहाँ रहने के कारण उन्हें 'जायसी' कहा गया। उनका नाम केवल मलिक मुहम्मद था। अमेठी के राजा रामसिंह उन्हें बहुत मानते थे। मृत्यु के बाद उनकी कब्र भी अमेठी में ही बनी। काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने अपनी 'याददाश्त' में मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्युकाल ९४९ हिजरी (सन् १५४२ और सम्वत् १५९९ विक्रमी) दिया है। पद्मावत के अन्त में जायसी ने वृद्धावस्था की बात कही है, वह शायद कल्पनागत वृद्धावस्था थी, ऐसा आचार्य शुक्ल का अनुमान था।

मलिक मुहम्मद जायसी निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परम्परा में थे। इस परम्परा की दो शाखाएँ हुईं। एक के पीर, मुहीउद्दीन (शेख मोहिदी) थे और दूसरे के सैयद अशरफ थे। 'पद्मावत' और 'अखरावट' में दोनों के सम्बन्ध में जायसी ने कुछ कहा है और अपनी श्रद्धा अर्पित की है, किन्तु 'आखिरी-कलाम' में उन्होंने सैयद अशरफ का ही नाम लिया है। 'पीर' (दीक्षा गुरु) का सम्बोधन केवल सैयद अशरफ नाम के साथ है। अतः उनके दीक्षा-गुरु सैयद अशरफ थे और मुहीउद्दीन से वे प्रभावित थे। जायसी की कृतियों की संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं, किन्तु उनकी तीन पुस्तकें ही प्राप्त हैं- अखरावट, पद्मावत, आखिरी कलाम। 'अखरावट' में वर्णमाला के एक-एक अक्षर के आधार पर सिद्धान्त की बातें कही गयी हैं। 'आखिरी-कलाम' में मरणोपरान्त जीव की दशा, कयामत के अन्तिम न्याय आदि पर विचार है। 'पद्मावत' सूफी मत का परिचायक, कथामूलक ग्रन्थ है। 'पद्मावत' ही जायसी की कीर्ति का आधार है।

पद्मावत का वर्ण्य-विषय :- 'पद्मावत' की कथा ५७ खण्डों में बँटी है। ५१ खण्ड तो कथामूलक है, किन्तु स्तुति खण्ड, सिंहलद्वीप वर्णन, नख-शिख वर्णन, षट्ऋतु वर्णन, स्त्री-भेद खण्ड तथा बादशाह भोज-खण्ड का कथा से सम्बन्ध नहीं है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है। सिंहलद्वीप के राजा गन्धर्वसेन की पुत्री पद्मावती के रूप की प्रशंसा हीरामन तोता से सुनकर चित्तौड़ के राजा रत्नसेन में मोह जगा और वह पद्मावती को प्राप्त करने के लिए अपनी माँ को तथा पत्नी नागमती को छोड़कर तोता द्वारा बताये गये मार्ग से योगी बनकर सिंहलद्वीप की ओर चल पड़ा। आरम्भ में वह गन्धर्वसेन द्वारा बन्दी बनाया गया, किन्तु बाद में पद्मावती को प्राप्त करके ही लौटा। पद्मावती के रूप की प्रशंसा रत्नसेन द्वारा निष्कासित राघव-चेतन से अलाउद्दीन को सुनने को मिली। उसने छल से पद्मावती को देखा और राजा को बन्दी बनाया। गोरा-बादल के प्रयत्न से राजा मुक्त हुए। बाद में कुम्भलनेर के राजा देवपाल से युद्ध करता हुआ राजा रत्नसेन मारा गया। बादल को गढ़-पति बना पद्मावती तथा नागमती सती हो गयीं। इसी समय अलाउद्दीन का भी आक्रमण हुआ और उसे केवल पद्मावती का क्षार ही मिल सका।

कथा की ऐतिहासिकता :- इस कथा के तीनों प्रदेश सिंहलगढ़, चित्तौड़ और दिल्ली ऐतिहासिक हैं। अलाउद्दीन की चित्तौड़ पर चढ़ाई ऐतिहासिक घटना है! लौकिक कथा के रूप में अलाउद्दीन का पद्मावती पर मोहित होना भी सिद्ध है, किन्तु इस प्रसंग में देवपाल और राघव चेतन की कथा को जोड़ना कल्पनाजन्य है। अलाउद्दीन के काल में कुंभलनेर का पता भी नहीं था, इसलिए उसकी ऐतिहासिकता को सिद्ध करना ही व्यर्थ है। रत्नसेन को अलाउद्दीन के हाथ से न मरवाकर देवपाल के हाथ से मरवा देने के लिए ही जायसी ने देवपाल की कथा का समावेश किया है। इसप्रकार पद्मावत का कुछ अंश ऐतिहासिक अवश्य है किन्तु इसके पूर्वार्ध की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। चित्रसेन, गन्धर्वसेन, रत्नसेन, नागमती आदि पात्र भी कल्पित हैं। इतिहास में पद्मिनी के पति का नाम लक्ष्मण सिंह मिलता है, रत्नसेन नहीं । सिंहलद्वीप में पद्मिनी स्त्रियों का वाहुल्य दिखाना गोरख-पंथ के प्रभाववश सम्भव हुआ है।

पद्मावत की प्रेम-भावना और श्रृङ्गार-भावना :- कथा के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जायसी कृत पद्मावत प्रेम-प्रधान काव्य है। पद्मावत में नायक रत्नसेन के हृदय में रानी पद्मावती के प्रति प्रेम गुण-श्रवण के आधार पर जागृत हुआ। जायसी की इस प्रेम-कथा में शारीरिक पक्ष-चुम्बन, आलिंगन-का कथन बहुत कम हुआ है। उसमें मानसिक पक्ष की ही प्रधानता है। मन की भावनाओं-उल्लास-वेदना-का कथन ही अधिक है। शृंगार के दोनों ही पक्षों-संयोग और वियोग का सुन्दर चित्र जायसी ने प्रस्तुत किया है।

विरह-वर्णन में जायसी ने अत्युक्तियों का आश्रय लिया है, किन्तु उनकी अत्युक्तियाँ भी गम्भीरता-समन्वित हैं। विरह का ताप हृदय को जैसा जान पड़ता है उसका ही कथन जायसी ने किया है। नागमती के वियोग के वर्णन में नागमती के आँसुओं से सारी सृष्टि भींगी दिखलाई पड़ती है। उसका विरह-वर्णन हिन्दी-साहित्य की अपूर्व निधि है। विरह में उसे पशु-पक्षी भी अपने सुहृद लगते हैं और उनसे वह अपनी व्यथा कहती है। नागमती की व्यथा सुन पक्षी भी उससे प्रश्न करते और सहानुभूति दिखलाते हैं। अन्त में नागमती एक पक्षी को अपने पवित्र प्रेम का संदेश देकर पद्मावती के पास भेजती है :-

"पद्मावति सौं कहेहु विहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम।।
मोंहिं भोग सौं काज न बारी। सौंह दिष्टि कै चाहनहारी।।"

विप्रलंभ कथन में जहाँ जायसी ने भारतीय पद्धति को स्वीकार किया है, वहाँ वीभत्स दृश्य नहीं आने पाया है। रत्नसेन के विरह में पद्मावती का सूखना देखिए :-

'कंवल सूख पखुरी बेहरानी। गलि गलि कै मिलि छार हेरानी।।'

विरह-वर्णन में बारह-मासा का कथन कर जायसी ने विरह की तीव्रता को अति सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है। विरह-दशा में रानी अपना रानित्व भूलकर सोचती है :-

'पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मंदिर को छावा।।'

एक ओर नागमती की विरह-जन्य निरवलम्बता का परिचय इस कथन से मिलता है तो दूसरी ओर जायसी की भावुकता का, किन्तु विरह के कथन में कहीं-कहीं ऊहात्मक प्रयोग भी हो गये हैं। 'बारह-मासा' वर्णन वियोग के उद्दीपन रूप में ही प्रस्तुत है।

संयोग श्रृङ्गार का कथन करने के लिए जायसी ने षट्ऋतु-वर्णन किया है। यह वर्णन भी उद्दीपन के रूप में ही हुआ है। राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती को पावस बड़ा ही सुन्दर लगता है :-

"चमक बीजु बरसै जस सोना। दादुर मोर शब्द सुठि लोना।।"

गगन के गरजते ही वह चौंककर प्रिय के गले लग जाती है। विवाहोपरान्त पद्मावती और रत्नसेन का समागम कवि ने बड़े विस्तार से वर्णित किया हैं। पहले समागम के समय पद्मावती समागम का भय बतलाती है। इससे वह नवोढ़ा नायिका-सी लगती है। उसे यह ज्ञान सूआ के द्वारा ही सम्भवतः मिला होगा। संयोग के चित्रण में जहाँ जायसी ने शारीरिक-सम्बन्ध का कथन किया है, वहाँ कुछ अश्लीलता भी आ गयी है --

"भयउ जूझ जस रावन रामा। सेज विधंसि विरह संग्रामा।।
लीन्ह लंक, कन्चन गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब टूटा।।"

इन पंक्तियों में 'रति-संग्राम' का कुरुचिपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। जायसी के पद्मावत में ऐसे चित्र कम आये हैं, किन्तु इनका भी कथन स्थान-स्थान पर हुआ है।

वर्णन शैली और जायसी का प्रकृति चित्रण :- जायसी वर्णन के क्षेत्र में अद्वितीय हैं। सिंहलगढ़ वर्णन, चित्तौड़गढ़ वर्णन आदि प्रकरणों में उनकी वर्णन-शैली का सुन्दर परिचय मिलता है। सूक्ष्म से सूक्ष्म और स्थूल से स्थूल वस्तुओं का भी कथन जायसी ने वर्णन करते समय किया है।

सूफियों की तरह जायसी ने भी प्रकृति-प्रेम को परमात्मा तक पहुँचने का साधना माना है। प्रकृति-चित्रण में कहीं-कहीं जायसी ने परिगणन शैली का परिचय दिया है। इस शैली में वे प्राकृतिक वस्तुओं की सूची प्रस्तुत करते हैं--

"खिरना पाकि खाँड़ असि मीठी। जामुन पाकि भँवर अस दीठी।।
पुनि महुआ चुड अधिक मिठासू। मधु जस मीठ पुहुप जस बासू।।
लँवग, सुपारी, जायफल सब घर धरे अनूप।
आसपास इमली और घन तार खजूर।।"

यहाँ विभिन्न पदार्थों की गणना ही की गयी हैं

कहीं-कहीं जायसी का प्रकृति-वर्णन बहुत सजीव हो उठा है। पद्मावती पर सरोवर को मुग्ध होता दिखाकर जायसी ने प्रकृति की सजीवता व्यक्त की है--

"सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरेहि लेइ।।"

प्रकृति को उपमान रूप में भी जायसी ने स्वीकार किया है। इस दृष्टि से उनका प्रकृति-वर्णन महत्त्वपूर्ण है। हृदय की व्यथा को बताने के लिए 'काई के फटे हुए रूप' का उपमान देखिए--

"कित करमुहैं नैन भए, जीउ हरा जेहि बाट।
सरवर नीर-विछोह जिमि दरकि दरकि हिय फाट।।"

जायसी ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में चित्रित करने में भी बड़ी सफलता प्राप्त की है। बारहमासा और षट्ऋतु वर्णन-विरह और संयोग के उद्दीपन हेतु ही प्रस्तुत है।

जायसी का रहस्यवाद :- रहस्यवाद के दो रूप हैं- (१) भावनात्मक (२) साधनात्मक। जायसी प्रेमाश्रयी शाखा के कवि थे, इसलिए उनकी कविता में भावनात्मक रहस्यवाद का अधिक कथन हुआ है। भावनात्मक रहस्यवाद में भगवान से जीव का सम्बन्ध दिखाकर उसी भगवान की ज्योति से सारे संसार को ज्योतित बताया जाता है। जायसी ने भी उस परब्रह्म की शक्ति का परिचय देते हुए उसके वान से 'सगरौ संसारा' को 'वेधि रहा' देखा है। "उन्ह बानन अस को जो न मारा। वेधि रहा

सगरौ संसारा।।" से उनकी यह भावना स्पष्ट है। रहस्यवादी की तरह उन्होंने भी प्रिय को हृदय में ही देखा है-:

"पिउ हिरदय अहै भेंट न होई। को रे मिलाव कहाँ केहि रोई।"

यहाँ प्रिय को हृदय में ही देखा गया है। जायसी ने पद्मावत के अन्त में 'तन चितउर मन राजा कीन्हा' जैसी पंक्तियों को लिखकर रूपक का जो स्पष्टीकरण किया है उससे भी उनकी सूफी-साधना और रहस्यवादी भावना का ही परिचय मिलता है। भगवान से मिलने के लिए जीव को चार रास्तों से बढ़ना पड़ता है। इसे सूफी-मार्ग में 'शरीअत', 'तरीकत', 'मारिफत' और 'हक़ीकत' कहते हैं। भारतीय रहस्यवाद में भी परिचय, अनुभूति, पत्र-लेखन और मिलन की क्रियाएं मान्य हैं। सूफी-सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए जायसी ने उन चारों मार्गों का कथन किया है-

"नवौं खंड नव पँवरी, औ तहँ बज्र केवार।
चारि बसेरे सो चढ़ै, सत सों चढ़ै जो पार।।"

'चार बसेरे' सूफी मत की वे चार सीढ़ियाँ ही हैं, जिनसे जीव ब्रह्म से मिलने में समर्थ होता है।

रहस्यवाद के क्षेत्र में गुरु का महत्त्व सन्तों ने भी स्वीकार किया है और सूफियों ने भी। जायसी ने 'गुरु सूवा जिमि पंथ दिखावा' के द्वारा हीरामन तोता का ज्ञान दिखलाकर गुरु के महत्त्व को ही प्रतिपादित किया है। रत्नसेन और पद्मावती का मिलन जीवात्मा और परमात्मा का ही मिलन-प्रतीक है। जीव और ब्रह्म के मिलन में माया बाधक मानी गयी है, उसे इसीलिए सन्तों ने 'ठगिनी' कहा है। नागमती को 'माया' और राघव चेतन को शैतान कहकर जायसी ने इसी तथ्य की ओर संकेत किया है।

जायसी पर हठयोग का भी प्रभाव पड़ा था। इसके प्रभाववश जायसी ने साधनात्मक रहस्यवाद को भी पुष्ट किया है।

"नवौ पौरि पर दसौं दुआरा। तेहि पर बाज राज घरियारा।"
और "गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी। पानी भरहिं जैसे दुरपदी।।"

जैसी पंक्तियों में हठयोगी प्रतीक का आश्रय लेकर ब्रह्मरंध्र, इंगला, पिंगला आदि का कथन किया गया है और उनके माध्यम से साधनात्मक रहस्यवाद को पुष्ट किया गया है।

जायसी की काव्य-कला :- काव्य-कला पर विचार करते समय कवि की भाषा, रस-योजना, अलंकार-योजना और शैली पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

भाषाः- जायसी की भाषा ठेठ अवधी थी। उनकी भाषा में बहुत पुराने शब्द-रूपों का व्यवहार मिलता है। 'दिनिअर' 'ससहर' आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। जायसी की भाषा में कुछ पश्चिमी प्रयोग भी मिलते हैं जिससे भाषा अव्यवस्थित-सी हो गयी है। कहीं-कहीं शब्द के व्याकरण-विरुद्ध रूप भी मिल जाते हैं, जैसे 'दसन देखि कै बीजु लजाना' में 'लजानी' के स्थान पर 'लजाना' का प्रयोग।

उनकी भाषा में मुहावरों का भी प्रयोग है- "जोबन-नीर घटे का घटा। सत्त के बर जो नहिं हिय फटा' में 'हिय फटा' का प्रयोग द्रष्टव्य है। कहीं-कहीं शब्दों का प्रयाग भी त्रुटिपूर्ण अर्थ में हुआ है। 'निरास' शब्द का प्रयोग जायसी ने 'अनाश्रित' के अर्थ में किया है जो भ्रमपूर्ण है। जायसी की भाषा में न्यून-पदत्व दोष भी बहुत हैं, इसीलिए उनकी भाषा अव्यवस्थित है। उनकी भाषा में समस्त-पदों का प्रयोग अल्पतर है। समास करते समय उन्होंने अधिकतर फारसी की पद्धति को ही स्वीकार किया है। 'रवि किरिन' लिखने की अपेक्षा ने 'किरिन-रवि' लिखते हैं-"भा भिनसार किरिन रवि फूटी।"

रस :- रस की दृष्टि से जायसी के पद्मावत में शृंगार-रस को प्रधानता मिली है। शृंगार के दोनों पक्षों-वियोग और संयोग-तथा वियोग के विभिन्न रूपों-विप्रलम्भ, प्रवास आदि-का कथन इस कृति में हुआ है। प्रसंगों के अनुसार वात्सल्य, करुण, रौद्र, वीर आदि रसों का परिचय भी दिया गया है। जब रत्नसेन योगी बनकर चलता है तब माँ का विलाप वात्सल्य रस की ही सृष्टि करता है। रत्नसेन की मृत्यु पर 'रोवहि रानी तजहिं पराना' जैसी पंक्तियों में करुण रस का परिपाक है। अलाउद्दीन का पत्र पाने पर जब राजा में क्रोध जागता हैं तब रौद्र रस की सृष्टि होती है। 'सुनि अस लिखा उठा करि राजा। जानहु देव तड़पि घन गाजा।' में रौद्र-रस का दर्शन होता है। गोरा-बादल की प्रतिज्ञा और उनके युद्ध में वीर-रस की अद्भुत छटा देखने को मिलती है। इस प्रकार विभिन्न रसों का कथन इस प्रवन्धात्मक काव्य में हुआ है। व्यंजना रूप में हास्य और वीभत्स भी कहीं-कहीं आ गया है।

अलंकार :- जायसी की कविता में सादृश्य-मूलक अलंकारों का बाहुल्य है। जायसी के पद्मावत की कथा दुरंगी छवि से युक्त है। उसमें एक ओर तो लौकिक-प्रेम की गाथा कही गयी है और दूसरी ओर आध्यात्म-भाव का कथन किया गया है। यदि प्रति पंक्ति में यह दोनों रूप होता तो पद्मावत को अन्योक्ति-ग्रन्थ कहा जाता, किन्तु ऐसा है नहीं। लौकिक-कथा के बीच कहीं-कहीं ही आध्यात्मिक पक्ष व्यंजित है। इसलिए इसे समासोक्तिमूलक ग्रन्थ कहा जाता है।

सादृश्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिक है। जायसी द्वारा प्रयुक्त कुछ अलंकारों को देखिए :-

उत्प्रेक्षा-- *"अस वै नयन चक्र दुई भँवर समुद्र उलथाहिं।*
जनु जिउ घालहि डोल गुँह लेइ आवहि, लेइ जाहि।।"

श्लेष और रूपक :- *"जोबन-जल दिन दिन जस घटा।*
भँवर अपार, हंस परगटा।।"

इसमें 'जोबन-जल' में रूपक है और 'भँवर' में श्लेष।

व्यतिरेक-- *"का सरवरि तेहि देउ मयंकू।*
चाँद कलंकी वह निकलंकू।।"

निदर्शना और यमक-- *"धरती बान बेधि सब राखी।*
साखी ठाढ़ देत सब साखी।।"

शैली :- शैली की दृष्टि से जायसी ने पद्मावत के लिखने में मसनवी पद्धति को स्वीकार किया है। मसनवी पद्धति में पाँच या सात बन्द के बाद एक बैत देकर पुनः पाँच या सात बन्द लिखने का क्रम होता है। जायसी ने भी इसी क्रम को माना है। उन्होंने सात चौपाई के बाद एक दोहा का प्रयोग किया है। इसी पद्धति के आधार पर ही जायसी ने आरम्भ में ईश्वर-स्तुति, पैगम्बर वन्दना, शाहेवक्त शेरशाह की प्रशंसा तथा अपना परिचय दिया है और अन्त में कथा का कथन कर रूपक स्पष्ट किया है। मसनवी पद्धति के आधार पर ही पद्मावत में भी शीर्षकों का उल्लेख घटना-क्रम के आधार पर किया गया। अतः स्पष्ट है कि जायसी ने पद्मावत में मसनवी पद्धति को स्वीकार किया है और उसी के अनुसार प्रेम-पंथ की कठिनाइयों का भी उन्होंने परिचय दिया है।

जायसी के भाव-पक्ष और कला-पक्ष पर विचार कर लेने के बाद यह कहा जा सकता है कि वे उदारवादी दृष्टि के रहस्यवादी कवि थे। 'प्रेम की पीर' से युक्त होने के कारण उन्होंने अपने काव्य में प्रेम-भाव की पुष्टि की है। वे भक्तिकाल के निर्गुण-धारा की प्रेमाश्रयी-शाखा के कवियों में अग्रगण्य थे।

कबीर और जायसी

कबीर और जायसी दोनों ही भक्ति-काल की निर्गुण-मार्गी धारा के श्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। भक्ति की दृष्टि से यदि कबीर को ज्ञानाश्रयी शाखा का प्रवर्तक कहा जा सकता है तो जायसी भी प्रेमाश्रयी शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि सिद्ध होते हैं। कबीर सन्त मत के प्रधान प्रचारक थे तो जायसी सूफी मत के। ये दोनों ही कवि रहस्यवाद के पोषक थे। इनकी तुलना का आधार रहस्यवाद ही है। रहस्यवाद की दृष्टि से श्यामसुन्दर दास को कबीर का आसन सबसे ऊँचा लगा। उन्होंने केवल उन्हीं की कृतियों में शुद्ध रहस्यवाद का होना स्वीकार किया है। इसके विपरीत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को रमणीय और सुन्दर रहस्यवाद यदि कहीं दिखाई पड़ा तो वह जायसी में ही। अपनी इस भावना को व्यक्त करते हुए ही उन्होंने कहा-'कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिन्दी के कवियों में यदि कहीं रमणीय और सुन्दर रहस्यवाद है तो जायसी में, जिनकी भावुकता बहुत ही उच्चकोटि की है।"

रहस्यवाद के दो पक्ष होते हैं-- (१) साधनात्मक रहस्यवाद (२) भावनात्मक रहस्यवाद। हठयोगी साधना का प्रभाव कबीर और जायसी दोनों ही कवियों पर पड़ा और इसी प्रभाव के कारण इन दोनों ही कवियों ने साधनात्मक रहस्यवाद को अपनी कृतियों के माध्यम से व्यक्त किया है। कबीर ने शरीर को चादर का रूपक प्रदान कर इड़ा (इङ्गला), पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का तथा आठ कंवल दल चरखा का उल्लेख कर साधनात्मक रहस्यवाद का परिचय दिया है :-

"झीनी झीनी बीनी चदरिया
काहे के ताना, काहे क भरनी कौने तार से बीनी चदरिया।
इङ्गला पिंगला ताना भरनी सुषुमन तार से बीनी चदरिया।।"

इसके अतिरिक्त 'गगन चुबै बरसै अमी भीजै दास कबीर' जैसी पंक्तियों में भी उनके साधनात्मक रहस्यवाद का स्वरूप स्पष्ट है। हठयोगी साधना का प्रभाव जायसी पर भी पड़ा है। "नवौ खण्ड नव पौरी, औ तहँ बज्र केवार" जैसी पंक्तियों में यह प्रभाव स्पष्ट है, किन्तु जायसी ने हठयोगी साधना के साथ सूफी साधना का भी मेल स्थापित करने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि वे 'नवौं खण्ड नव पौरी, औ तहँ बज्र केवार' कहकर शान्त नहीं रह जाते बल्कि उसके आगे सूफी साधना की चार अवस्थाओं-शरीयत, तरीकत, मारिफत और हकीकत को चार बसेरे की संज्ञा देकर कह उठते हैं :-

"चारि बसेरे सो चढ़ै, सत सौं चढ़ै सो पार।"

भावात्मक रहस्यवाद की दृष्टि से कबीर और जायसी दोनों ही कवियों ने ईश्वर से जीवात्मा का प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया है। इन दोनों महानुभावों की विचार-धारा में अन्तर यह है कि जायसी ने परमात्मा को माशूक और जीव को आशिक रूप में देखा है। इसलिए उनकी कृति में जीवात्मा का प्रतीक रत्नसेन है और परमात्मा का प्रतीक पद्मावती है। कबीर ने परमात्मा को पति और जीवात्मा को पत्नी रूप में स्वीकार करते हुए कहा है--

"दुलहिनि गाबहु मंगलचार।
हम घर आये हो राजा राम भरतार।।"

उन्होंने राम को 'पिउ' और अपने को 'राम की बहुरिया' कहा है। आत्मा का परमात्मा से मिलन कराने के लिए गुरु की उपयोगिता को इन दोनों ही कवियों ने स्वीकार किया हैं। कबीर ने गुरु

का महत्त्व स्पष्ट करते हुए अनेक दोहों का कथन किया हैं। उनका तो विश्वास है कि हरि के रूठने पर ठौर मिल सकता है किन्तु गुरु के रूठने पर ठौर नहीं मिलता। गुरु के इसी महत्त्व के कारण उन्होंने गुरु को दण्डवत करते हुए कहा है:-

"गुरु कीजिए दण्डवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जाने भृङ्ग को, करि गये आप समान।।"

वे गोविन्द और गुरु में, पहले गुरु का पाँव छूते हैं और उनपर बलिहारी जाते हैं--

"गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाँय।
बलिहारी गुरु अप्पणैं गोविन्द दिया दिखाय।।"

जायसी ने गुरु के रूप में हीरामन तोते को प्रस्तुत किया है। इसी गुरु स्वरूप तोते के प्रयत्न से आत्मा रूप रत्नसेन की उत्कंठा परमात्मा रूप पद्मिनी की ओर जगी।

कबीर और जायसी दोनों ही कवियों ने माया को मिलन के क्षेत्र में बाधक माना है। कबीर ने माया को 'महाठगिनी' कहा है और जायसी ने 'अलाउद्दीन माया सुल्तानू' कहकर माया को प्रपञ्च-बुद्धि-सम्पन्न रूप में आँका हैं। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने राघव-चेतन को शैतान और नागमती को गोरख-धन्धा के रूप में देखा है।

प्रेम की तीव्रानुभूति और विरह-दशा के कथन में इन दोनों कवियों में पर्याप्त समानता मिलती है। इस समानता का परिचय इन कवियों के निम्नांकित दोहों से मिलता है :-

"हाड़ भये सब किंगरी, नसैं भई सब ताँति।
रोंव रोंव सों धुनि उठै, कहौं विथा केहि भाँति।।" -जायसी

और- *"सब रग ताँत रबाब तन, विरह बजावै नित्त ।*
और न कोई सुन सकै, कै साँई कै चित्त ।।" -कबीर

कबीर की भाषा सुधुक्कड़ी थी और उन्होंने मुख्यतः दोहा, सोरठा तथा गीत शैली को अपनाया था। जायसी की भाषा अवधी थी और उन्होंने दोहा-चौपाई में अपनी कृति 'पद्मावत' की रचना की थी। उनकी रचना मसनवी शैली पर हुई है। कबीर में ज्ञान-भाव की प्रचुरता और प्रकृति के प्रति उदासीनता है अतः उनकी कविता में नीरसता का आभास होता है। इसके विरुद्ध जायसी ने प्रेम-तत्व और प्रकृति-परिचय के द्वारा अपने काव्य को सरस बना दिया है।



सूरदास

जन्म-संवत् :-- १५३५ वि० मृत्यु-संवत् :-- १६३८-३६ वि०

जीवन-वृत्त :- अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों ही के आधार पर विचार करने पर सूरदास के सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाया गया है। उनके जन्म-सम्वत् के सम्बन्ध में कुछ विचारकों ने विचार किया और संवत् १५४० वि० को मान्य किया है, किन्तु दीनदयाल गुप्त ने- 'निजवार्ता' के उल्लेख 'सो सूरदास जी जब श्री आचार्य श्री महाप्रभु को प्राकट्य भयो है तब इनको जन्म भयो है'- को उद्घृत कर निर्णय दिया है कि उनका जन्मकाल १५३५ वि० है। उनके गो-लोकवास की तिथि के सम्बन्ध में भी बड़ा मतभेद है। आचार्य शुक्ल जी ने उनकी मृत्यु का सम्वत् १६२० वि० माना है, किन्तु ड्रा० दीनदयाल गुप्त ने मृत्यु-समय संवत् १६३८-३६ के लगभग ही स्वीकार किया है। विभिन्न प्रमाणों पर विचार करने पर डा० दीनदयाल गुप्त का मत ही अधिक प्रामाणिक लगता है। आचार्य शुक्ल और श्यामसुन्दर दास ने सूरदास जी का जन्म-स्थान रुनकता माना है किन्तु साम्प्रदायिक ग्रन्थों तथा कवि प्राणनाथ कृत 'अष्टसखामृत' में उनका जन्म स्थान दिल्ली से ४ कोस दूर सीही ग्राम में माना गया है। कुछ लोगों के मत के अनुसार वे सारस्वत ब्राह्मण थे और कुछ विद्वानों ने उन्हें ब्रह्मभट्ट, डाढ़ी आदि भी सिद्ध करना चाहा है, किन्तु अधिकांशतः उन्हें सारस्वत ब्राह्मण ही माना गया है और यह युक्तियुक्त भी है। मुंशीराम शर्मा तथा अन्य विद्वानों ने उन्हें जन्मान्ध माना है, परन्तु उनके रूप-वर्णन की पटुता को देखकर अधिकांश आलोचक उनकी जन्मान्धता पर सन्देह करते हैं।

सूरदास कृत पुस्तकों की एक लम्बी तालिका काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में दी गयी है। इसमें सूरदास जी के २५ ग्रन्थों का उल्लेख है। प्रभुदयाल मीतल ने 'सूर निर्णय' में सूर की ८ कृतियों को प्रामाणिक कहा है। उनके अनुसार सूर-सारावली, साहित्य-लहरी, सूरसागर, सूर सठी, सूर पचीसी, सेवाफल, स्फुट पद आदि ही सूरदास जी के प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। डा० दीनदयाल गुप्त के अनुसार सूरदास जी की केवल तीन कृतियाँ हैं -- सूर सारावली, सहित्य लहरी और सूरसागर। 'सूरसागर' सूरदास की प्रमुख कृति है। श्री मद्भागवत के प्रभाववश सूरसागर को भी १२ स्कन्धों में बाँट कर सूरदास जी ने लिखा है। भागवत का भावगत प्रभाव भी सूरसागर पर पड़ा है, किन्तु जिन कविताओं में यह प्रभाव लक्षित है वे भागवत के अनुवाद रूप में न होकर भाव की छाया लेकर लिखी गयी हैं। सूरसागर को श्री मद्भागवत का अनुवाद-मात्र नहीं कहा जां सकता है।

दार्शनिक विचार :- सूरदास भक्त-कवि थे, अतः उन्होंने जानबूझकर दार्शनिक-विचार नहीं प्रस्तुत किये हैं। वे पुष्टि-मार्ग में दीक्षित थे। वहाँ दार्शनिक विचारों का आदान-प्रदान होता था। उससे प्रभावित होने के कारण उनकी कविताओं में उनकी अनुभूति मुखर हो उठी है और उन्होंने माया, जीव, ब्रह्म आदि पर दार्शनिक ढंग से विचार किये हैं।

ब्रह्म के सम्बन्ध में विचार करते हुए सूरदास जी ने श्रीकृष्ण को ही ब्रह्म माना है और उन्हें अन्य देवों से श्रेष्ठ कहा है। श्रीकृष्ण में सगुण और निर्गुण दोनों की विशेषताओं को उन्होंने मान्यता दी है। ईश्वर और जीव का सम्बन्ध उन्होंने अंश और अंश के रूप में स्वीकार किया है। उन्होंने कहा है कि जब ब्रह्म जगत में जाता है तो वह जीव कहलाता है। माया से घिरा होने के कारण जीव ब्रह्म से अलग रहता है। माया से मुक्त होकर जीव ब्रह्म में मिल जाता है। दार्शनिक रूप में सूर ने माया को ब्रह्म की

प्रेरणा से सृष्टि करने वाली कहा है। सांसारिक रूप में वे माया को नारी के रूप में मानते हैं। पुष्टि-मार्ग का अनुसरण करते हुए उन्होंने भक्ति को मुक्ति की प्राप्ति का साधन कहा है।

भक्ति-भावना :- वल्लभाचार्य की पुष्टि-मार्गीय भक्ति में उपास्य के प्रति शुद्ध प्रेमाभिव्यक्ति को ही मान्यता मिली है। सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति का प्रदर्शन किया है। उनकी भक्ति मुख्यतः सखा-भाव की है किन्तु पुष्टि-मार्ग में आने के पूर्व उन्होंने विनय के भी विविध पदों का गान किया था। विनय के इन पदों में उन्होंने अपने को 'सब पतितन को टीकौ' माना है।इसी मान्यता के साथ वे अपने प्रभु को ही अपनी 'गति मति' मान बैठे हैं। उन्होंने अपने को अनाथ बता कर कहा है- **'अब कै राखि लेहु भगवान।'** सखा-भाव से उन्होंने भगवान कृष्ण की प्रत्येक लीला में भाग लिया है। इसी भक्ति की दृष्टि से सूरदास जी ने राधाकृष्ण के प्रेम-प्रंसगों का वर्णन भी- अपने को तटस्थ दर्शक मान कर- किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने वात्सल्य और मधुर भाव की भी भक्ति की है। माँ यशोदा के प्रसंग में वात्सल्य भक्ति का कथन है और राधा तथा गोपियों के संयोग-वियोग की कथा में मधुरभाव का प्रकाशन है। सूरदास जी की भक्ति साम्प्रदायिक न होकर समन्वयात्मक थी, इसीलिए उन्होंने शिव, देवी, गौरी, सूर्य आदि की भी वन्दना की है और राम की पूजा के पद भी कहे हैं :-

'सखी री नन्द-नन्दन देखु।
धूरि धूसरि जटा जूटनि हरि किये हर-भेष।'

में कृष्ण और शङ्कर की सम्मिलित झाँकी देखने योग्य है। भक्ति-मूलक पदों में पुष्टि-मार्ग से प्रभावित होने के कारण सूरदास जी ने सैद्धान्तिक बातें भी कहीं हैं। ब्रह्म, जीव आदि का विवेचन इसी प्रसंग में संभव हुआ है।

शृङ्गार वर्णन :- सूरदास की कृतियों में मूलतः शृङ्गार और वातसल्य रस का ही परिपाक हुआ है। वात्सल्य और शृङ्गार के जितने स्वरूपों की उद्भावना सूरदास जी ने की है, उतने स्वरूपों की उद्भावना अन्य कवियों ने नहीं की। शृङ्गार-रस का पूर्ण स्वरूप सूर की कृतियों में देखने को मिलता है। शृङ्गार के दोनों पक्षों- संयोग और वियोग-का वर्णन सूरदास जी ने किया है, किन्तु वियोग या विप्रलम्भ को ही प्रधानता मिली है। कृष्ण की गोकुल सम्बन्धी लीला और वृन्दावन में उनका रास संयोग-शृङ्गार की ही सृष्टि करता है। कृष्ण और गोपियों का 'लरिकाई का प्रेम' बढ़कर तरुणाई का प्रेम बन गया। सुन्दरता के सागर कृष्ण पर गोपियाँ मुग्ध हो उठीं। जब हरि व्रज की खोरि में खेलने निकले तो नैन-नैन मिल परी ठगोरी और राधा हरि का मुख देखने लगीं। इस आकर्षण से प्रेम हुआ, फिर तो रास-क्रीड़ा, संयोग सब कुछ सम्भव हो गया। संयोग का एक चित्र देखिए :-

नवल किशोर नवल नागरिया
अपनी भुजा स्याम भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया।

संयोग में 'रति' तक का वर्णन सूरदास जी ने किया है :-

'हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्हीं।
पियै बिन वसन करि उलटि धरि
भुजन भरि सुरति रति पूर प्रति निबल कीन्हीं।।"

संयोग की अपेक्षा वियोग के चित्रण में सूरदास का ध्यान अधिक रमा है। वियोग की ग्यारहें स्थितियों-अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा, मरण का कथन सूरदास जी ने किया है। 'ऊधौ स्याम यहाँ लै आवहु' में गोपियों की अभिलाषा व्यक्त है। 'इ

बिरियाँ वन में व्रज आवते' जैसी पंक्तियों में स्मरण का ही भाव व्यंजित है। वियोग में प्रकृति का सामंजस्य भी सूरदासजी ने अद्भुत ढंग से प्रदर्शित किया है। वियोग से पीड़ित गोपियों को जमुना भी विरह-ज्वर से जली हुई दीखती हैं। 'देखियत कालिंदी अति कारी' में इसी स्थिति का परिचय मिलता है। गोपियों को विरह में मधुवन का हरा रहना भी अच्छा नहीं लगता और वे क्षोभ से कह उठतीं हैं :- "मधुवन तुम कत रहत हरे।" गोपियों का प्रेम अपने कृष्ण के प्रति दृढ़ है। वे अपने कृष्ण के प्रति वैसे ही अनन्य प्रेम धारण करती हैं जैसे हारिल लकड़ी के प्रति। कृष्ण के विरुद्ध ब्रह्म की चर्चा चलाने पर गोपियाँ उद्धव को फटकारती भी हैं।

वात्सल्य वर्णन :- सूरदास जी ने बाल कृष्ण की बाल-लीलाओं का विस्तार के साथ कथन किया है। श्रीकृष्ण का कभी पलक मूँद लेना और उन्हें सोता जान कर यशोदा का संकेतों से बात करना, कितना स्वाभाविक है। माँ यशोदा श्रीकृष्ण को चलता हुआ देखने की अभिलाषा करतीं हैं :-

'जसुमति मन अभिलाष करै'।
कब मेरो लाल घुटुरुवनि रेंगै, कब धरती पग द्वैक धरे।'

यहाँ माँ यशोदा का वात्सल्य दर्शनीय है। श्रीकृष्ण को चलता देखकर वे प्रसन्न होतीं हैं। कृष्ण की बेनी के बढ़ने का बहाना कर उन्हें दूध पिलाती हैं और कभी उनपर क्रोध कर उन्हें मारने भी उठती हैं। कृष्ण की बाल-लीलाओं को देख उनका मन अन्ततः वात्सल्य से भर जाता है और वे उन्हें अंक में भर लेतीं हैं। कृष्ण भी बाल सुलभ चेष्टाएं करते हैं। कभी माखन को वे मुख में लिपटाते और कभी खम्भे में स्थित अपनी छाया को खिलाते हैं। कृष्ण के मथुरा जाने पर यशोदा कृष्ण के विरह में विलाप करती है। उनका विलाप तथा देवकी को भेजा गया उनका संदेश- **'हौ तो धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियो'**--वात्सल्य की अद्भुत छठा उत्पन्न करता है। माता यशोदा, देवी रोहिणी और बाबा नन्द के साथ होनेवाली कृष्ण की लीलाओं में वात्सल्य-भाव का ही दर्शन होता है।

रूप-वर्णन :- रूप-चित्रण करते समय कवि बाह्य अंग-प्रत्यंगों के सौन्दर्य का चित्रण करने के साथ आन्तरिक भावों का भी चित्रण करता है। कवि की सौन्दर्य-भावना का परिचय इन दोनों चित्रों के सम्बन्ध में विचार करने पर ही प्राप्त होता है। सूर-सागर के प्रत्येक पद में सूरदास द्वारा चित्रित रूप-सौन्दर्य देखने को मिलता है। श्रीकृष्ण की प्रत्येक मुद्रा, भाव-भंगिमा का इतना सुन्दर चित्र सूरदासजी ने अंकित किया है कि अन्यत्र वैसा चित्र प्राप्त करना दुर्लभ-सा है। कृष्ण के बाल-रूप से लेकर उनकी यौवन अवस्था तक के कोटि रूप-चित्रों का कथन बड़े कौशल से सूरदास जी ने किया है। बालकृष्ण का यह चित्र कितना मनोरम है--

"कहाँ लौं वरनौं सुन्दरताई।
खेलत कुँअर कनक आँगन में नैन निरख छवि छाई।।
कुलही लसति सिर स्याम सुन्दर कै बहु बिधि सुरंग बनाई।
मानौ नव-धन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई।।"

इसी पद में श्रीकृष्ण के चिकुर का; उनके मस्तक पर लटकते हुए नील, सेत अरु पीत लाल मनि का; दुंग्ध-दन्त की अद्भुत छवि का; खंडित वचन का और रेनु मंडित तन का भी अतीव सुन्दर वर्णन हुआ है। कृष्ण के जन्म से यौवन तक की विभिन्न अवस्थाओं के चित्र इसी प्रकार सामने आये हैं। उनकी सुषुप्तावस्था का, घुटने के बल चलने का, उँगली पकड़कर डगमग पाँव रखने का, नन्द के साथ भोजन करने का तथा अन्य सभी क्रियाओं का चित्र खड़ाकर, उनके यौवन का रूप भी सूरदासजी ने बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। उनके रूप पर ही गोपियाँ मुग्ध हो उठतीं हैं। एक गोपी उनपर

मुग्ध होकर उनके रूप का बखान अन्य गोपियों से करती है तथा उन्हें कृष्ण का रूप देखने को प्रेरित करती है--

"देखि री देखि आनन्द-कन्द ।
अलक अविरल चारु हास विलास भृकुटी भंग ।
सूर हरि की निरखि सोभा भई मनसा पंग ।।

सूरदासजी ने नारी-रूप का चित्रण पुरुष रूप की अपेक्षा कम किया है, किन्तु गोपियों और राधा के प्रसंग में उनके रूप का भी सौन्दर्य देखने योग्य है। हरि गोपियों के साथ फाग खेलते हैं और तब गोपियों का रूप देखने लायक हो जाता है--

"सारी पहिरि सुरंग, कसि कंचुकि काजर दै दै नैन।
बनि-बनि निकसि-निकसि भई ठाढ़ी, सुनि माधौ के बैन।।"

राधा का रूप-चित्रण देखिए--

"ससि-मुख तिलक दियौ मृगमद कौ खुटिया खुरी जराय जरी।
नासा तिल-प्रसून बेसरि-छवि मोतियन माँग सुहाग भरी।।
अति सुदेश मृदु चिकुर हरत चित गूँथे सुमन रसालहिं।
कबरी अति कमनीय सुभग सिर राजति गोरी बालहिं।।"

राधा के भौंह 'काम-कमान' के समान और कंठ 'कंबु' के समान हैं। इस प्रकार सूरदास ने राधा को रूप-राशि तथा सुख-राशि के रूप में चित्रित किया है।

सूरदास का रूप-चित्रण विचारकों को यह सोचने को बाध्य कर देता है कि वे जन्मान्ध थे या नहीं। रूप का इतना विशद-वर्णन जन्मान्ध व्यक्ति कैसे कर सकता है ?

प्रकृति वर्णन :- प्रकृति का चित्रण हिन्दी साहित्य में ६ रूपों में हुआ है-- (१) अलंकार रूप में, (२) उद्दीपन रूप में, (३) मानवीकरण रूप में, (४) उपदेश देने के लिए, (५) अलंकार कथन के निमित्त, (६) रहस्यवादी अभिव्यक्ति के लिए। सूरदासजी का प्रकृति-वर्णन उद्दीपन रूप में अधिक है, किन्तु प्रकृति का आलम्बन-रूप भी सूर की कविताओं में कम नहीं है। प्रातः का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है-

"चिरई चुहचुहानी, चाँद कौ ज्योति परानी,
रजनी बिहानी प्राची पियरी प्रवान की।
तारेका दुरानी तम कट्यो तमचुर बोले,
स्रवन भनक परी ललिता के तान की।।
भृंग मिले भारजा, बिछुरि जोरी कोक मिले,
उतरी पनच अब काम के कमान की।
अथवत आए गृह, बहुरि उवत भानु,
उठै प्राननाथ महा जान मनि जानकी।।"

इस प्रात-वर्णन में प्रातः के एक-एक रूप का चित्रण हुआ है। यह वर्णन आलम्बनगत ही है।

उद्दीपन रूप में संयोग के समय प्रकृति सुखकारी लगती है और वियोग के समय दुखदायी। प्रकृति की इसी सापेक्षता के कारण "पिय बिन नागिनकारी रात" लगती है। बसन्त, पावस, शरद सबके ही वर्णन में उद्दीपन का भाव ही प्रधान रहा है। मूर्तिकरण या मानवीकरण का रूप 'देखियत कालिन्दी अति कारी' में देखने को मिलता है। वहाँ जमुना कृष्ण के विरह-ज्वर में जली हुई नायिका-सी लगती हैं। उपदेश देने के लिए प्रकृति का चित्रण सूर के काव्य में नहीं मिलता है। प्रकृति के माध्यम से रहस्यवादी अभिव्यक्ति करना भी सूर को उपयुक्त नहीं लगा। अतः प्रकृति का यह रूप भी उनकी कविताओं में देखने को नहीं मिलता है। 'अद्‌भुत एक अनुपम बाग' में अलंकार-प्रदर्शन के रूप में प्रकृति का कथन हुआ है। इस प्रकार सूरदास जी ने प्रकृति को आलम्बन रूप में, उद्दीपन रूप में, मानवीकरण के लिए और अलंकार प्रदर्शन के लिए ही स्वीकार किया है। उनके काव्य में प्रकृति के इन चार रूपों की ही उद्‌भावना हुई है।

भ्रमरगीत :- भ्रमर गीत की परिपाटी का आरम्भ श्रीमद्‌भागवत के 'अध्याय द्वै' से माना जाता है। भ्रमर गीतों में 'भ्रमर' को संकेत कर उद्धव और कृष्ण पर व्यंग किया गया है, साथ ही निर्गुण का खण्डन और सगुण का मण्डन भी किया गया है। श्रीमद्‌भागवत का भ्रमर-गीत वर्णनात्मक है, अतः नीरस है। सूरदास ने भागवत के अनुवाद के रूप में जिन भ्रमर-गीतों की रचना की, वे चौपाई छन्द में हैं; किन्तु जिन भ्रमर-गीतों में उनकी मौलिक भावनाएं व्यक्त हैं, वे पद-शैली में ही लिखे गये हैं। कृष्ण-भक्तों में सूरदास के पश्चात् 'नन्ददास' और तत्पश्चात् 'रत्नाकर' के भ्रमर-गीतों को महत्त्व मिला है। सूरदास ने भ्रमर-गीत के माध्यम से ज्ञानमार्गी उद्धव को प्रेम-भक्ति की ओर आकृष्ट किया है। सूरदास के भ्रमर-गीत में हृदय-पक्ष की प्रधानता और गोपियों का भोलापन मुखरित है। नन्ददास के भ्रमर-गीतों में बौद्धिकता अधिक है और रत्नाकर की गोपियों में चांचल्य अधिक है। नन्ददास के भ्रमर-गीत वर्णनात्मक प्रबन्ध के रूप में हैं, अतः उनमें पुनरुक्ति नहीं है और सूरदास के भ्रमर-गीत मुक्तक-शैली में हैं अतः उनमें भावों की पुनरुक्ति है। सूरदास जी के भ्रमर-गीतों में गोपियों की वचन-वक्रता अत्यन्त मनोहारिणी है।

कला-पक्ष :- सूरदास के काव्य के भाव-पक्ष पर विचार करने के बाद उनके कला-पक्ष पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। कला-पक्ष पर विचार करने के लिए काव्य के रस, छन्द, अलंकार और भाषा पर विचार करना अपेक्षित है :-

रसः- सूरदास जी रस की दृष्टि से मूलतः शृंगार और वात्सल्य रस के कवि थे। उनके शृंगार वर्णन और वात्सल्य वर्णन में दो रसों की कविताओं पर विचार हो चुका है। हास्य की व्यंजना उन्होंने बाल-लीला के सम्बन्ध में ही की है। दावानल के प्रसंग में उन्होंने करुण रस की व्यंजना की है-

"अब कै राखि लेहु गोपाल।
दसहूँ दिस दुसह दावागिनि उपजी है इहि काल।।"

जैसी पंक्तियों में करुण भाव का चित्रण है। 'झहरात भहरात दवानल आयो' में सूरदास जी ने भयानक रस को पुष्ट किया है और कृष्ण तथा बलराम पर कंस का क्रोध दिखाते समय उन्होंने रौद्र रस का कथन किया है। **"मुष्टि कै मरदि चाणूर चुरकट कर्‍यौ, कंसको कम्प भयौ रङ्गभूमि अनुराग रागी।"** जैसी पंक्तियों में वीर-रस का परिपाक है। उनकी कविताओं में अद्भुत रस, शांत-रस, हास्य रस की भी छिट-पुट अभिव्यक्ति हुई है। सूर के पदों में प्रायः सभी रसों का कथन है, किन्तु प्रधानता शृंगार और वात्सल्य को ही मिली है।

छन्द :- छन्द की दृष्टि से सूर-सागर में विभिन्न प्रकार के छन्दों का व्यवहार हुआ है। चौपाई,

दोहा, रोला, रूपमाला, गीतिका, सरसी, लावनी, सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दों में सूरदास जी ने अपने भावों की अभिव्यक्ति की है। सूर-सागर मुक्तकों का संग्रह है, इसलिए उसमें गेय मुक्तक-पदों का बाहुल्य है। उनके गेय पदों में राग-रागिनियों का सुन्दर समावेश है।

अलंकार :- सूरदास की कविताओं में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों ही का सुन्दर पोषण हुआ है। अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों के साथ ही उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, स्मरण आदि अर्थालंकारो का बड़ा ही सुन्दर 'प्रयोग सूरदास के पदों में मिलता है। यथा :-

अनुप्रास-- *"मनहुँ ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भव विलास।*
आस त्रास तिमिर तोष तरनि तेज जारे।।"

उत्प्रेक्षा-- *"नील, स्वेत पर पीत लाल मनि लटकन भाल रुराई।*
सनि, गुरु, असुर, देवगुरु मिलि मनो भौन सहित समुदाई।"

रूपक-- *"देखौ माई सुन्दरता कौ सागर।*
तनु अति स्याम अगाध अंबुनिधि, कटि-पटपीत तरङ्ग ।।"

प्रतीप-- *"उपमा हरितन देखि लजाने।*
मुख निरखत ससि गयो अंबर कों तड़ित दसन छबि हेरौ।"

दृष्टकूट के पदों में यमक और श्लेष का भी अद्भुत प्रयोग हुआ है।

भाषा :- सूरदास जी की कविताओं में साहित्यिक ब्रजभाषा का दर्शन होता है। वात्सल्य और शृङ्गार की व्यंजना में उनकी भाषा मधुर गुण से पूर्ण रही है। उनकी भाषा में चित्र-विधान की अपूर्व शक्ति है। दृष्ट-कूट के पदों में भाषा कुछ दुरूह अवश्य हो गयी है किन्तु अन्य सभी स्थलों पर उसका सरल-सुबोध रूप ही देखने को मिलता है। उनकी ब्रजभाषा वर्तमान ब्रजभाषा के अधिक निकट है।भाषा में उन्होंने 'ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग किया है। यथा 'चरण' को 'चरन' और 'रेणु' को 'रेनु' लिखना। ब्रजभाषा के रंग में रँगे संस्कृत शब्दों का ही उन्होंने अधिक प्रयोग किया है। कहीं-कहीं उन्होंने विदेशी शब्दों का भी प्रयोग किया है यथा 'गरीबनिवाज़' 'साबिक जमा' 'सिरताज' आदि। उनकी भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी यथोचित प्रयोग है। 'मेरी बात गई इन आगे अबहि करत बिनु पानी' में 'बिन पानी करना' और 'सूर स्याम तेरे बस राधा कहति लीक हैं खाँची।' में 'लीक खींचकर कहना' का प्रयोग इसी प्रकार का है।

सूर-काव्य में प्रेम, वात्सल्य आदि भावों का सजीव चित्रण है। लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण के रूप-वर्णन और उनकी लीलाओं के कथन में सूरदास जी पूर्णतः सफल रहे है। सूरदास जी ने शृङ्गार और वात्सल्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थितियों का भी कलात्मक पद्धति पर कथन किया है। निश्चित ही वे कृष्ण-भक्ति-शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि और हिन्दी साहित्य के गौरवस्तम्भ हैं।



सन्तकवि गोस्वामी तुलसीदास

जन्म-संवत् :-- १५८९ वि०   मृत्यु-संवत् :-- १६८० वि०

जीवन-वृत्त :- गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-संवत्, जन्म-स्थान आदि के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। बाबा बेणीमाधवदास के अनुसार उनका जन्म-संवत् १५५४ वि० माना गया है। 'गोसाँई-चरित' और 'तुलसी-चरित' में भी इसे ही जन्म-सम्वत् बतलाया गया है। शिवसिंह के अनुसार उनका जन्म-संवत् १५८३ स्वीकार किया जाना चाहिए, किन्तु कई विद्वानों ने सं० १५८९ को ही जन्म-संवत् माना हे। गोस्वामी जी के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं। पं० रामगुलाम द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि ने उनका जन्म-स्थान बाँदा जिलान्तर्गत राजापुर ग्राम में माना है। कुछ विद्वानों के मतानुसार वे सोरों में पैदा हुए थे और कुछ लोग उनका जन्म-स्थान अयोध्या भी सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। उनके पिता का नाम आत्माराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। जन्म के समय मुँह से राम निकलने के कारण उन्हें रामबोला कहा गया और अभुक्त-मूल नक्षत्र में जन्म लेने के कारण उन्हें परिवार वालों ने त्याग दिया। अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ बातें स्वयं तुलसीदास ने भी कहीं है- 'राम को गुलाम रामबोला राखो राम' के द्वारा उनका रामबोला नाम और 'मातु पिता जग जाय तज्यो' के द्वारा उनका जन्म के बाद त्यागा जाना प्रमाणित है। उनके आरम्भिक गुरु बाबा नरहरिदास थे। बाद में महात्मा शेष-सनातन से काशी में गोस्वामी जी ने वेद, शास्त्र, दर्शन, पुराण आदि का ज्ञान प्राप्त किया। उनका विवाह रत्नावली नामक सुन्दरी कन्या से हुआ था। उसके मायके जाने पर वे प्रेमान्ध हो विविध कठिनाइयों को पार कर अर्धरात्रि में उसके पास पहुँचे। पत्नी विदुषी थी, उसने उनके इस आसक्ति पर उन्हें फटकारते हुए कहा--

"हाड़ माँस के देह मम, तापर एती प्रीति।
होती जो श्रीराम में, होति न तब भवभीति।।"

इससे इनमें वैराग्य भाव जगा और ये राम के अनन्य भक्त हो गये। 'ब्याह न करोवी जाति-पाति न चहत हौं' के आधार पर कुछ लोग इनके विवाह की कथा को कपोल-कल्पित भी कहते हैं। तुलसीदास की मृत्यु के सम्बन्ध में भी विभिन्न विचार सामने आये हैं। जनश्रुति के अनुसार उनकी मृत्यु सं० १६८० की श्रावण शुक्ला सप्तमी को हुई, किन्तु बेणीमाधवदास कृत 'गोसाँई चरित' में सं० १६८० में श्रावण कृष्ण तृतीया दिन शनिवार को गोस्वामी जी का गोलोकवास होना लिखा है। गोस्वामीजी के मित्र टोडर के वंश में इसी दिन आज भी लोग उनकी स्मृति में अन्नदान करते हैं। अतः यही तिथि सही लगती है। अधिकांश विद्वानों ने भी इसी का समर्थन किया है।

गोस्वामी जी के ३७ ग्रन्थों का उल्लेख किया जाता है; किन्तु उनके १२ ग्रन्थों को ही प्रामाणिक माना गया है। इन ग्रन्थों की सूची इस प्रकार है- रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा प्रश्न, दोहावली, कवितावली, गीतावली, कृष्ण गीतावली, विनय पत्रिका, रामचरित मानस और तुलसी सतसई।

तुलसीदास की भक्ति :- मर्यादा पुरुषोत्तम राम के ध्यान को सकल कल्याणमय मानकर तुलसीदास ने दास-भाव की अनन्य भक्ति की है। वे राम के भक्त थे। उन्होंने राम-नाम की महिमा का गुणगान कर माया के बन्धन में बँधे जीव को मुक्ति दिलाने का प्रयत्न किया। सगुण भक्ति के उपासक

तुलसीदास ने निर्गुण-भक्ति को कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना है। उनके अनुसार 'सगुण' और 'अगुण' या 'निर्गुण' में कोई भेद नहीं है। **'सगुनहि अगुनहिं नहिं कछु भेदा'** के द्वारा उन्होंने अपने इस दृष्टिकोण का परिचय दिया है। सगुण ब्रह्म में भी शील, शक्ति और सौन्दर्य के आधार राम के प्रति तुलसीदास का अधिक आकर्षण रहा। राम के प्रति उन्होंने सेवक भाव ग्रहण कर सेवक-सेव्य भाव से भक्ति की। **'सेवक-सेव्य-भाव बिनु भव न तरिय उरगारि'** के द्वारा उनकी इस भक्ति का परिचय मिलता है। **'राम सो बड़ो है कौन मोसों कौन छोटो'** के द्वारा भी उन्होंने राम के समक्ष अपनी हीनता का प्रदर्शन कर विनय के स्वर में अपनी भक्ति के स्वरूप को ही स्पष्ट किया है। राम के साथ प्रीति करके नीति के पथ पर चलने को ही उन्होंने भक्ति की संज्ञा दी है--

"प्रीति राम सों नीति पथ चलिय रागरिस जीति।
तुलसी सन्तन के मते, इहै भगति की रीति।।"

बिना राम की भक्ति के भव-सागर को पार कर सकना वे असम्भव मानते हैं। 'बारि मथे घृत होय बरु, सिकता ते बरु तेल' पर 'राम भगति बिनु' भव का तरना सम्भव नहीं है। भक्ति का भी आदर्श गोस्वामी जी ने रक्खा है और वह है 'अनन्य भक्ति' का आदर्श। चातक के प्रेम का परिचय देकर भक्ति की अनन्यता को उन्होंने मान्यता दी है। अनन्य भक्ति को मान्यता देने के कारण ही वे स्वयं भी राम के अनन्य भक्त बने रहे। उन्होंने स्पष्टतः कहा है -

"जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही।।"

भक्ति के क्षेत्र में तुलसीदास ने किसी आडम्बर को मान्य नहीं किया। मन की सरलता, वचन की सरलता और कर्म की सरलता को ही उन्होंने भक्ति का मूल माना--

"सूधे मन, सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर-प्रेम-प्रसूति।।"

भक्ति की प्राप्ति हुई; यह तव समझना चाहिए जब व्यक्ति कलि के कुचालों से मुक्त हो जाय। इसीलिए गोस्वामी जी ने प्रभु से प्रार्थना की है और कहा है--

"तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहैं।"

ज्ञान और भक्ति पर विचार करते हुए गोस्वामी जी ने कहा है कि ज्ञान और भक्ति में कुछ भेद नहीं है, किन्तु फिर भी उन्होंने भक्ति को ही स्वीका किया है। इस सम्बन्ध में भावात्मक तर्क देते हुए उन्होंने कहा है कि माया नारी है और उससे आकृष्ट हो हम ब्रह्म से अलग हो उठे हैं। ज्ञान भी पुल्लिंग है अतः माया पर आकृष्ट हो जाएगा, पर भक्ति स्वयं स्त्रीलिंग है, इसलिए वह माया पर आकृष्ट न होगी। उन्होंने इसीलिए भक्ति का आश्रय लिया है। उन्होंने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है --

"ग्यान विराग जोग विग्याना। ये सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।
माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारिवर्ग जानहि सब कोऊ।।
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रूप अनूपा।।

कागभुशुण्डि के मुख से गरुड़ को भक्ति का उपदेश दिलाकर गोस्वामी जी ने भक्ति मार्ग को श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

सेवक-सेव्य भाव की भक्ति करने के कारण गोस्वामी जी ने सदा अपने प्रभु के अनुग्रह की याचना की है। विनय-पत्रिका में उनकी इस याचना से सम्बन्धित पदों का कथन है।

गोस्वामी जी के दार्शनिक सिद्धान्त :- ब्रह्म के दोनों रूपों -निर्गुण और सगुण- को स्वीकार करते हुए भी गोस्वामी जी ने सगुण रूप की ही उपासना की है। ईश्वर को एक धार्मिक सत्ता, मोक्ष का प्रधान कर्ता और नियति का संचालक मानकर उन्होंने जीव को उसी ईश्वर का एक अंश माना है। ईश्वर अंश जीव अविनाशी जैसी उक्तियों के द्वारा उन्होंने इसी सम्बन्ध को प्रकाशित किया है। ब्रह्म और जीव में अन्तर यह है कि ब्रह्म स्ववश रहता है और जीव, माया के वश में। 'माया वस्य जीव अभिमानी' ब्रह्म से अलग हो गया क्योंकि दोनों में अन्तर है। 'परवस जीव, स्ववस भगवन्ता' से दोनों का अन्तर स्पष्ट है। माया ठगिनी-रूपा है, वह सबको नचाया करती है। शिव-विरंचि तक़ को उसने मोहा है फिर अन्य लोगों का क्या कहना। इस प्रकार गोस्वामी जी ने ब्रह्म, ईश्वर, जीव, माया आदि के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये हैं। उनके दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर कुछ लोग उन्हें अद्वैतवादी और कुछ लोग विशिष्टाद्वैतवादी मानते हैं। गोस्वामी जी वस्तुतः समन्वयवादी दार्शनिक थे, अतः उनमें इन दोनों के ही आदर्श स्वीकृत हैं। आचार्य शुक्ल जी ने इसीलिए कहा है :- ''परमार्थ दृष्टि से--शुद्ध ज्ञान की दृष्टि से- तो अद्वैतमत गोस्वामी जी को मान्य है, परन्तु भक्ति के व्यावहारिक सिद्धान्त के अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते हैं।''

गोस्वामी जी का सामाजिक आदर्श :- वेद पुराण आदि में वर्णित वर्णाश्रम व्यवस्था की पूर्ण प्रतिष्ठा ही गोस्वामी जी का सामाजिक आदर्श है। मर्यादा पुरुषोत्तम के उपासक मर्यादावादी गोस्वामी जी ने मानव-जीवन के विभिन्न सम्बन्धों की मर्यादा निश्चित की है तथा सामाजिक प्राणियों की पारस्परिक कर्तव्य-भावना का कथन किया है। वर्णाश्रम की मर्यादा के साथ ही सम्बन्ध की मर्यादा को रक्षित रखने का भाव लेकर ही उन्होंने राजा प्रजा का, गुरु-शिष्य का, माता-पिता और पुत्र का, पति-पत्नी का, भाई-भाई का सम्बन्ध स्पष्ट किया है। चित्रकूट की घटना का वर्णन करते समय महाकवि ने इन सभी सम्बन्धों की मर्यादा का उल्लेख किया है। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने चित्रकूट की घटना को आध्यात्मिक घटना कहा है।

समाज की उस व्यवस्था को वे श्रेष्ठ मानते हैं जिसमें --

''बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुख नहिं भय सोक न रोग।।''

की स्थिति हो। उन्हें वह व्यवस्था प्रिय है, जिसमें **'नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना'** और **'सब गुनग्य पण्डित सब ज्ञानी'** हैं। वे उस राजा को अवश्य नरक का अधिकारी मानते हैं जिसके राज्य में प्रिय प्रजा दुखारी हो। गोस्वामी जी की सामाजिक व्यवस्था में व्यक्तिवाद के विरुद्ध लोकवाद (सोसियलिज्म) का समर्थन है, किन्तु उनके लोकवाद में व्यक्ति की स्वतन्त्रता को छीना नहीं गया है बल्कि व्यक्ति पर प्रतिबन्ध लगाया गया है और यह प्रतिबन्ध है समाज के कार्यों में बाधक न बनने का। गोस्वामी जी का लोकवाद भी नैतिकता और मर्यादा पर ही आश्रित है।

'रामराज्य' सुख और व्यवस्था का ही प्रतीक है। रावण का राज्य अव्यवस्था और उच्छृंखलता का प्रतीक है। राम की रावण पर विजय दिखाकर दुष्टता पर सज्जनता की विजय, अनैतिकता पर नैतिकता की विजय का ही प्रतिपादन कवि ने किया है। उन्होंने अपनी राम-कथा के माध्यम से यह भी बतलाया है कि लोक में दुष्टता रावण की भाँति कुछ काल तक फलती हुई दिखाई पड़ती है, किन्तु अन्त में उसका नाश निश्चित ही होता है। उन्होंने संकेत के रूप में कहा है कि व्यक्ति को राम-सा बनना है, रावण-सा नहीं।

गोस्वामी जी का नारी के प्रति सद्भाव स्पष्ट है। नारी के प्रति सद्भावना होने के कारण ही तो उन्होंने मातेश्वरी जानकी के प्रति स्थान-स्थान पर श्रद्धा अर्पित की है। अनुसूया भी तो नारी ही थी।

उनके द्वारा जानकी को उपदेश दिलाकर नारी की मर्यादा को उन्होंने रक्षित रखा है। कुछ लोग उनके द्वारा कथित 'ढोल, गँवार, सूद्र, पसु नारी' को उद्घृत कर उनके नारी-विरोधी भाव का कथन करते हैं। गोस्वामी जी ने नारी के उस रूप की भर्त्सना की है जो अधोगामिनी है और नारी के उस रूप की पूजा की है जो देवी-रूपा है।

समाज के सम्बन्ध में विभिन्न मर्यादाओं को निश्चित करते समय कवि ने प्राचीन आदर्शों के साथ ही अपने व्यक्तिगत विचारों को भी स्पष्ट किया है। उनके वे विचार यदि आज तथाकथित प्रगतिशील विचारवालों को नहीं रुचते तो उसमें उनका कोई दोष नहीं है।

वर्ण्य-विषय:- गोस्वामी जी के काव्य का विषय शील, शक्ति और सौन्दर्य से युक्त प्रभु रामचन्द्र जी के जीवन की गाथा है। उन्होंने राम के जन्म से लेकर उनके सम्पूर्ण जीवन की कथा का कथन किया है, इसीलिए जीवन की विविध स्थितियों का, मानव की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन उनके 'मानस' में अपने आप ही हो गया है। उनकी १३ पुस्तकों का विषय इस प्रकार है- (१) वैराग्य संदीपन - ६२ छन्दों में धर्म, ज्ञान और सन्त-लक्षण का कथन (२) रामलाल नहछू- रामलला के ब्याह के बाद अयोध्या आने पर नहछू नाम के संस्कार का वर्णन। (३) बरवै रामायण-रामकथा के स्फुट प्रसङ्गों का वर्णन। (४) पार्वती मङ्गल-शिवपार्वती के विवाह का कथन। (५) जानकीमङ्गल-राम और जानकी के विवाह का कथन। (६) रामाज्ञा प्रश्न- शकुन उठाने के उद्देश्य से रामकथा का कथन। (७) दोहावली - ५७६ छन्दों का संग्रह। इसमें नीति, भक्ति आदि के विविध दोहे संगृहीत हैं। (८) गीतावली- राम की कोमल वृत्तियों का कथन करने वाले विभिन्न पदों का संग्रह। (६) कवितावली- रामचरित और आत्म-चरित्र विषयक कविताओं का संग्रह। (१०) विनय-पत्रिका-राम के चरणों में निवेदित विनय-पदों का संग्रह। (११) कृष्ण गीतावली-तुलसी के कुछ पदों का संग्रह मात्र (१३) रामचरित मानस- राम के जीवन का पूर्ण चित्र।

इन सभी कृतियों में 'रामचरित मानस' और 'विनय-पत्रिका' को विशेष महत्त्व मिला है। 'रामचरित मानस' तो धर्म-ग्रन्थ के रूप में पूजा जाने लगा है।

तुलसी की काव्य-कला :- जगत के वास्तविक दृश्यों में, जीवन की वास्तविक दशाओं में, धर्म-पक्षों की वास्तविक अनुभूति में तुलसीदास का हृदय रमता रहा है। उन्होंने कल्पना-वैचित्र्य की अपेक्षा जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों का कथन अधिक किया है। राम के चरित्र का वर्णन करते समय उन्होंने उनके जीवन के सभी मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचाना है। उन्होंने अपने काव्य की रचना स्वान्तः सुखाय की है, किन्तु आराध्य रूप में मर्यादापुरुषोत्तम राम को मानने के कारण उनकी कविता लोकमंगलकारी हो गयी है। वह 'सुरसरि सम सबकर हित' करती हुई सामने आयी है। मानस में काव्य-पक्ष के सौन्दर्य के साथ धर्मोपदेश और नीति की बातें कहीं गयीं हैं। दोहावली में 'भक्ति' और 'सूक्ति' सम्बन्धी दोहे संगृहीत हैं। ये सूक्ति और धर्मोपदेश निश्चित ही लोक-कल्याण की भावना से लिखे गये हैं।

गोस्वामी जी के काव्य में मुक्तक और प्रबन्ध दोनों की ही वृत्ति पायी जाती है। 'मानस' एक प्रबन्ध-काव्य है और शेष पुस्तकें मुक्तकों के संग्रह-रूप में हैं। प्रबन्ध की दृष्टि से 'मानस' की सफलता अद्वितीय है। उसमें कथा का सम्बन्ध-निर्वाह अतीव सुन्दर है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ अनुपम है। काव्य लिखने के पूर्व गोस्वामी जी ने नाना पुराण का अध्ययन किया था। वाल्मीकि-रामायण, प्रसन्न राघव नाटक, आध्यात्म रामायण आदि ग्रन्थों का उनकी रचनाओं पर स्पष्ट प्रभाव है।

रस :- रस की दृष्टि से गोस्वामी जी के अकेले 'रामचरित मानस' में सभी रसों का परिपाक हो गया है। उनके सभी ग्रन्थों को देखने पर उनकी रस-भावना का पूर्ण परिचय प्राप्त होता है। 'राम

को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं' में जिस शिष्ट, मर्यादित संयोगशृङ्गार का कथन हुआ है, वह अद्भुत है। 'हे खग मृग, हे मधुकर श्रेनी। कहुँ देखी सीता मृगनैनी' में वियोग-भावना का दर्शन होता है। धनुष-यज्ञ के प्रसंग में जनक की वाणी सुन लक्ष्मण में वीर भाव जागता है, वे राम को सम्बोधित कर कह उठते हैं :-

"जौ तुम्हार अनुसासन पावउँ। कंदुक इव ब्रह्माण्ड उठावउँ।
तब प्रताप महिमा बलवाना। का वापुरो पिनाक पुराना।।"

वीभत्स-रस का कथन देखिए :-

"ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेली बाँधे,
मूड़ के कमंडलु खपर किये कोरि कै।
सोनित से सानि सानि गुदा खात सेतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरी-घोरि कै।।"

भयानक रस का परिचय देते हुए लङ्का-दहन के प्रसङ्ग में उन्होंने कहा है--

लपट कराल ज्वाल-जालमाल दुहुँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचाने कौन काहिरे।
पानी को ललात, बिललात, जरे जात गात,
परें पाइमाल जातु भ्रातु! तू निबाहिरे।।

दशरथ-मरण के प्रसंग में और लक्ष्मण-शक्ति के प्रसंग में करुणा की धारा-सी प्रावाहित हो उठी है। दशरथ-मरण के प्रसंग को देखिए :-

"करि विलाप सब रोवहिं रानी। महाविपति किमि जाइ बखानी।।
सुनि विलाप दुखहू दुख लागा। धीरजहू कर धीरज भागा।।"

हास्य-रस की उद्भावना के लिए गोस्वामी जी ने रामायण में नारदमोह का प्रसंग उपस्थित किया है :-

"काहु न लखा सो चरित विसेखा। सो सरूप नृप-कन्या देखा।।
मर्कट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही।।
जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली।।
पुनि पुनि मुनि उकसहिं अकुलाहीं। देखि सदा हरगन मुसकाहीं।।'

'माखे लखन कुटिल भईं भौंहे। रदपट फरकत नयन रिसौंहे' जैसे- प्रसंगों में रौद्र रस पल्लवित है। हनुमान का पहाड़ को हाथ में लेकर अपूर्व वेग से उड़ता हुआ लौटना अद्भुत रस की सृष्टि करता है। वात्सल्य रस से तो बालकाण्ड ओत-प्रोत है ही ! इस प्रकार सभी रसों का कथन रामायण तथा अन्य तुलसी कृत ग्रन्थों में हुआ है।

छन्द :- अपने समय के प्रचलित सभी छन्दों को तुलसीदास जी ने काव्य-रचना का माध्यम बनाया। 'रामचरित मानस' में उन्होंने दोहा-चौपाई वाली पद्धति को स्वीकार किया। कहीं-कहीं उन्होंने चन्द बरदाई के छप्पय शैली को भी स्थान दिया। कृष्णगीतावली, गीतावली आदि में सूर के पदों की शैली का व्यवहार हुआ है। दोहावली में दोहा, सोरठा का प्रयोग है। कवितावली में सवैया और कवित्त

की शैली को स्वीकृति मिली है और बरवै रामायण में बरवै छन्द का प्रयोग हुआ है। रामलला नहछू जानकी मंगल आदि में लोक में प्रचलित सोहर छन्द का कथन है। इस प्रकार उस युग की सभी शैलियों को गोस्वामी जी ने अपनी रचना के लिए स्वीकार किया था।

अलंकार :- गोस्वामी जी की रचनाओं में अलंकारों का जबर्दस्ती प्रयोग नहीं हुआ है। वे अपनी स्वाभाविक गति से वर्णन के मध्य आ गये हैं। 'परंपरित रूपक' कवि का प्रिय अलंकार था। उनकी कविता में रूपक, क्रम, उत्प्रेक्षा, उपमा, परिसंख्या, प्रतीप, व्यतिरेक आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। कुछ अलंकारों का प्रयोग देखिए :-

उत्प्रेक्षा और संदेह :- "बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौ;
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है।
कैधों व्योम-बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीर रस बीर तरवारि सी उघारी है।।"

अनुप्रास अलंकार :- "अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनि कै।
सुन्दर सनेह-सुधा सहज जनु सरस राखै सानि कै।।"

रूपक- "उदित उदय गिरि मंच पर, रघुबर बाल पंतग।
बिकसे संत-सरोज सब, हर्षित लोचन भृङ्ग।।"

विभावना- "नीच महिपावली दहन बिनु दही है।"

दृष्टान्त- "भरतहि होइ न राजमद, विधि हरिहर पद पाय।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि, छीर-सिन्धु विनसाय।।"

व्यतिरेक- "सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पै कहइ न जाना।।
निज परिताप द्रवै नवनीता।
पर दुख द्रवैं सुसंत पुनीता।।"

श्लेष- 'रावन-सिर-सरोज-बनचारी। चलि रघुबीर-सिलीमुखधारी।।'

इसी प्रकार अन्य अलंकारों का भी स्वभाविक प्रयोग तुलसीदास की कृतियों में देखने को मिलता है।

भाषा :- गोस्वामीजी के युग में काव्य-भाषा के रूप में 'अवधी' और 'ब्रज' भाषा को मान्यता मिल चुकी थी। उन्होंने इन दोनों भाषाओं पर पूर्ण अधिकार प्राप्त किया। 'रामचरित मानस' की भाषा 'अवधी' है और कवितावली, विनय-पत्रिका तथा गीतावली की भाषा 'ब्रज' है। पार्वती मंगल, जानकी मंगल और रामलला नहछू में पूर्वी अवधी का प्रयोग है। गोस्वामीजी की भाषा मुहावरेदार है। 'प्रसाद राम नाम के पसारि पाँय सूतिहौं' जैसी पंक्तियों में मुहावरे का प्रयोग स्पष्ट है। उनकी भाषा बड़ी परिमार्जित और सुगठित है, इसीलिए उनकी रचनाओं में न्यून-पदत्व दोष नहीं मिलता है।

गोस्वामी तुलसीदास लोक और शास्त्र दोनों के ज्ञाता थे। अपनी समन्वयात्मक बुद्धि के कारण उन्होंने जहाँ भी कुछ अच्छा देखा उसे स्वीकार कर लिया। उनकी कृतियों में वैराग्य और गार्हस्थ, भक्ति और ज्ञान, भाषा और संस्कृति सबका समन्वय मिलता है। उनके समान सूक्ष्म दृष्टि का दूसरा कवि नहीं दीखता। भारतीय-जीवन का सर्वांग चित्र तुलसीदास की कविताओं में देखने को मिलता है, अतः उन्हें ही भारतीय जनता का प्रतिनिधि कवि कहा जाता है।

सूर और तुलसी

सूर और तुलसी दोनों ही भक्ति-काल के सगुण-मार्गी धारा के श्रेष्ठ कवि थे। सूर के आराध्य-देव लीला पुरुपोत्तम श्रीकृष्ण थे और तुलसी के आराध्यदेव मर्यादा-पुरुषोत्तम राम थे। आराध्य के स्वरूप की भिन्नता के कारण इन दोनों कवियों का वर्ण्य-विषय भी भिन्न-भिन्न था और वर्ण्य-विषय की भिन्नता के कारण इनकी तुलना उचित नहीं लगती, किन्तु दोनों की ही श्रेष्ठ काव्य-प्रतिभा को देखकर इनकी तुलना के रूप में कितनी ही उक्तियों का कथन किया जा चुका है। सूर का पक्ष लेने वाले सूर को 'सूर्य' - सा और तुलसी को 'शशि' - सा मानते हैं और अपने मत के प्रचार के लिए कहते हैं --

"सूर सूर तुलसी ससि, उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहँ तहँ करत प्रकाश ।।"

इसके विपरीत तुलसी के समर्थक तुलसी को ही सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हैं। श्यामसुन्दर दास ने सूर को महत्त्व देते हुए 'हिन्दी साहित्य' नामक पुस्तक में कहा है--'व्यवहार-दशाओं की अधिकता तुलसी तथा प्रेम की अधिक विस्तृत व्यञ्जना सूर के काव्य में प्राप्त होती है, पर शुद्ध कवित्व की दृष्टि से दोनों का समान अधिकार है। सूरसागर के सम्बन्ध में कहे गए निम्नाङ्कित दोहे को हम अनुचित नहीं समझते- **'सूर सूर तुलसी ससी।'** मिश्रबन्धुओं ने तुलसी को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए कहा है- "महात्मा तुलसीदास से बढ़कर कोई कवि, हमारी जानकारी में, कभी किसी भी भाषा में संसार भर में कहीं नहीं हुआ।"

विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि व्यापकता की दृष्टि से तुलसी का स्थान सूर से श्रेष्ठ है, किन्तु विषय की गहराई और सूक्ष्म-दर्शन की दृष्टि से सूर तुलसी से श्रेष्ठ हैं।

भाषा की दृष्टि से तुलसी का अवधी और ब्रज दोनों पर ही पूर्ण अधिकार था किन्तु सूर केवल ब्रजभाषा पर ही अधिकार रखते थे। शैली की दृष्टि से भी तुलसी का प्रयत्न अधिक व्यापक था। अपने समय की प्रचलित सभी शैलियों- दोहा, कवित्त, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि- का प्रयोग तुलसी ने किया है। सूर इस दृष्टि से तुलसी से पीछे दीख पड़ते हैं।

मर्यादा पुरुपोत्तम राम के सम्पूर्ण जीवन का कथन करने के कारण तुलसी ने प्रबन्ध-काव्य के रूप में रामचरित मानस की रचना की और उसमें मानव-जीवन की अधिकाधिक दशाओं तथा वृत्तियों का परिचय उन्होंने दिया। सूर ने श्रीकृष्ण के बाल ओर तरुण रूप का ही अंकन किया हैं, अतः उनकी रचनाओं में केवल वात्सल्य और शृङ्गार रसों का तथा उनसे सम्बन्धित दशाओं और वृत्तियों का ही पोषण हुआ है। शृङ्गार और वात्सल्य का जितना सूक्ष्म-कथन सूर ने किया है, तुलसी ने किसी रस का उतना सूक्ष्म कथन नहीं किया है।

तुलसी ने मर्यादा पुरुपोत्तम राम को आदर्श मानकर विविध प्रकार के उच्च आदर्शों का कथन किया हैं। सूर के काव्य में इस प्रकार का आदर्श निरूपण नहीं मिलता है। तुलसी की बुद्धि समन्वयात्मक थी, इसलिए उन्होंने राम के साथ अन्य देवताओं का भी स्मरण किया है और उनकी भी स्तुति की है। सूर की बुद्धि अधिक साम्प्रदायिक थी, इसीलिए उन्होंने कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी देवी-देवता की स्तुति बहुत कम की है। मर्यादा पुरुषोत्तम के भक्त तुलसी की कृतियों में लोक-संग्रह तथा लोक-मंगल का भाव अधिक है, अपेक्षाकृत सूर के।

सूर और तुलसी की कृतियों पर विचार करने के वाद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को भी 'सू सूर तुलसी ससी' का दोहा पसन्द नहीं आया और उन्होंने भी तुलसी को सूर से श्रेष्ठ कहा, कि तुलसी की व्यापक प्रतिभा के साथ ही जब हम सूर की प्रतिभा को देखते हैं तो यह मानना पड़ता है सूर ने केवल वात्सल्य और शृङ्गार को ही अपना विषय बनाया था। इन दोनों क्षेत्रों में उन काव्य-प्रतिभा अद्वितीय थी। इन दो रसों का कथन करने में जितनी सफलता सूर को मिली है, तुल को नहीं मिली है।

छन्दों की बहुलता की दृष्टि से तुलसी को श्रेष्ठ माना जा सकता है तो गीत-रचना की दृ से सूर तुलसी से कहीं श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। सौन्दर्य-चित्रण और अलंकार-कथन की दृष्टि से भी सूर व स्थान तुलसी से कम गौरवपूर्ण नहीं है। सौन्दर्य-चित्रण में सूर ने कोमलता को अधिक अंकित किया और तुलसी ने पुरुष-सौन्दर्य के अंकन में सुन्दरता के साथ ही शक्ति का भी दर्शन कराया है नारी-सौन्दर्य के कथन में सूर तुलसी से बहुत आगे हैं।

प्रकृति-वर्णन की दृष्टि से सूर और तुलसी दोनों को ही पूर्ण सफलता मिली है। तुल का प्रकृति-वर्णन उद्दीपन रूप में है पर सूर की कृतियों में प्रकृति को संवेदनशील स्थिति में दिखाय गया है।

अन्ततः दोनों कवियों की कृतियों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर यही निर्ण निकलता है कि कवित्व की दृष्टि से सूर की प्रतिभा तुलसी से आगे थी किन्तु विचारों की दृष्टि से तुल सूर से बहुत आगे दिखायी पड़ते हैं। भाषा, छन्द, अलंकार, प्रबन्धात्मकता आदि की दृष्टि से तुल का स्थान सूर से अधिक ऊँचा है। व्यापकता की दृष्टि से वे अद्वितीय हैं, किन्तु अपने सीमित क्षेत्र में सूर सर्वश्रेष्ठ हैं।



मीराबाई

जन्म-संवत् :-- १५५५ वि०　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- १६०३ वि०

जीवन-वृत्त :- कर्नल टाड ने मीरा को राणा कुम्भ की पत्नी कहा है। अन्य विचारकों ने भी इस सम्बन्ध में मत दिये हैं। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा जैसे विद्वानों ने प्रामाणिक-सामग्रियों के आधार पर मीरा का जन्म सम्वत् १५५५ वि० और १५६१ वि० के बीच और मृत्यु सम्वत् १६०३ वि० माना है। मिश्रबन्धुओं का मत जन्म के सम्बन्ध में सर्वथा भिन्न है। वे उनका जन्म सम्वत् १५७३ वि० में मानते हैं किन्तु १५७३ वि० उनके व्याह का संवत् था। मीरा का जन्म १५५५ और मृत्यु १६०३ वि० में मानना ही उचित है। मीरा का व्याह राणा साँगा के ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार भोजराज के साथ हुआ था, राणा कुम्भ के साथ नहीं। मीराबाई, राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की इकलौती सन्तान थीं। मीराबाई का जन्म 'कुड़की' गाँव में हुआ। जब वे ५ वर्ष की थीं तभी उनकी माता का स्वर्गवास हो गया। उनके दादा दूदाजी ने उन्हें कुड़की से बुलाकर मेड़ता में अपने पास ही रखा। दूदाजी की भक्ति का प्रभाव मीरा पर भी पड़ा और वे बालपने से ही भगवत्-भक्त हो गयीं। भोजराज से व्याह होने पर मीरा को अपनी ससुराल मेवाड़ में जाना पड़ा। सं० १५७५ वि० से सं० १५८० वि० के बीच भोजराज की मृत्यु हो गयी। वे पति की मृत्यु के बाद गिरधर लाल की मूर्ति की आराधना एकनिष्ठ भाव से करने लगीं। अपने पिता की मृत्यु के बाद वे और भी विरक्त हो उठीं और साधुओं के साथ रहकर भजन-कीर्तन में लग गयीं। मीरा के देवर रत्नसिंह ने प्रतिष्ठा की दृष्टि से मीराँ का साधुओं के बीच गाना, नाचना बुरा समझा। उन्होंने उन्हें मना भी किया, पर मीरा पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। रत्नसिंह की मृत्यु के बाद उनका छोटा भाई विक्रमाजीत सिंह गद्दी पर बैठा और उसने मीरा को नाना प्रकार से कष्ट दिया। उन्हें सर्प की पिटारी और विष का प्याला भेजा। मीरा ने सर्प को गले में धारण किया और विष की प्याली पी, किन्तु भक्त मीरा पर इसका कोई प्रभाव न हुआ। बाद में मीराबाई वृन्दावन जाकर रहने लगीं। अपने अन्तिम दिनों में वे द्वारकाधाम चली गयीं और श्री रणछोड़जी की भक्ति में तल्लीन हो गयीं।

मीराबाई द्वारा लिखित विभिन्न पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। विद्वानों ने उनकी सात पुस्तकों का उल्लेख किया है- (१) नरसी जी रो माहेरो (२) गीत गोविन्द की टीका (३) राग गोविन्द (४) सोरठ के पद (५) मीराबाई के मलार (६) गर्वागीत (७) फुटकर पद या मीराबाई की पदावली। इन पुस्तकों की प्रमाणिकता में सन्देह है। कुछ की तो पूर्ण प्रतियाँ उपलब्ध भी नहीं हैं। मीरा के काव्य की विशेषता उनके पदों से ही ज्ञात होती है।

मीरा की भक्ति :- मीराबाई की कविताओं से सगुण भक्ति के प्रति उनकी विशेष आसक्ति दिखाई पड़ती है। कृष्ण के रूप पर रीझना, उनके गुणों का गान करना और उनसे संयोग स्थापित करना उनकी सगुण भक्ति का परिचायक है। 'जसुमति को लाल', 'नन्द नन्दन', 'बलवीर', 'जदुनाथ' श्रीकृष्ण को उन्होंने दीनानाथ, कृपानिधान, भक्तवत्सल आदि कहकर पुकारा है। वे गिरिधर के घर जाने की अभिलाषा करती हैं और उन्हें ही अपना 'साँचो प्रीतम' मानकर उनके रूप पर लुब्ध रहती हैं।

"मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ,
गिरिधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।'

मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ,
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ, बेचै तौ बिक जाऊँ।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊँ।।"

मीरा ने सगुण ब्रह्म लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण के प्रति अपने को पूर्णतः समर्पित कर दिया

मीराबाई ने निर्गुण भक्ति का भी परिचय दिया है। सन्तों के साथ रहकर इस भक्ति का कथन उन्होंने किया है। 'नित्य-वस्तु' रूपी भगवान को उन्होंने 'हरि-अविनाशी' की संज्ञा दी निर्गुणवादियों की तरह प्रतीकात्मक प्रयोग भी मीरा ने किये हैं। वे 'त्रिकुटी महल' में बने झरोखे अपने 'आदि अनादि साहब' 'अगम अतीत राम' को देखना चाहती थीं। 'सुन्न महल' में 'सुरत' ज और 'सुख की सेज' बिछाने की कल्पना भी निर्गुण-साधना का ही परिचय देती है :-

"त्रिकुटी महल में बना झरोखा, तहाँ से झरोखा लगाऊँ री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।।"

जैसी पंक्तियों में उनकी यह साधना मुखरित है।

मीरा के यहाँ निर्गुण-सगुण में कोई अन्तर नहीं रहा है। इसीलिए उन्होंने दोनों का ही क किया है।

गोपी-भाव से मधुर-भक्ति का कथन :- मधुर-भक्ति-धारा में भक्त अपने भगवान को प या जीवन-सर्वस्व के रूप में देखता है। मधुर रस में रति का वैशिष्ट होने से शृङ्गार की ध्वनि बनी रह है। मीरा ने गोपी भाव से कृष्ण को पति मानकर मधुर-भक्ति का कथन किया है किन्तु शृङ्गार में इन्द्रि जन्य सुख होता है, मधुर-रस में वह अलौकिक होने के कारण इन्द्रियातीत हो उठता है। मीरा ने गो भाव की भक्ति करते-करते स्वयं को 'ललिता' नामक गोपी का रूप दे दिया है। 'मेरी उनकी प्री पुराणी' जैसे पदों में मीरा का कृष्ण के प्रति द्वापर-युगीन प्रेम ही झलकता है। वे बराबर गिरिधर 'पति' 'पिव' 'सैंया' आदि सम्बोधन देती रहीं हैं।

रहस्यवाद :- जीवात्मा का परमात्मा से मिलन ही रहस्यवादी तादात्म है। 'तुम बिच हम बि अन्तर नाहीं' में मीरा का यही तादात्म-भाव दिखाई पड़ता है। उनकी बराबर यही कामना रही है वे पिय के पलँगा पर दौड़ि कर हरि रंग में रँग जाँय। 'मैं तो गिरिधर के रँग राती' जैसे पदों में उन आध्यात्मिक भाव एवं भावनात्मक रहस्यवाद पुष्ट हुआ है। भक्ति के क्षेत्र में कठोर साधना को भी मी ने स्थान दिया है। कबीर की तरह वे भी मानती हैं कि 'हाँसे खेले पिउ नहीं मिलता।' वे प्रिय की से को सूली ऊपर मानकर साधना की कठिनाइयों का परिचय देती हैं। रहस्यवादियों की तरह वे भी गु को महत्त्व देतीं हैं। "श्याम तेरी आरति लागी हो। गुरु परतापे पाइयां, तन दुरमति भागी हो।" में गु का महत्त्व स्पष्ट है।

संयोग और वियोग वर्णन :- भगवान के साथ संयोग-भाव को स्पष्ट करने वाली कविता मीरा के पदों में अपेक्षाकृत अल्पसंख्या में हैं। होली वर्णन, सावन वर्णन, मिलन आदि पदों में उन संयोग-भाव स्पष्ट हुआ है। 'सेज सँवारी पिय घर आये, हिलमिल मंगल गायो' तथा 'सहेलियाँ साज घर आया हो' जैसी पंक्तियों में मीरा का संयोगमूलक भाव प्रकट है। उन्होंने अपने प्रभु के सम आत्म-समर्पण भी किया है। "जिहिं जिहिं भेष म्हाँरो साहेब रीझे, सोइ सोइ भेष धरूँगी हो" जैस पंक्तियों से उनके आत्म-समर्पण और प्रेम की तन्मयता का ही परिचय मिलता है। 'होरी' वर्णन में 'घ के सब पट खोल दिये हैं' के द्वारा सांकेतिक रूप में मीरा ने संयोग शृंगार का ही कथन किया है। संयो

के कथन में मीरा का स्वाभाविक संकोच बराबर बना रहा। इसीलिए उनके पदों में सुरति, विपरीत आदि प्रकरण नहीं आ सके हैं। उनका संयोग भी मर्यादित रूप में ही सामने आया है।

वियोग के कथन में मीरा ने पूर्वानुराग, प्रेमाभिलाषा, वियोग, अनुनय-विनय, उपालम्भ आदि का कथन किया है। 'मेरो मन बसिगो गिरधरलाल सों' में पूर्वानुराग की स्थिति व्यक्त है। इस पूर्वानुराग के बाद रूपासक्ति बढ़ती गयी और मोहन के रूप पर मीरा को लुभा जाना पड़ा। प्रेमाभिलाषा बढ़ी और वे 'गिरधर आगे नाचूँगी' का भाव लेकर अभिलाषा करने लगीं-

''पिव के पलँगा जा पौढूँगी, मीराँ हरि रंग राचूँगी।।''

वियोग हुआ तो उन्हें निस-दिन बाट जोहते रहना पड़ा, अन्त में बाट जोहते-जोहते 'घिस गई उगँली की रेख' पर मिलन न हो सका। उन्होंने अपने प्रिय को जाने देना नहीं चाहा, अतः अनुनय के स्वर में उन्होंने कहा--

''जोगी मत जा मत जा मत जा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं।''

उन्होंने अपने प्रिय के न आने पर उपालम्भ भी दिया -

''देखो सखियाँ हरि मन काठो कियो।
आवन कह गयो अजूँ न आयो, करि करि वचन गयो।।''

इस प्रकार वियोग की सभी स्थितियों का कथन मीरा के पदों में हुआ है।

कला-पक्ष :- मीराबाई के पद वैष्णव-भक्तों की गीत-शैली में लिखे गये हैं। उनमें राग-रागनियों का पूरा समावेश है, पिंगल-शास्त्र के नियमों का पालन नहीं हुआ है। यति-भंग दोष सर्वत्र मिलता है किन्तु छन्द की दृष्टि से मुख्यतः सार, सरसी, दोहा, सवैया, ताटंक आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। यदि दो-एक मात्राओं को संशोधित कर दिया जाय तो मीरा के पदो में व्यवहृत इन छन्दों की पूर्ण पुष्टि हो जायेगी।

इन पदों में कुछ अलंकार स्वभावतः आ गये हैं। मीरा के पदों में प्रयुक्त कुछ अलंकारों को देखिए-

रूपक-- *'अँसुवन-जल सींचि-सींचि प्रेम-बेलि बोई।'*

उपमा-- *'मैं कोइल ज्यूँ कुरलाऊँ जी' या, 'पानाँ ज्यूँ पीलौ पड़ीरी।'*

उत्प्रेक्षा-- *कुण्डल की अलक झलक, कपोलन पर धाई।*
मनो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई।।''

अत्युक्ति-- *'गिनते-गिनते घिस गई उँगली, घिस गई उँगली की रेख रे'*

उदाहरण-- *'तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा।'*

उनके काव्य में विभावना, श्लेष, अनुप्रास आदि का भी प्रयोग मिलता है।

मीरा के पदों में विभिन्न भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। उनकी भाषा की प्रमुख प्रकृति राजस्थानी है, किन्तु उसमें ब्रजभाषा, गुजराती, पंजाबी, खड़ीबोली आदि का मिश्रण है।

भक्तिकाल में मीरा का स्थान अन्यंत श्रेष्ठ है। कृष्ण-भक्ति की गायिका इस कवयित्री जैसा प्रेम-भाव अन्यत्र नहीं मिलता है।



नरोत्तमदास

रचनाकाल-संवत् १६०२ वि०

जीवन-वृत्त :- कृष्ण-भक्ति परम्परा के कवियों में 'सुदामा चरित' के लेखक नरोत्तमदास [का] अपना स्थान है। इनके जन्म-संवत् और मृत्यु-संवत् के सम्बन्ध में अंतर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों मौन हैं। इतना अवश्य ज्ञात है कि ये सीतापुर के बाड़ी नामक ग्राम के निवासी थे। इनकी पुस्[तक] 'सुदामा चरित' बहुत लोकप्रिय हुई। 'सुदामा चरित' के अतिरिक्त इनकी एक पुस्तक का और भी क[थन] किया गया है। उसका नाम 'ध्रुव-चरित्र' बताया गया है। यह पुस्तक अप्राप्त है। जन्म-संवत् [और] मृत्यु-संवत का निश्चित ज्ञान न होने से इनके रचनाकाल को ही इतिहास-लेखकों ने दृष्टिपथ में रखा। इनका रचना-काल संवत् १६०२ वि० मान्य है।

'सुदामा-चरित' की कथावस्तु :- दरिद्रता तथा मित्रता के श्रेष्ठ आदर्श का परिचायक [य]ह काव्य सरल ब्रजभाषा में लिखा गया है। इस खण्ड-काव्य के प्रमुख पात्र हैं--सुदामा, सुदामा-पत्नी [और] कृष्ण। इस कृति में कई स्थलों पर बड़ी मार्मिक भाव-व्यंजना मिलती है। जब द्वारपाल सुदामा [का] परिचय पूछता है और सुदामा के रूप-रंग का वर्णन कृष्ण से जाकर करता है तब दीन-हीन सुदामा [का] चित्र सामने खड़ा हो जाता है। द्वारपाल से सुदामा के आने की सूचना पाकर कृष्ण व्याकुल हो उठते [हैं] और दीन सुदामा को देखकर रो पड़ते हैं, उनका पाँव पखारने लगते हैं। सुदामा की पत्नी ने जबर्द[स्ती] सुदामा को एक पोटली चावल देकर भेजा था। कृष्ण के राज्य-वैभव को देख बेचारे सुदामा ने चावल [की] भेंट देने में लज्जा का अनुभव किया और उसने उसे छुपा लिया, किन्तु कृष्ण की दृष्टि से वह बच न सका। कृष्ण चावल खाकर सुदामा का स्वागत करते हैं किन्तु सुदामा को प्रत्यक्षतः कुछ नहीं मिल[ता]। लौटते समय सुदामा अपनी पत्नी की हठवादिता पर झुँझला पड़ते हैं। अन्त में जब घर पहुँचते हैं [तो] उन्हें अपनी झोपड़ी के स्थान पर महल मिलता है और अपनी झोपड़ी को न पाकर वे और भी व्याकु[ल] हो उठते हैं। उनमें मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होता है, किन्तु जब उनकी पत्नी उन्हें पहचानकर बुलाती [है] तब सन्तोष मिलता है। सुदामा के सभी क्रिया-कलापों में उनकी दीनता का ही परिचय मिलता है। आरम्भ में सुदामा और सुदामा-पत्नी का परिचय दिया गया है और फिर उन दोनों के तथा अन्य पा[त्रों] के संवाद से पूरी कथा कही गयी है। यह कृति एक खण्डकाव्य है।

सुदामा की पत्नी सुदामा को कृष्ण के पास भेजना चाहती हैं किन्तु भाग्य पर विश्वास रखनेवा[ला] सुदामा वहाँ दीन-स्थिति में जाना नहीं चाहता। पत्नी आग्रही हो उठती है और बड़े स्वाभाविक ढंग [से] अपनी दीनता का परिचय देकर उन्हें जाने के लिए प्रेरित करती है। उसके आग्रह की स्वाभाविक[ता] देखिए--

"कोदों सँवा जुरतो भरि पेट,
न चाहति हौं दधि दूध मठौती।
सीत बीतीतत जो सिसियात,
तौ हौं हठती, पै तुम्हें न हठौती।।
जो जनती न हितू हरि-सौ,

तौ मैं काहे को द्वारका पेलि पठौती।
या घर ते कबहूँ न गयो प्रिय!
टूटी तवा अरु फूटी कठौती।।"

उसके इस कथन में उसकी दीनता मूर्तमान है। बेचारा सुदामा किसी तरह कृष्ण के द्वार पर पहुँचता है। द्वारपाल उसके रूप-रंग को देखकर उससे परिचय पूछता है। कृष्ण के राज्य-वैभव को देख दीन सुदामा चकित है। उसने उत्तर दिया--

"नाम सुदामा कृष्ण हम, पढ़े एकई साथ।
कुल पाँडे, ब्रजराज सुनि सकल जानिहैं गाथ।।

और तब द्वारपाल ने सुदामा की अकिंचनता का, दीन-हीन स्वरूप का कथन करते हुए कृष्ण से कहा--

"सीस पगा न झगा तन पै प्रभु! जाने को आहि बसै केहि ग्रामा।
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानह को नहिं सामा।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल देखि रहो चकि सों बसुधा अभिरामा।
पूछत दीन-दयाल को धाम बतावत आपनो नाम सुदामा।।"

और तब 'हरि' दौड़ पड़े सुदामा की ओर। वे सुदामा की दीन-दशा देखकर रो पड़े और परात के पानी को हाथ से न छूकर नेत्र के ही जल से उन्होंने सुदामा के पग धो दिए। कृष्ण ने सुदामा की काँख में दबी हुई पोटली को देखकर उसे माँगा और विनोद करते हुए बाल्यावस्था के उस समय की याद दिलायी, जब सुदामा ने कृष्ण से छुपाकर चना खा लिया था। हठपूर्वक सुदामा से पोटली लेकर कृष्ण ने चावल खाना आरम्भ किया और 'कमला' काँप उठीं। कृष्ण ने चावल, चवाकर सुदामा को ऋद्धि-सिद्धि और समृद्धि देना आरम्भ कर दिया। दूसरी 'मूठी' वे चावल से भर ही रहे थे जब उन्हें रोकते हुए रुक्मिनी ने उनका हाथ पकड़ लिया। कई दिनों तक स्वागत-सत्कार प्राप्त करने के बाद जब सुदामा लौटे तो कृष्ण ने उन्हें प्रत्यक्षतः कुछ नहीं दिया। वे निराश थे और घर पहुँचने पर जब उन्हें अपनी झोपड़ी और निर्धन पत्नी भी न दिखायी पड़ी तब वे खीझकर सोचने लगे कि उनके घर की चीजें कहाँ चली गयीं। उनकी इस चिन्ता में उनके घर के साज-सामान का परिचय मिल जाता है--

"फूटी एक थारी बिनु टोटनी की झारी हुती,
बाँस की पिटारी और कुँथारी हुती टाट की।
बेंटे बिन छुरी औ कमण्डलु सौ टूक बहौ,
फटे हुते पावो पाटी टूटी एक खाट की।।
पथरौटा, काठ को कठौता कहूँ दीसै नाहिं,
पीतर को लोटो हो, कटोरो हो न बाट की।
कामरी फटी-सी हुती डोंड़न की माला ताके,
गोमती की माटी की न शुद्ध कहूँ माटकी।।"

और अन्त में जब उनके घर पर स्थित द्वारपाल उन्हें उनका महल दिखाता है तो हरि के अनुग्रह का कथन करते हुए वे कह उठते हैं--

"भूमि कठोर पै रात कटै, कहँ कोमल सेज पै नींद न आवत।
कै जुरतो नहि कोदों सवाँ, प्रभु के परताप तें दाख न भावत।।"

'सुदामा-चरित' के संवादों की मनोवैज्ञानिकता और स्वाभाविकता ने ही उसे इतना अधिक लोक-प्रिय बना दिया है।

कलापक्ष :- भाषा की दृष्टि से 'सुदामा-चरित' ब्रजभाषा का खण्डकाव्य है। ब्रजभाषा के माधुर्य को अपने शब्द-चयन की पटुता के कारण कवि ने कुछ अधिक मधुर बना दिया है। इस ब्रजभाषा पर बैसवाड़ी का प्रभाव भी लक्षित होता है। वर्णन के क्षेत्र में उनकी भाषा ने कमाल कर दिया है। सुदामा का स्वरूप कथन, उनके घर की दयनीय स्थिति का परिचय, यह सब कुछ इस प्रकार हुआ है कि सारी स्थितियाँ पाठक के सामने चित्रवत आ जातीं हैं। मात्रा और प्रवाह के आग्रह पर शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने का कार्य भी उनके द्वारा किया गया है। इसी आग्रह के कारण 'वृद्धापन' का 'विराधापन' और 'दुख उठने' के लिए 'दूखि उठे' का व्यवहार हुआ है। भाषा में प्रसाद-गुण का दर्शन होता है।

छन्द की दृष्टि से कवित्त, सवैया, दोहा आदि छन्दों में ही उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति की है। संवादों के कथन में उन्हें जो कुशलता प्राप्त है, वह अन्य कवियों को नहीं। भगवान कृष्ण और सुदामा की कथा होने के कारण अधिकतर शान्त रस की ही पुष्टि हुई है। शान्त के अतिरिक्त श्रृङ्गार भावों का भी कुछ कथन हुआ है।

अलंकार की दृष्टि से अनुप्रासों का अत्यन्त मधुर प्रयोग उनकी कविताओं में मिलता है। उपमा, दृष्टान्त, यमक, स्मरण, सन्देह आदि अलंकारों का भी प्रयोग उनकी रचनाओं में है। उनके काव्यों में प्रयुक्त कुछ अलंकारों का स्वरूप देखिए :-

अनुप्रास :- *"धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु पाँय उपानहिं की नहिं सामा।"*

उपमा :- *"लोचन कमल, दुख मोचन तिलक भाल,*
स्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं।"

दृष्टान्त :- *"दीनदयाल को ऐसोई द्वार है दीनन की सुधि लेत सदाई।*
द्रोपदी तें गज तें प्रहलांद तें जानि परी न विलम्ब लगाई।।"

यमकः- *"द्वारिका के गए हरि दारिद हरेंगे प्रिय,*
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।"

स्मरण :- *"आगे चना गुरु मातु दए ते लए तुम चाबि हमैं नहिं दीनैं।'*

सन्देह :- *'वैसेइ राज समाज वेई गज बाजि घने मन संभ्रम छायो।*
कैधों पर्‍यो कहूँ मारग भूलिकै, कै अब फेरि हौं द्वारिका आयो।'

क्रमालंकार, स्वभावोक्ति आदि का भी स्वाभाविक प्रयोग प्रसंगों के अनुसार उनकी कृतियों में हुआ है।

नरोत्तमदास कृत 'सुदाम-चरित' को देखकर यह कहा जा सकता है कि उनकी प्रतिभा का सुन्दर प्रदर्शन इस कृति में हुआ है। अल्प मात्रा में लिखकर भी जो ख्याति उन्हें मिली है वह उनकी सफलता को ही प्रमाणित करती है। कृष्ण-काव्य परम्परा के कवियों में उनका स्थान स्मरणीय रहेगा।

नन्ददास

जन्म-संवत् :-- १५९० वि०　　　　**मृत्यु-संवत् :--** १६४० वि०

जीवन-वृत्त :- अष्टछाप के कवि नन्ददास के जन्म-स्थान, जन्म-संवत् आदि के सम्बन्ध में अन्तर्साक्ष्य का अभाव है। बहिर्साक्ष्य की प्रचुर सामग्री के आधार पर ही विद्वानों ने उनके जन्म से सम्बन्धित कुछ निर्णय प्रकाशित किये हैं। श्री दीनदयाल गुप्त के अनुसार उनका जन्म सं० १५९४ वि० माना गया है। सं० १६०७ में साहित्य-लहरी नामक पुस्तक की रचना उन्होंने की थी। उसके कुछ पूर्व ही वे गुसाँई विट्ठलनाथ के शिष्य बने थे। दीक्षा लेने के पूर्व वे एक क्षत्राणी के प्रेम में आसक्त थे। निश्चित ही इस समय वे १६-१७ वर्ष के वय के रहे होंगे। अतः उनका जन्म सं० १५९० माना जाना चाहिए। यही निर्णय श्री द्वारिकादास (काँकरोली) ने भी दिया है। उनकी जाति के सम्बन्ध में 'गुसाँईजी के चार सेवकन की वार्ता' से पता चलता है कि वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों से ही प्रमाणित होता है कि उनके गुरु विट्ठलनाथ थे। 'प्रात समय श्री वल्लभसुत के वदन कमल को दरसन कीजे' जैसी पंक्ति में प्रयुक्त 'वल्लभसुत' श्री विट्ठल की ओर ही संकेत करता है। नाभादास के भक्तमाल से पता चलता है कि वे रामपुर निवासी सुकुल जाति के ब्राह्मण थे और उनके छोटे भाई का नाम चन्द्रहास था। इधर गोस्वामी तुलसीदास के जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विचार करते समय जो सामग्री प्राप्त हुई है उससे सिद्ध है कि नन्ददास गोस्वामी तुलसीदास के चचेरे भाई तथा चन्द्रहास दास के सगे भाई थे। उनकी पत्नी का नाम कमला और उनके पिता का नाम जीवाराम था। नन्ददास के पुत्र का नाम कृष्णदास था। आरम्भ में तुलसीदास के प्रभाववश नन्ददास राम के भक्त थे। इसलिए उनके कुछ पद राम से सम्बन्धित हैं। बाद में विट्ठलजी की शिष्य-परंपरा में आकर वे पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए और कृष्ण की भक्ति में रम गये। इनके मृत्यु-संवत् के संबंध में अनुमान लगाया गया है। विट्ठलजी की मृत्यु के पूर्व उनका देहावसान हुआ था। विट्ठलनाथजी का गोलोकवास संवत् १६४२ में हुआ। दीनदयाल गुप्त के अनुसार नन्ददास की मृत्यु संवत् १६४० में हुई। वार्ता के अनुसार उनकी मृत्यु उनके स्थायी निवास स्थान 'मानसी गंगा' पर ही हुई थी।

रचनाएँ और वर्ण्य-वस्तु :- नन्ददासजी के नाम से ३० ग्रन्थों का पता लगा है किन्तु ९ ग्रन्थों को ही पूर्णतः प्रमाणित माना गया है। ये ९ ग्रन्थ हैं-रूप मंजरी, रस मंजरी, श्याम सगाई, विरह मंजरी, मान मंजरी, अनेकार्थ मंजरी, भँवर गीत, रास पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी। इन सब में भी विशेष ख्याति मिली है भँवर-गीत और रास-पंचाध्यायी को। रूप-मंजरी में साहित्यिकता अधिक है। रस-मंजरी और विरह-मंजरी में उनके साम्प्रदायिक सिद्धान्तों का कथन हुआ है। अनेकार्थ-मंजरी और मान-मंजरी कोष-ग्रन्थ हैं। रूप-मंजरी कथात्मक ग्रन्थ है। इसमें धर्मवीर नामक राजा की कथा, रूप मंजरी का असफल विवाह और इन्दुमती के प्रयत्न द्वारा उपपति श्याम से प्रेम व्यक्त है। इस कथा की ओट से कवि ने वल्लभ-सम्प्रदाय की प्रेम-साधना का कथन किया है। रूप-मंजरी में शृङ्गार रस का तथा नायिका के विभिन्न रूपों का कथन हुआ है। 'रस-मंजरी' नायिका-भेद का ग्रन्थ है। विरह-मंजरी में विरहिणी चंद्रबाला को अपना दूत बनाती है। इसमें कवि मेघदूत से प्रभावित दीखता है। बारहमासा का वर्णन इस कृति में बहुत सुन्दर हुआ है। 'मान-मंजरी' पर्यायवाची शब्दों का कोष है और 'अनेकार्थ-मंजरी' अनेकार्थक शब्दों का। 'श्याम-सगाई' में श्याम और कृष्ण की सगाई की कथा कही गयी है। भ्रमर-गीत भागवत के दशम स्कंध के ४७वें अध्याय पर आधारित है। रास-पंचाध्यायी में दशम स्कंध के २९ से ३३ अध्यायों की सामग्री का कथन है और सिद्धान्त-पंचाध्यायी में इन्हीं

नन्ददास के काव्य में पुष्टि-मार्ग के सिद्धान्त :- पुष्टि-मार्ग में कृष्ण को ब्रह्म माना गया है। नन्ददास ने भी ऐसा ही स्वीकार किया है। संसार को उत्पन्न करने वाली माया को हरि के अधीन मानकर नन्ददास ने कहा है--

'सो माया जिनके अधीन नित रहत मृगी जस।'

वेणुनाद को 'शब्द-ब्रह्म' के रूप में स्वीकार किया गया है। पुष्टि-मार्ग में कृष्ण को परम प्रेममय और परम रूपमय माना गया है। कृष्ण को परम रूपमय मानकर ही नन्ददास ने उन्हें 'रूप उपावन, रूपनिधि' कहकर सम्बोधित किया है। पुष्टि-मार्ग में विरह की साधना को ही प्रधानता मिली है। विरह-मञ्जरी और रूप-मञ्जरी की नायिकाओं के षट्‌ऋतु और बारहमासे वर्णन में इसी विरह-साधना की ओर संकेत किया गया हैं। पुष्टि-मार्ग का अन्तिम ध्येय 'परकीया प्रेम' है। कृष्ण के प्रति गोपियों का परकीया प्रेम ही नन्ददास ने दिखलाया है। इसीलिए नन्ददास की कविताओं में राधा के प्रेम की अपेक्षा गोपी-प्रेम का अधिक कथन हुआ है। कृष्ण-भक्ति में शृङ्गार का तादात्म कर नन्ददास ने कृष्ण के प्रति प्रेम-भाव को आध्यात्मिक स्वर प्रदान किया है। पुष्टि-मार्ग में मान्य आश्रय वस्तु के नव लक्षण-सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषन, ऊति, मन्वंतर, नृपगन तोपन, निरोध और मुक्ति का कथन भी नन्ददास ने किया है।

" अब सुनि कृष्ण विषैक निरोध,
जदपि अनन्त अखण्डित बोध।।"

जैसी पंक्तियों में 'निरोध' का कथन है। पुष्टि-मार्ग के अनुसार भगवान की प्रेमासक्ति ही साध्य है। गोपियाँ मर्यादा मेटकर ही कृष्ण को पाती हैं। पुष्टि-मार्ग के इस प्रेमतत्व का कथन नन्ददास ने उद्धव के मुख से कराया है-

"जे ऐसे मरजाद मैटि, मोहन कौ धावै।
क्यों-नहिं परमानन्द, प्रेम पदवी को पावै।।
ग्यान जोग सब कर्म तैं, प्रेम परे हैं साँच।
हौं नहिं पटतर देत हौं, हीरा आगे काँच।।"

पुष्टि-मार्गी भक्त की तरह 'यमुना-छवि' का उन्होंने भी बहुत अधिक वर्णन किया है।

नन्ददास के पदों में रस की स्थिति :- नन्ददास के पदों में बाल-लीला के पद बहुत कम हैं। उन्हें कृष्ण का यौवन अधिक आकर्षक लगा और उन्होंने शृङ्गार-मूलक पदों का ही गान किया। सम्प्रदाय के सिद्धान्तों से सम्बन्धित पदों के अतिरिक्त उनके कुछ पद कृष्ण के अलौकिक प्रसङ्गों-गोवर्धन लीला- से भी सम्बन्धित हैं, किन्तु अधिकांश पदों में शृङ्गार भाव ही पुष्ट हुआ है। शृङ्गार में भी उन्होंने विरह के पद कम लिखे हैं। उनके विरह को पलकांतर-विरह ही कहा जा सकता है--

"देखन देत न बैरिन पलकैं।
निरखत बदन लाल गिरिधर को बीच परत मानों बज्र की सलकैं।"

जैसी पंक्तियों में पलकांतर-विरह ही दिखाई पड़ता है। संयोग-शृङ्गार का कथन अधिक हुआ है--

"कुसुम सेज पौढ़े दम्पति करत हे रस बतियाँ,
त्रिविध समीर सीयरी उसीर रावरी मध
खसखाने सींचे सुमन जुड़ावत हे पिय छतियाँ।

कपोल सों कपोल दिये भुज सों भुज मीड़े,
कुच उतङ्ग पिय राजत हैं छतियाँ।।
नन्ददास प्रभु कनक पर्यंक पर सब सुख विलसत,
केलि करत मोहन एक गत भांति"

इस संयोग के नैकट्य में आध्यात्मिक निकटता का ही कथन है। उनके वियोग वर्णन में भी **आध्यात्मिक** विरह ही भासित होता है।

नन्ददास के कुछ पद वात्सल्य भाव के भी हैं--

"यशोदा गहत धाय बैयाँ, मोहन करत न्हैयाँ न्हैयाँ।
नन्ददास बलि जाय रे लाला।।"

सखा-भाव के भी कुछ पद उन्होंने लिखे हैं, किन्तु उनकी वृत्ति आध्यात्मिक **शृङ्गार में ही** मुख्यतः रमी है। शृङ्गार के वर्णन में उन्होंने प्रकृति का भी आश्रय लिया है। बारहमासा **और षट्ऋतु** वर्णन इसी प्रकार के हैं। इनमें गोपियों की मनोव्यथा का ही चित्र उपस्थित किया गया है। **'बारहमासा'** में 'सावन' का और 'षट्ऋतु' में 'वर्षा' का वर्णन अत्यन सुन्दर है।

"अब देखियत उमगी घन माला, मानहुँ मत्त मदन की ढाला।
....
भरि-भरि सुण्ड भंडारनि पानी, मारत मोहिं, करत तक बानी।
घूमत फिरत महा मतवारे, ढाहत पिय के अवधि करारे।।"

इस पद में बादलों को हाथी का रूप देकर कवि ने उनके द्वारा 'पिय के अवधि करारों' को **ढहा कर** विरहिणी की मनः व्यथा का सुन्दर कथन किया है। विरह के चित्रण में अभिलाषा, चिन्ता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मूर्च्छा, मरण आदि दसो दशाओं का कथन नन्ददास ने किया है।

भ्रमर गीत :- नन्ददास के भ्रमर गीतों का आरम्भ उद्धव के उस वचन से होता है जिसमें वे श्याम के द्वारा भेजे गये सन्देश की बात कहते हैं। गोपियाँ श्याम का नाम सुनते ही विह्वल हो उठतीं हैं, उनका सत्कार कर श्याम का कुशल पूछतीं हैं। ऊधो कहते हैं कि कृष्ण ब्रज में आयेंगे। गोपियों में रूपासक्ति और मूर्च्छा आती हैं। गोपी-उद्धव संवाद होता है और इस संवाद में सगुण की महत्ता, निर्गुण के विरुद्ध, प्रतिपादित होती है। गोपियों को सहसा कृष्ण का दर्शन-सा होता है और वे उपालम्भ देतीं हैं। गोपियों की इस प्रेम-भक्ति को देख उद्धव का 'नेम' भाग जाता है। इसी समय भ्रमर कहीं से उड़ता हुआ आता है। गोपियाँ उसकी ओट ले उद्धव को उपालंभ देतीं हैं। ऊधो कृष्ण के पास जाकर गोपियों के प्रेम की कथा कहते हैं। इसे सुनकर कृष्ण प्रेम-विह्ल हो उठते हैं। इसी कथावस्तु के द्वारा अपने भ्रमर-गीत में नन्ददास ने निर्गुण पर सगुण की विजय की तर्कपूर्ण स्थापना की है। इसी के द्वारा उन्होंने गोपियों की रूपासक्ति और प्रेमासक्ति का विशद चित्रण किया है।

भ्रमर-गीतों के कथन में नन्ददास भागवत की अपेक्षा सूर के भ्रमर-गीतों से अधिक प्रभावित हुए हैं। सूर के छन्दबद्ध भ्रमर-गीत की शैली को ही नन्ददास ने स्वीकार किया है। उनके भ्रमर-गीतों के अन्त में दस मात्रा का एक टेक बराबर मिलता है।

प्रयोग हुआ है। वे भाव को महत्त्व देते थे, अतः उनकी दृष्टि भाव पर अधिक थी। स्वभावत; जो अलंकार उनकी कविता में आये हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं-

अनुप्रास- हे चन्दन, मुख बन्दन सबको जरन जुड़ावहु।
नन्दनन्दन, जगबन्दन, चन्दन हमें बतावहु।।

उत्प्रेक्षा- अब देखियत उमगी घनमाला, मानहुँ मत्त मदन को ढाला।

रूपक- 'नव मरकत घनश्याम, कनक मणिगन ब्रजबाला।'

इसी प्रकार उपमा आदि का भी कथन हुआ है।

छन्द की दृष्टि से नन्ददास जी ने पंचमंजरियों में चौपई, चौपाई और दोहा का प्रयोग किया है। रास-पंचाध्यायी और सिद्धान्त-पंचाध्यायी में रोला छन्द का प्रयोग है, किन्तु रोला में ११ मात्रा पर यति का नियम पूर्णतः नन्ददास की कविता में नहीं निभाया जा सका है। भँवर-गीत ओर श्याम-सगाई में रोला और दोहा के साथ १० मात्रा की टेक देने की पद्धति नन्ददास ने स्वीकार की है। अनेकार्थ-मंजरी में दोहे के साथ सोरठों का प्रयोग है। कहीं-कहीं कवित्त, सवैया का भी प्रयोग हुआ है। पदों के गान में नन्ददास ने राग-रागिनियों का पूरा ध्यान रक्खा है।

नन्ददास की भाषा माधुर्य और प्रसाद गुण से युक्त है। संयुक्ताक्षर और समासांत पदावली का अभाव माधुर्य की वृद्धि में सहायक हुआ है। शब्दों का चयन कर उन्होंने ब्रजभाषा को और भी मधुर बना दिया है। शब्द-चयन की पटुता के कारण ही वे 'जड़िया' कवि कहे जाते हैं। शब्दों के चयन में ध्वन्यात्मकता को विशेष महत्त्व मिला है।

भाषा का नाद-सौन्दर्य देखिए--

"नूपुर, कंकन, किंकिन, करतल, मंजुल मुरली।
ताल, मृदंग, उपंग, चंग एकहि सुर जुरली।।
मृदुल मुरज-टंकार तार झंकार मिलो धुनि।
मधुर जन्त्र का तार, भवर गुंजार रली पुनि।।"

शैली की दृष्टि से उनकी कविता में आलंकारिक और अनालंकारिक दोनों ही शैलियों का प्रयोग हुआ है।

नन्ददास के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि कलापक्ष की दृष्टि से नन्ददास कृष्ण-भक्त कवियों में अद्वितीय स्थान के अधिकारी रहे हैं।



अब्दुर्रहीम खानखाना 'रहीम'

जन्म-संवत् :-- १६१० वि० मृत्यु-संवत् :-- १६८३ वि०

जीवन-वृत्त :- अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म संवत् १६१० वि० में हुआ। उनके पिता इतिहास प्रसिद्ध बैरम खाँ अकबर के दरबार में रहते थे। अकबर को बैरम खाँ ने पाला था, इसीलिए अकबर के दरबार में उनका सम्मान था। कुछ काल बाद बैरम खाँ खानखाना में विरोधी भाव जगा और वह अकबर का प्रच्छन्न रूप से विरोध करने लगा। अकबर ने उसे मक्का की सैर के लिए भेज दिया। रास्ते में बैरम खाँ के शत्रु मुबारख खाँ ने बैरम खाँ की हत्या कर दी। इस समय रहीम केवल ४ वर्ष के थे। बैरम खाँ की मृत्यु के बाद अकबर ने स्वयं रहीम का पालन किया। प्रतिभा-सम्पन्न रहीम को अरबी, फारसी का बड़ा अच्छा ज्ञान था और वे संस्कृत का भी ज्ञान रखते थे। कुछ काल तक अकबर के पुत्र सलीम के वे मुख्य शिक्षक भी रहे। उनका विवाह राज्य-परिवार की ही एक कन्या से अकबर ने करा दिया। अकबर उनसे इतने प्रभावित थे कि उन्होंने उन्हें अपना सेनापति, मन्त्री और बाद में नवरत्न बना लिया। 'मिर्जा खाँ' की उपाधि भी उन्हें बादशाह अकबर से ही प्राप्त हुई थी।

स्वभाव से रहीम बहुत बड़े गुणग्राही और दानशील व्यक्ति थे। उनके यहाँ विद्वानों का जमघट लगा रहता था। गोस्वामी तुलसीदास से इनकी मित्रता भी मान्य है। एक बार कवि गंग ने एक छप्पय रहीम की प्रशंसा में लिखा। किंवदन्ती है कि इस छप्पय पर गंग को उन्होंने १६ लाख की हुँडी दे दी। वह छप्पय इस प्रकार है :-

चकित भँवर रहि गयो, गमन नहिं करत कमल वन।
अहि-फनि मनि नहिं लेत, तेज नहि बहत पवन घन।।
हँस नानसर तज्यो, चक चक्का न मिले अति।
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चाहे न करै रति।।
खलभलति सेस कवि गंग भनि, अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखाँ बैरम-सुवनजा, दिन क्रोध करि तज्ञ कस्यो।।

उनकी दानशीलता से तथा समस्यापूर्ति से सम्बन्धित एक किंबदन्ती और भी है। कहते हैं कि एक बार एक ब्राह्मण अपनी कन्या के विवाह के लिए सहायतार्थ तुलसीदास के पास गया। तुलसीदास ने दोहा की एक पंक्ति लिखकर उसे रहीम के पास भेजा। वह पंक्ति थी :-

'सुरतिय नरतिय नागतिय, यह चाहत सब कोय।'

रहीम ने उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर उस पंक्ति के साथ एक दूसरी पंक्ति जोड़ दी और उसे तुलसीदास के पास लौटा दिया। यह दूसरी पंक्ति थी :-

'गोद लिए हुलसी फिरै, तुलसी से सुत होय।''

रहीम बड़े ही सहृदय व्यक्ति थे। बरवै छन्द को उन्होंने ही प्रधानता दी। यह छन्द उन्हें उनके एक नौकर की पत्नी से प्राप्त हुआ था। कहते हैं कि एक बार रहीम का एक नौकर उनसे छुट्टी लेकर घर गया। आते समय पत्नी ने रुकने को कहा, पर नौकरी के भय से वह रुक नहीं सका और लौट आया। उसकी पत्नी ने एक पद लिखकर उसके हाथ रहीम के पास भेजा :-

''प्रेम प्रीत को बिरबा चलो लगाय।

सींचन की सुधि लीजियो मुरझि न जाय।।"

इन पंक्तियों को पढ़कर नारी-हृदय की भावना को रहीम ने पढ़ लिया और नौकर को लम्बी छुट्टी देकर, बहुतेरे वस्त्र आभूषणों के साथ उसकी पत्नी के पास भेज दिया। इस पद में प्रयुक्त शब्द 'बिरवा' के आधार पर उन्होंने इस छन्द को 'बरवै' कहा और इसमें रचनाएँ कीं।

अपने अन्तिम दिनों में रहीम का जीवन कष्टमय हो उठा। जहाँगीर ने उन्हें देश-द्रोही कहकर उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति ले ली। रहीम ने साहस न छोड़ा। वे एक भड़भूजे के यहाँ भाड़ झोंकने लगे। उनको इस स्थिति में देखकर रीवाँ-नरेश ने एक अर्द्धाली पढ़ी--

"जाके सिर अस भार सो कस झोंकत भार ये।।"

रहीम ने उन्हें पहचान कर उत्तर दिया--

"रहिमन उतरे पार भार झोंक सब भार में।।"

उनके अन्त काल की इस निर्धनता का परिचय उनके दोहों से भी मिलता है--

"ये रहीम दर दर फिरहिं माँग मधुकरी खाँहि।
यारो यारी छोड़िए वे रहीम अब नाँहि।।"

उनकी मृत्यु संवत् १६८३ वि० में हुई।

रचनाएँ :- रहीम ने फारसी से अनुवाद के अतिरिक्त 'खेट कौतुकम' नामक ज्योतिष-ग्रन्थ की भी रचना की थी। उनके काव्य-ग्रन्थों के रूप में 'बरवै नायिका भेद', 'मदनाष्टक', 'रास पंचाध्यायी', 'शृङ्गार सोरठा' 'रहीम सतसई' का नामोल्लेख है। इनकी समस्त रचनाएँ रहीम-रत्नावली में संगृहीत हैं। 'बरवै नायिका भेद' में लक्षणों के साथ नायिकाओं का वर्णन किया गया है। 'रास पंचाध्यायी' नामक पुस्तक अप्राप्त है। केवल इसके दो पद भक्तमाल की टीका में मिलते हैं। 'शृङ्गार सोरठा' भी अप्राप्त है। इसका उल्लेख केवल शिवसिंह सेंगर की पुस्तक में मिलता है। 'रहीम-सतसई' भी पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं है। इस प्रकार केवल 'बरवै नायिका-भेद' ही प्राप्त है। शेष स्फुट रचनाएँ रहीम-रत्नावली में ही संगृहीत हैं।

वर्ण्य-वस्तु :- कविवर रहीम की रचनाओं को वर्ण्य-वस्तु की दृष्टि से चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। उनकी कुछ रचनाएँ पांडित्य, दर्शन और ज्ञान की परिचायिकाएँ हैं; कुछ रचनाओं में उन्होंने राम, कृष्ण आदि की भक्ति का स्वर मुखरित किया है; कुछ रचनाएँ शृङ्गारमय हैं और शेष रचनाएँ नीति से सम्बन्धित हैं। जीवन का व्यापक अनुभव उनके नीति-विषयक दोहों में ही देखने को मिलता है।

(१) पाण्डित्य, दर्शन सम्बन्धी पद :- रहीम ने बिन्दु रूप में जीवन को और सिन्धु रूप में ब्रह्म को स्वीकार कर प्रतीक शैली में कहा है --

"बिन्दु मो सिन्धु समान, को अचरज कासो कहे।
हेरनहार हेरान, रहिमन अपने आपसे।।"

इस पद में कबीर द्वारा कथित 'लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल' की रहस्यात्मकता का दर्शन होता है।

(२) राम और कृष्ण से सम्बन्धित पद :- रहीम सगुण मार्गी धारा के कवि थे। वे कृष्ण के लीलामय रूप से अधिक प्रभावित थे और जगह-जगह पर दोहा, बरवै, गीत आदि के द्वारा उन्होंने कृष्ण के रूप का कथन किया है, किन्तु राम का वर्णन भी उनकी कृतियों में हुआ है। वस्तुतः वे वि-

के दोनों ही रूपों- राम और कृष्ण - के उपासक थे। राम का ध्यान करने के उद्देश्य से हनुमान तथा राम की वन्दना करते हुए उन्होंने कहा है --

''ध्याबहु विपद विदारन, सुवन-समीर।
खल-दानव वन जारन, प्रिय रघुवीर।।''

कृष्ण की माधुरी मूरति तो उनके चित्त में ही बस गयी थी। 'कमल दल नैननि की उनमानि' का अनुभव करते हुए वे कह उठते है--

''अनुदिन श्री वृन्दावन ब्रज तें आवन आवन जानि।
अब 'रहीम' चित ते न टरति हैं, सकल स्याम की बानि।।''

उन्होंने शंकर की भी वन्दना की है -

''ध्यावहु सोच-विमोचन गिरिजा ईस।
नागर भरन त्रिलोचन, सुरसरि सीस ।।''

इन पदों से स्पष्ट है कि उपासना की दृष्टि से वे कृष्ण के प्रति आकृष्ट होने पर भी किसी एक देव की पूजा के आग्रही नहीं थे। इतना अवश्य है कि वे सगुण ब्रह्म के उपासक थे।

सगुण ब्रह्म के उपासक होने पर भी वे सत्सङ्ग के प्रभाव और गुरु के महत्त्व को उतनी ही मान्यता देते थे जितनी अन्य सन्त कवि। गुरु की वन्दना का महत्त्व स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है--

''पुनि-पुनि वन्दहु गुरु के पद जलजात।
जिहि प्रताप तैं मन के तिमिर बिलात।।''

(३) शृङ्गार विषयक पद :- 'बरवै नायिका-भेद' रहीम की नायिका-भेद सम्बन्धी शृङ्गार रस पूर्ण पुस्तक है। लक्षणों के साथ नायिकाओं का वर्णन ही इस कृति का प्रतिपाद्य है। 'मनसिज' रूपी माली की उपज के रूप में उत्पन्न फल और फूल को श्यामा और श्याम के उर में दिखाना शृंगार की सूक्ष्म प्रवृत्ति का द्योतक है। 'श्यामा' के उरोजों को मनसिज का फल कहकर शृङ्गार भाव का कथन कितनी चतुराई से किया गया है--

''मनसिज माली कै उपज, रहिमन कही न जाय।
फल श्यामा के उर लगे, फूल श्याम उर माहिं।।''

यौवन के आते ही बालपने के साथियों से और स्वयं बाल्यावस्था से ही साथ छूट जाने पर नायिका का वचन देखिए--

''औचक आय जोबनवाँ, मोहि दुख दीन।
छुटि गो सङ्ग गोइयवाँ, नहिं भल कीन।।''

निश्चित ही 'बरवै' शृङ्गार के कथन में अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है।

(४) नीति-परक पद :- 'रहीम' का नाम लेते ही उनके नीति सम्बन्धी दोहों की ओर ध्यान चला जाता है। उनकी ख्याति का वास्तविक आधार उनकी नीति-परक रचनाएँ ही हैं। विविध स्थितियों में व्यक्ति इन दोहों की शिक्षा से अपनी सुरक्षा करता है। निश्चित ही सूक्ति रूप में इनका महत्त्व स्तुत्य है। उनकी नीति-परक रचनाओं का कुछ नमूना देखिए-

१-- *''रहिमन अती न कीजिए, गहि रहिए निज कानि।*
सैजन अति फूले तऊ, डार पात की हानि।''

२-- "रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ कांम आवे सुई, कहा करै तरवारि।।"

इसी प्रकार के अन्य दोहों से भी उन्होंने अनेक प्रश्नों का समाधान किया है। जीवन के विविध पक्षों की अनुभूति ने उन्हें सहानुभूति का गुण प्रदान किया था। वे बड़ी सहृदयता से सरल भाषा में अपनी इन अनुभूतियों को अभिव्यक्त कर लोगों को कर्तव्य के प्रति जागरूक करने में सफल रहे हैं। आज भी हम इन नीति-प्रद वाक्यों से शिक्षा ग्रहण करते हैं। अपने जीवन में हम इनका उपयोग लेते रहते हैं।

अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए नवीन कल्पना और उक्ति-वैचित्र्य का सहारा उन्होंने लिया है बड़े पेट को भरने की समस्या के कारण ही आज दुख की बढ़ती है, यह दिखाने के लिए रहीम की उक्ति देखिए--

"बड़े पेट के भरन को है रहीम दुख बाढ़ि।
या ते हाथी हहरि कै, दिए दाँत द्वै काढ़ि।।"

हाथी के दाँत की स्वाभाविक स्थिति को बड़ी चतुराई से कवि ने अपने तर्क के समर्थन के लिए उपयोग में लिया है!

कला-पक्ष :- रहीम कवि की भाषा अवधी और ब्रज थी। 'बरवै नायिका-भेद' की भाषा पूर्वी अवधी है, नीति की कविताओं की भाषा भी अवधी ही है, किन्तु भक्ति विषयक पदों की भाषा ब्रज है। शब्दों का चयन और मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग उनकी रचनाओं में बड़ी सुन्दरता से हुआ है। उनकी इस प्रकार की भाषा का एक प्रयोग देखिए :-

"जो रहीम ओछो बढ़े. तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय।।"

शैली की दृष्टि से रहीम ने मुख्यतः दोहा, सोरठा और बरवै छन्दों का ही प्रयोग किया है। नीति-विषयक पदों के कथन में दोहा और सोरठा का व्यवहार हुआ है और 'बरवै नायिका-भेद' में बरवै छन्द का। इसके साथ ही पद शैली का भी व्यवहार उनकी भक्ति-मूलक रचनाओं में मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ कवित्त, सवैया और छप्पय शैली में भी मिलती हैं, किन्तु उनका प्रमुख छन्द 'बरवै' ही था। 'बरवै' को उन्होंने ऐसा सँवार कर प्रस्तुत किया है कि महाकवि तुलसीदास भी उससे प्रभावित हुए बिना न रह सके और उन्होंने भी उसे स्वीकार कर लिया।

बिना आयास के ही इनकी रचनाओं में विविध अलंकार आ गए हैं, अतः उनके प्रयोग में बड़ी स्वाभाविकता है। इनके प्रमुख अलंकार हैं- उपमा, रूपक, उदाहरण, दृष्टान्त आदि। इन अलंकारों का स्वरूप देखिए :-

उपमा-- 'कमल दल नैननि की उनमानि।'
रूपक-- "रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।'
उदाहरण-- "ओछो काम बड़े करैं, तौ न बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहै न कोय।।"
दृष्टान्त-- "रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डार।
जहाँ काम आवे सुई कहा करे तरवार।।

अन्य अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है।

रहीम की कविता के भाव-पक्ष और कला-पक्ष दोनों पर विचार करने के पश्चात् स्वीकार करना पड़ता है कि नीति-परक कवियों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ है।



आचार्य केशवदास

जन्म-संवत् :-- १६१२ वि०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- १६७४ वि०

जीवन-वृत्त :- आचार्य केशवदास के जीवन के सम्बन्ध में अधिक मतभेद नहीं है। 'कविप्रिया' के प्रथम दो प्रभावों में कवि ने अपनी तथा अपने आश्रय-दाताओं की वंश-परंपरा का कथन कर शंकाओं का समाधान कर दिया है। उनके दादा कृष्णदत्त मिश्र ओरछा नरेश रुद्रप्रताप के यहाँ पुराण पढ़ने के लिए नियुक्त थे। रुद्रप्रताप के बाद मधुकर शाह ने जब राज्य का भार ग्रहण किया तब उन्हें केशवदास के पिता काशीनाथ मिश्र पुराण सुनाते थे। काशीनाथ की मृत्यु के बाद केशव के अग्रज बलभ्रद मिश्र को यह कार्य मिला। मधुकरशाह के बाद रामशाह गद्दी पर आये। रामशाह के छोटे भाई इन्द्रजीत सिंह के दरबार में केशव रहा करते थे। वहाँ उनका बड़ा सम्मान था --

''गुरु करि मान्यो इन्द्रजित तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दए इकबीस तब ताके पाय पखारि।।''

के द्वारा इन्द्रजीत सिंह के दरबार में केशव का सम्मान प्रमाणित है। ओरछा के प्रति केशवदास का मोह बहुत अधिक था। 'वारिए नगर और ओरछा नगर पर' जैसी पंक्तियों में ओरछा के प्रति उनका प्रेम स्पष्ट है। ओरछा के दरबार में 'राय-प्रवीन' नामक वेश्या पर वे मुग्ध थे। उसे रमा, शारदा, सिवा का सम्बोधन भी उन्होंने दिया है। देवी रूप में वेश्या को देखना केशव की कुरुचि का ही परिचायक है। केशव के परिवारवाले संस्कृत के विद्वान थे। भाषा में कविता लिखने पर केशव को लज्जित होना पड़ा था। अपनी इस दशा का कथन उन्होंने किया है :-

''भाषा बोलि न जानहिं, जिनके कुल के दास।
भाषा कवि यों मंदमति, तेहि कुल केशवदास।।''

केशवदास की रसिकता का बोध उनकी कविताओं से होता है। एक बार वृद्ध किन्तु रसिक केशवदास को स्त्रियों ने वावा कहकर पुकारा। इसपर खिन्न होकर केशव ने कहा--

''केशव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहिं।
चन्द्रवदनि, मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं।।''

केशवदास का जन्म-संवत् १६१२ वि० और मृत्यु-संवत् १६७४ वि० मान्य है।

रचनाएँ :- कवि केशवदास कृत कुल ६ ग्रन्थों को मान्यता मिली है :-

(१) रसिक-प्रिया -- इसमें रसों का निरूपण और नायिका-भेद का कथन है।

(२) राम-चन्द्रिका-- इसमें राम की कथा को प्रबन्ध रूप में लिखने का प्रयास है। अलंकार-निरूपण अधिक है और कथा-भाग शिथिल है।

(३) कवि-प्रिया-- कवि के वर्ण्य-विषयों और अलंकारों का परिचायक ग्रन्थ है।

(४) रतन-बावनी-- इसमें वीर रस पूर्ण कविताएँ संगृहीत हैं। इसका नामकरण इन्द्रजीत सिंह के भाई के नाम पर हुआ है।

(५) **विज्ञान-गीता**-- दार्शनिक विचारों का संग्रह है।

(६) **वीरसिंह देव चरित**-- वीरसिंहजी की प्रशस्ति का ग्रन्थ है।

(७) **जहाँगीर जस-चन्द्रिका**-- जहाँगीर की प्रशस्ति का साधारण कोटि का ग्रन्थ है।

(८) **नख-शिख**-- नायिका-भेद का ग्रन्थ है। इसमें नख-शिख-सौन्दर्य का कथन है।

(९) **राम अलंकृत मंजरी**-- छन्दों का ग्रन्थ माना जाता है।

इन कृतियों में अन्तिम दो अप्राप्त हैं।

केशवदास की प्रवृत्ति :- आचार्य केशवदास की कृतियों को देखने से ऐसा लगता है कि राम-भक्त कवि थे। विज्ञान-गीता पर सन्तों का प्रभाव और राम-चन्द्रिका पर राम-भक्ति का प्रभ उनके भक्तिभाव का परिचय देता है। 'वीरसिंहदेव चरित' तथा 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' से उनकी व रस पूर्ण प्रवृत्ति का बोध होता है। अन्य कृतियों में शृङ्गार-भाव का कथन, रस का वर्णन, अलंकार-निरू किया गया है। उनकी भक्ति-मूलक और वीर-रस प्रधान कविताओं में भी इसी प्रवृत्ति का अधि प्रभाव दीखता है। अतः उनकी मुख्य प्रवृत्ति 'रीति' का परिचय देने की ओर थी। लक्षण-निरूप पांडित्य-प्रदर्शन, अलंकार-कथन ही उनका मुख्य विषय था। इसीलिए उनकी कविताओं में भावपक्ष द हुआ और कला-पक्ष उभड़ा हुआ दिखायी पड़ता है। वे इसीलिए आचार्य रूप में अधिक विख्यात वस्तुतः केशवदास जी ने भक्ति-काल के प्रभावबश राम की कथा का कथन किया है ... रीति-काली प्रवृत्ति तथा दरबारी प्रवृत्ति के कारण लक्षणों, अलंकारों का कथन तथा नायिका-भेद, नख-शिख आं का निरूपण किया है। उनके पूर्व कृपाराम की हिततरंगिणी में आचार्यत्व का आभास मिल चुका किन्तु उससे आचार्यत्व की परम्परा आगे न बढ़ सकी। केशवदास के पश्चात् यह परम्परा बड़े वेग आगे बढ़ी। बाद के लगभग सभी कवियों ने अलंकार, छन्द आदि का बोध कराने के उद्देश्य काव्यरचना की। अतः केशवदास हिन्दी के प्रथम आचार्य-कवि माने गये। भाव को छोड़कर लक्षण क मान्यता देने के कारण ही केशवदास रीतिबद्ध शाखा के कवि माने जाते हैं। आचार्य के रूप में अलंकारवादी परम्परा के मानने वाले थे :-

'भूषण बिन न बिराजई कविता, वनिता, मित्त' से उनकी अलंकारवादी दृष्टि स्पष्ट है।

अलंकारवादी कवि होने के कारण राम पर लिखे गये प्रबन्ध काव्य 'रामचन्द्रिका' में दरबार का विलास-पूर्ण वातावरण ही दिखाई पड़ता है। इस कृति में प्रबन्धात्मकता दब-सी गयी है वर्णन का आधिक्य और भावात्मकता या रागात्मकता की कमी का कारण भी कवि की चमत्कारवा रुचि ही थी। वाल्मीकि और तुलसी का प्रभाव धारण करने पर भी राम की मर्यादा-पूर्ण स्थिति क भुलाकर केशव ने राज-दरबारवाली विलास-भावना का ही अधिक कथन किया है। दरबार मे रहने कारण संवाद-कथन में केशव बड़े पटु थे। इसीलिए रामचन्द्रिका मे सुमति-विमति के संवाद बड़े सुन्द बन पड़े हैं।

अलंकार-प्रेम के कारण कहीं कहीं केशव ने गहरी भूलें भी कीं हैं। दण्डकवन का वर्णन कर समय वे लिखते हैं :-

'पांडव की प्रतिमा सम देखौ, अर्जुन भीम महामति लेख्यौ।'

द्वापर के पांडवों को त्रेता में दिखाना निश्चय ही बड़ा दोष है। श्लेष के चक्कर में आकर ही यह भू केशवदास ने की है।

केशवदास में भावुकता भी कम थी। वे कठिन से कठिन भाषा में स्थूल वर्णन ही अधिक कर सके हैं।

'देखे भावै मुख अनदेखे कमल चन्द' जैसी पंक्तियों से भावुकता की कमी का परिचय मिलता है, किन्तु जहाँ आचार्यत्व या पाण्डित्य से हटकर उनकी भावना उमड़ी है, वहाँ उनकी भावुकता का सुन्दर रूप भी देखने को मिला है। हनुमान द्वारा गिराई गयी मुद्रिका पर सीता की उक्ति द्रष्टव्य है :-

"श्रीपुर में बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति।
कहु मुँदरी ! अब तियन की को करिहैं परतीति।।

इस पर हनुमान का उत्तर भी समयोचित ही है।

प्रकृति चित्रण :- केशवदास की वृत्ति पकृति के सूक्ष्म स्पन्दनों को देखने की ओर नहीं थी। उन्होंने उसके स्थूल रूप का ही दर्शन और कथन किया है। नामोल्लेख करते हुए केवल प्राकृतिक वस्तुओं की सूची गिनाने के अतिरिक्त अलंकार प्रदर्शन, उद्दीपन, नीति समर्थन, कल्पना-मूलक निरीक्षण आदि के रूप में भी केशव ने प्रकृति का वर्णन किया है।

सूची गिनाने वाले प्रयोग-- "एला लता लवङ्ग सङ्ग पुंगी फल सोहै।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकिल अलि मोहे।।"

अलंकार प्रदशनार्थ प्रयोग-- "बेर भयानक-सी अति लगै।
अर्क समूह तहाँ जगमगै।।"

उद्दीपन रूप में -- "देखि राम वर्षा ऋतु आई। रोम-रोम बहुधा दुखदाई।।
आस-पास तम को छवि छाई। राति द्यौस कछु जानि न जाई।।
मन्द-मन्द धुनि सों घन गाजै। तूर तार जनु आवस बाजै।।
ठौर-ठौर चपला चमकै यों। इन्द्रलोक तिय नाचति हैं ज्यों।।"

नीति-समर्थन रूप में -- "जहीं वारुणी की करी रञ्चक रुचि द्विजराज।
तहीं कियो भगवन्त बिनु सम्पति सोभा साज।।"

कल्पना पूर्ण दर्शन-- "चढ्या गगन तरु धाय दिनकर बानर अरुण मुख।
कीन्हों झुक झहराय, सकल तारका कुसुम बिनु।।"

प्रकृति को विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करने पर भी केशवदास उसका कोइं स्पष्ट चित्र प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। अलंकारों के प्रचुर प्रभाव के कारण प्रकृति का चित्र पूर्णतः बन नहीं सका है। उद्दीपन-विभाव रूप में कथित प्रकृति तो पूर्णतः प्रभावहीन है और उद्दीपन उससे प्राप्त ही नहीं हो पाया है। प्रकृति का कथन करते समय कहीं-कहीं केशव ने पौराणिक-आख्यानों को भी व्यक्त किया है। इस प्रसङ्ग का चित्रण और भी दुरूह हो उठा है। बहुत ही कम ऐसे स्थल आये हैं जहाँ प्रकृति का सुन्दर रूप में कथन हुआ है। वस्तुतः प्रकृति-चित्रण में उनकी वृत्ति रमी ही नहीं है। इसीलिए तो उन्हें 'कमल चन्द' अनदेखे अच्छे लगते हैं, देखने पर नहीं।

कला-पक्ष :- कला-पक्ष की दृष्टि से रस, अलंकार, छन्द और भाषा पर विचार करना आवश्यक हो जाता है। रस की दृष्टि से आचार्य केशवदास कृत 'रसिक प्रिया' में लगभग सभी रसों का परिचय कवि द्वारा दिया गया है किन्तु शृङ्गार-रस को प्रधानता मिली है। रामचन्द्रिका में भक्ति-भाव

होने पर भी शान्त-रस कम मिलता है। वात्सल्य का इस कृति में सर्वथा अभाव है। इसमें शृङ्गार वीर रसों की विशेषतः पुष्टि हुई है। रतन-बावनी में वीर-रस और विज्ञान-गीता में शान्त-रस का वर्णन है। वीर-रस का स्वरूप देखिए--

"गाजत गज हींसत हय ठारे। बिनु सूँडन बिनु पायनि कारे।।
नारि कमान तोर असरार। चहुँ दिसि गोला चले अपार।।
परम भयानक यह रन भयो। सेखहिं उर गोला लग गयो।।

शृङ्गार-रस का परिचय रसिक-प्रिया की प्रत्येक कविता में मिलता है--

"बन में वृषभानु कुमारि मुरारि रमें रुचि सों रस रूप पिये।
कहुँ कूजत पूसत कामकला विपरीत रची रति केलि लिये।।"

यह शृङ्गार कहीं-कहीं नग्न भी हो उठा है--

"लोचन बिसाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चापे की सी माला लाल लीनो उर लायकै ।।"

अन्य रस भी यत्र-तत्र आये हैं पर मुख्य शृङ्गार रस ही है। छन्दों की दृष्टि से केशवदास ने विभिन्न छ का प्रयोग किया है। दोहा, सोरठा, सवैया, कवित्त आदि छन्दों के अतिरिक्त संस्कृत-वृत्त के विभिन्न छ का प्रयोग रामचन्द्रिका में देखने को मिलता है। उन्होंने मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों रचनाएँ कीं हैं।

अलंकार की दृष्टि से उनकी कृतियों में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग मिलता है। अलंकार- केशव ने अलंकारों के प्रयोग के उद्देश्य से भावों की उपेक्षा भी की है। कुछ अलंकार देखिए--

श्लेष-- "कविकुल विद्याधर सकल कलाधर, राजराज वरवेष बने।
गनपति सुखदायक, पसुपति लायक, सूर सहायक कौन गने।
सेनापति बुधजन, मंगल, गुरुजन, धर्मराज मन, बुद्धि धनी।
बहु सुभ मनसाकर, करुनामय अरु, सुर तरंगिनी, सोभ सनी।।"

इस पद में प्रत्येक शब्द श्लेष रूप में प्रयुक्त है।

यमक-- पूरन पुरान अरु पुरुष पुरान परिपूरन,
बतावें न बतावें और उक्ति को।
दरसन देत जिन्हें दरसन समुझैं न,
नेति नेति कहैं वेद छाड़िं आनि उक्ति को।।

परिसंख्या-- मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम-हुतासन-धूम नगर एकै मलिनाइय।।"

उल्लेख-- "विधि के समान हैं, विमानीकृत राजहंस,
विविध बिबुध-युत मेरु सों अचल हैं।"

विभावना-- "यद्यपि ईंधन जरि गये, अरिगन केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के, पल पल बढ़त प्रकास।।"

न्प्रेक्षा और संदेह--

"अरुन गात अतिप्रात, पद्मिनी प्राननाथ भय।
मानहुँ 'केशवदास' कोकनद कोकप्रेममय।।
परिपूरन सिंदूर पूर, कैधों मंगल-घट।
किधौं सक्र कौ छत्र मढ़्यों, मानिक मयूखपट।।"

नकी कविताओं में रूपक, विरोधाभास, विषम आदि विभिन्न अलंकार भी प्रयुक्त हैं।

भाषाः- केशवदास की भाषा ब्रज-भाषा थी; किन्तु उसपर बुन्देलखण्डी भाषा का प्रभाव था। ारसी के शब्द भी उनकी भाषा में आये हैं। उन्होंने 'देवता' शब्द को बराबर स्त्रीलिंग में प्रयुक्त किया । बुन्देलखण्डी मुहावरों का भी प्रयोग केशव ने किया है--

"धनु है यह गौरमदाइन नाहीं" में 'गौरमदाइन' का प्रयोग बुन्देलखण्डी पद्धति पर ही हुआ । कुछ अपभ्रंश शब्दों का भी प्रयोग किया गया है-- "तुम साथा समरथ्थ शत्रु कहँ सत्त न डुल्लिय" 'समरथ्थ' ओर 'डुल्लिय' का प्रयोग। कुछ शब्दों को विकृत भी किया गया है, यथा-स्वर्ग को 'सुरग' ौर सहोदर को 'सोदर' लिखना। बुन्देली, फारसी आदि शब्दों का प्रयोग तथा ब्रजभाषा के शब्दों का कृत प्रयोग उनकी भाषा को दुरूह बना देता है। कहीं-कहीं अप्रसिद्ध अर्थ में भी केशवदास ने शब्दों ा प्रयोग किया है। 'विषमय यह गोदावरी' में विष का 'जल' अर्थ इसी प्रकार का है। इसी प्रकार के न्य प्रयोगों के कारण भी उनकी भाषा अत्यन्त कठिन हो गयी है और वे 'कठिन भाषा के प्रेत' कहे ाते हैं।

केशवदासजी के काव्य-ग्रन्थों पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि उनका ाव्य-पक्ष उनके आचार्यत्व के समक्ष दुर्बल पड़ गया है। उनमें आचार्यत्व अधिक और कवित्व कम है।



रसखानि (रसखान)

जन्म-संवत् :-- १६१५ वि०   मृत्यु-संवत् :-- १६८० वि

जीवन-वृत्त :- रसिक 'रसखानि' का कृष्ण-भक्त कवियों में प्रमुख स्थान है। ये जाति पठान थे और इनका नाम सय्यद इब्राहीम था। इनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री चौर वैष्णवों की वार्ता से प्राप्त होती है। इसके अनुसार इनके प्रेमी स्वभाव का भी परिचय मिलता है। व में कहा गया है कि वे पहले एक बनिये के लड़के पर आसक्त थे, बाद में चार महात्माओं के प्रयत्न अपने वासना-जनित प्रेम को मोड़कर उन्होंने उसे भगवत् विषयक बना दिया। किंवदन्ती-रूप में उन प्रेम किसी नारी के प्रति भी मान्य है। इन सबका एक ही अर्थ निकलता है कि रसखानि प्रेमी स्वभाव व्यक्ति थे और उनका लौकिक प्रेम ही भक्तिभाव में परिणत हो गया था। भगवत्-भक्ति के लिए अप सब कुछ छोड़कर वे ब्रजभूमि में जाकर रहने लगे और विट्ठलनाथ के शिष्य हो गये।

उनके ही दोहों से यह भी ज्ञात होता है कि वे बादशाही वंश से सम्बन्धित थे--

''देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहि बादशाह वंश को, ठसक छाड़ि रसखान।।

विट्ठलनाथजी से शिक्षा लेने के बाद उन्होंने स्वाध्याय से संस्कृत भी पढ़ ली। श्रीमद्भाग का फारसी अनुवाद पढ़कर वे प्रेम-विभोर हो उठे और उन्होंने उसी विभोरावस्था में 'सुजान-रसखा की प्रेममयी कविताओं का कथन किया।

रचनाएँ :- रसखानि कृत दो पुस्तकों का उल्लेख मिलता है। वे दोनों पुस्तकें हैं- 'प्रे वाटिका' और 'सुजान-रसखानि'। 'प्रेम वाटिका' की रचना दोहा-छन्द में है और 'सुजान-रसखानि' कवित्त तथा सवैया का प्रयोग है। इसके अतिरिक्त उनकी दो अन्य पुस्तकों का उल्लेख भी है। नाग प्रचारिणी सभा की शोध रिपोर्ट के अनुसार इनकी एक पुस्तक का नाम 'राग-रत्नाकर' सिद्ध होता 'प्रेम-वाटिका' में उनकी प्रेम सम्बन्धी कविताएँ संगृहीत हैं और 'सुजान रसखानि' में कृष्ण सम्बन कविताएँ। 'सुजान-रसखानि' नामक कृति के विषय हैं-- कृष्ण, गोपिकाएँ, मुरली, गोचारण, ब्रजभू आदि।

भाव-पक्ष :- 'रसखानि' की कविताओं को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है-- (१) प्रे सम्बन्धी पद, (२) कृष्ण-भक्ति सम्बन्धी पद। वे प्रेम के क्षेत्र में स्वार्थ-भाव को नहीं देखना चाहते प्रेम को प्राप्त करने के बाद बैकुण्ठ और भगवान की चाह भी व्यर्थ हो जाती है। शुद्ध प्रेम के स्वरूप कथन करते हुए उन्होंने कहा है--

''जेहि पाये बैकुंठ अरु, हरिहू की नहिं चाहि।
सोई अलौकिक सुद्ध, सुभ, सरस सुप्रेम कहाहि।।''

किन्तु भक्ति की ओर मुड़ने के बाद वे लौकिक-प्रेम को छोड़कर अलौकिक प्रेम की मह बतलाने लगे। उन्हें तभी विषयानन्द की अपेक्षा ब्रह्मानन्द श्रेष्ठ लगा और वे इस श्रेष्ठता को सि करते हुए कह उठे--

''कै वे विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान।''

भक्ति-भावना :- रसखानि कृष्ण भक्त कवि थे। उन्होंने विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली थी, अतः उनकी भक्ति सखा-भाव की थी। जिस युग में उन्होंने साहित्य-रचना आरम्भ की, वह युग हिन्दी का स्वर्ण युग था। उस समय तक तुलसी और सूर की भक्ति विषयक कविताएँ सामने आ चुकी थीं। सूफीमत का भी प्रभाव लोगों पर पड़ चुका था। रसखानि भी प्रेम-भाव से प्रभावित होने के कारण लीला-पुरुषोत्तम कृष्ण की ही भक्ति में लगे। उन्होंने कृष्ण की रूप-माधुरी का अत्यन्त सुन्दर ढंग से कथन किया। कुण्डल और मोर-पखा से युक्त कृष्ण की मुसकान भरी मूर्ति का परिचय देते हुए उन्होंने लिखा है--

"कल कानन कुण्डल मोर-पखा उर पै बनमाल विराजति हैं।
मुरली कर मैं अधरा मुसकानि तरङ्ग महाछवि छाजति हैं।।
रसखानि लखै तन पीत पटा, सत दामिनि की दुति लाजति है।
बाँसुरी की धुनि कान परै कुल कानि हियो तजि भाजति हैं।।"

कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण के बाल रूप और उनके प्रेम-भाव का ही अधिक कथन किया है। 'रसखानि' को भी ये दो रूप ही प्रिय रहे। बाल कृष्ण का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा--

"धूरि भरे अति सेभित स्याम जू तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैजनी बाजति पीरी कछौटी।।
या छवि को रसखानि विलोकति, वारत काम-कला निधि कोटी।
काग के भाग कहा कहिये, हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।।"

उन्होंने कृष्ण को अहीर की छोहरियों के इशारे पर नाचते देखा है और राधा का पाँव पलोटते पाया है। संयोग-शृङ्गार का कृष्ण विषयक यह रूप मधुर-भक्ति की अद्भुत छटा उत्पन्न करता है--

"ब्रह्म मैं ढूढ्यो पुरानन गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।।
टेरत हेरत हारि पर्‌यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देख्यों दुरो वह कुञ्ज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन।।"

कृष्ण-भक्त कवियों ने यमुना, ब्रज आदि का वर्णन कर कुछ अभिलाषाएं भी व्यक्त कीं हैं। 'रसखानि' ने भी अपने आपको 'लकुटी' अरु 'कामरिया' वाले कृष्ण पर लुटाते हुए कामना की है--

"मानुस हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मझारन।।
पाहन हौं तौ वही गिरि को जो धर्‌यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब के डारन।।"

वे नन्द की गाय चराने के लिए आठो सिद्धियों और नवो निधियों तक को निछावर करने में भी प्रसन्नता का अनुभव करते थे। वे 'आँखिन सो' ब्रज-बाग को निहारना चाहते थे। हरि के हाथ से रोटी लेकर उड़ जानेवाले काग के भाग की भी सराहना उन्होंने की है। रूप की ओर आकर्षण होने के कारण उनकी कविता में वियोग शृङ्गार का कम दर्शन होता है। उनकी भक्ति अनूठी थी।

कला-पक्ष :- छन्द-विधान की दृष्टि से 'रसखानि' के भावों की अभिव्यक्ति मुख्यतः दोहा,

कवित्त और सवैया छन्दों के द्वारा हुई है। सवैया-रचना में उन्हें अद्भुत सफलता प्राप्त थी। इन छन्दों उन्होंने मुख्यतः शृङ्गार, वात्सल्य और शान्त रसों को पुष्ट किया है। कृष्ण-गोपी लीला के पद शृङ्गार-र पूर्ण हैं। बाल कृष्ण से सम्बन्धित पदों में वात्सल्य भाव का दर्शन होता है। कवि की ब्रज-भूमि अं कृष्ण-भक्ति से सम्बन्धित अभिलाषाएँ शान्त रस का परिचय देतीं हैं।

भाषा की दृष्टि से उनकी कविताओं का माध्यम ब्रजभाषा थी। उसमें किसी तरह की कृत्रिम नहीं है, वह स्वाभाविक प्रवाह से युक्त है। अरबी, फारसी और अवधी के प्रचलित शब्दों का चयन क उन्हें ब्रजभाषा के बीच सुन्दर ढंग से सजाने का कार्य 'रसखानि' ने बड़ी कुशलतापूर्वक किया है। 'ता अहीर की छोहरिया छछिया भर छाँछ पे नाच नचावत' में 'ताहि' शब्द अवधी भाषा का है। कहीं-क उनके पदों में राजस्थानी और अपभ्रंश के शब्द भी मिलते हैं। उनकी कविता में माधुर्य तथा प्रसाद गु का दर्शन होता है। शब्द-चयन, स्वाभाविक प्रवाह आदि गुणों के कारण उनके सवैयों में गेय तत्त्व मुख हो उठा है।

अलंकारों का बड़ा ही स्वाभाविक प्रयोग उनकी रचनाओं में मिलता है। उनके प्रिय अलंक थे--अनुप्रास, रूपक, उपमा, श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा आदि। इनका उदाहरण देखिए :-

अनुप्रास-- *"ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै"*

यमक-- *"जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जु करै मनमानी।*
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी।।"

श्लेष-- *"वे तो रसखानि अब दूर ते तमासो देखें,*
तरनि तनूजा के निकट नहिं आवहीं।।"

रूपक-- *"देख्यो दुरो वह कुंज-कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन"*

अन्य अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग 'रसखानि' की कविता में हुआ है। मुसलमान होते हुए भ रसखानि कृष्ण की भक्ति में जिस प्रकार तल्लीन हुए, वह उनकी श्रेष्ठ भक्ति-भावना का परिचायक है प्रेम की जैसी तन्मयता और उक्ति की जैसी चातुरी उनकी रचनाओं में देखने को मिलती है, वैसी अन कवियों में कम मिलती है। परवर्ती कवि घनानन्द और भारतेन्दु पर उनका प्रभाव पड़ा। उनक रचनाओं में भी 'रसखानि' - सी अभिलाषा का कथन है।

रसखानि की कविता के भावपक्ष और कलापक्ष दोनों पर विचार कर लेने के बाद य निःसंकोच भाव से कहा जा सकता है कि उनकी अनुभूति तीव्र थी और अभिव्यक्ति प्रबल थी। कृष्ण-भक्त कवियों में विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं और हिन्दी-जगत उनके काव्य-माधुर्य के लि उनके प्रति आभारी है।



सेनापति

जन्म-संवत् :-- १६४६ वि० मृत्यु-संवत् :-- १८वीं शताब्दी का प्रारम्भ

जीवन-वृत्त :- 'कवित्त-रत्नाकरकार' सेनापति के जीवन-वृत्तान्त के सम्बन्ध में वहिर्साक्ष्य के अभाव के कारण कुछ निश्चित रूप से कह सकना कठिन है। अन्तर्साक्ष्य के रूप में कवित्त-रत्नाकर की प्रथम तरङ्ग के पाँचवें छन्द पर विचार करने पर उनके सम्बन्ध में कुछ बातें ज्ञात होतीं हैं। इसके आधार पर उनके दादा का नाम परसुराम, पिता का नाम गंगाधर, गुरु का नाम हीरामनि दीक्षित तथा नगर का नाम अनूपशहर सिद्ध होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य विद्वानों के अनुमान के अनुसार उनका जन्मकाल लगभग संवत् १६४६ और मृत्युकाल १८वीं शताब्दी के प्रारम्भ में माना जाता है। उनकी कृतियों के रूप में दो पुस्तकों का उल्लेख मिलता है- (१) कवित्त-रत्नाकर (२) काव्य-कल्पद्रुम। कवित्त-रत्नाकर में सेनापति कृत सभी प्रकार की कविताएँ संगृहीत हैं। काव्य-कल्पद्रुम का केवल उल्लेख ही किया जाता है। वस्तुतः यह पुस्तक अप्राप्त है। कवित्त-रत्नाकर में कुल ३६६ छन्द हैं, जो पाँच तरङ्गों में विभाजित हैं। प्रथम तरङ्ग के ६६ कवित्तों में श्लेष का कथन है। द्वितीय तरङ्ग के ७६ छन्द शृङ्गार-मूलक हैं। तृतीय तरङ्ग के ६२ छन्द ऋतु-वर्णन से सम्बन्धित हैं। चतुर्थ तरङ्ग के ७६ छन्द रामायण-कथा के वर्णन से युक्त हैं और पाँचवीं तरङ्ग के ८६ पदों में भक्ति भावनाओं का पोषण हुआ है।

वर्ण्य-वस्तु :- वर्ण्य-विषय की दृष्टि से कवि सेनापति की कविताएँ ४ भागों में विभक्त की जा सकतीं हैं- (१) रीतिकालीन प्रवृत्ति की कविताएँ (२) ऋतु-वर्णन सम्बन्धी कविताएँ (३) शृङ्गार-मूलक कविताएँ (४) भक्ति-मूलक कविताएँ। रीतिकालीन प्रवृत्ति और शृङ्गार भावों के कथन में कवि ने मानवीय पक्ष को महत्त्व दिया है। ऋतु-वर्णन में उसने प्रकृति-निरीक्षण का परिचय दिया है और भक्ति विषयक कविताओं में ईश्वर-सम्बन्धी भावनाओं का कथन किया है। सेनापति मुख्यतः राम के भक्त थे, अतः उनकी भक्ति-मूलक कविताओं में राम-सम्बन्धी पदों का ही अधिक कथन हुआ है।

शृङ्गार-वर्णन :- रसराज शृङ्गार को सेनापति ने अन्य रसों की अपेक्षा अधिक प्रधानता दी है। उन्होंने शृङ्गार के दोनों भेदों-संयोग और वियोग- का कथन किया है। संयोग शृङ्गार का मर्यादित रूप सेनापति की कविताओं में मिलता है। सीता और राम जुवा खेल रहे हैं। उस समय सीता की 'पहुँची' में राम का और राम के आभूषण में सीता का प्रतिबिम्ब पड़ता है। संयोग के मधुर आनन्द में दम्पति डूब उठते हैं :-

"पहुँची के हीरन मैं दम्पति की झाँई परी,
चन्द बिम्ब मानौं मध्य मुकुर निकट कै।
भूलि गयौ खेल, दोऊ देखन परसपर,
दुहन के दृग प्रतिबिम्बन सौं अटक्यौ।।"

वियोग-शृङ्गार में पूर्वानुराग की स्थिति की अपेक्षा प्रवास की स्थिति का चित्रण करने में कवि का मन अधिक रमा है। वियोगिनी की अनमनी स्थिति का वर्णन देखिए--

"जौ तैं प्रान प्यारे परदेश कौं पधारे तौ तैं,
विरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमल नैनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है।।"

शृङ्गार-वर्णन में कवि ने प्रकृति की सापेक्षता स्वीकार की है। प्रकृति-सम्बन्धी ये पद प्रकृति-चित्रण के बीच स्थान पाते हैं, किन्तु उनकी सापेक्षता शृङ्गार के पक्ष में भी सिद्ध है।

अन्य रसों का कथन :- शृङ्गार के अतिरिक्त सेनापति ने अन्य रसों में भी कविताएँ की हैं वीर-रस की कविताओं में वर्णित ओज देखिए--

काढ़त निषंग तैं, न साधत सरासन मैं,
खैंचत चलावत न बान पेखियत है।
स्रबन मैं हाथ, कुण्डलाकृति धनुष बीच,
सुन्दर बसन इकचक लेखियत है।।
सेनापति कोप-ओप ऐन हैं अरुन नैन,
संबर दलन मैन तैं बिसेखियत है।
रह्यौ नत है कै अंग ऊपर कौं संगर मैं,
चित्र कैसौं लिख्यौ राजाराम देखियत हैं।।

युद्ध-वीर राम का जैसा चित्र इस पद में देखने को मिलता है, रीति-कालीन अन्य कविताओं में दुर्लभ है।

भयानक-रस की पदावली बदल-सी गयी है। राम की शक्ति को देखकर दिग्गज भी भयभीत हो उठते हैं--

"उद्दण्ड चण्ड भुजदंड भरि, धनुष राम करषत प्रबल।
टुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि लुट्टिय दिगंत दिग्गज विकल।।"

उन्होंने हास्य, वात्सल्य, रौद्र आदि रसों का भी कथन किया है, किन्तु शृङ्गार-रस को ही अधिक महत्त्व दिया है।

रीति-कालीन प्रभाव :- रीतिकालीन प्रभाव के रूप में सेनापति की कविताओं में अलंकारों का प्रचुर प्रयोग, गर्वोक्तियों का कथन, आश्रयदाता की प्रशंसा, नखशिख-वर्णन और ऋतुवर्णन का बाहुल्य दिखाई पड़ता है।

अलंकारों का प्रयोग :- सेनापति ने श्लेष का अधिक प्रयोग किया है। दाता और सूम दोनों की स्थिति का कथन श्लेष के प्रयोग से देखिए :-

"नाहीं नाहीं करैं थोरि माँगैं सब देन कहैं,
मंगन कौ देखि पट देत बार बार हैं।"

यहाँ 'पट' का श्लेषार्थ देखने योग्य है।

अनुप्रासों के स्वभाविक प्रयोग की दृष्टि से भी सेनापति की कविताएँ सुन्दर हैं :-

"खण्ड खण्ड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति मानौ सृङ्ग फटिक पहार के।
....
पूरब कौ भाजत हैं, रजत राजत हैं,
गग गग गाजत हैं गगन घन क्वार के।।"

यमक, रूपक आदि का प्रयोग भी सेनापति की कविताओं में है, किन्तु इनका प्रयोग भी श्लेष के साथ ही अधिक है। इनका अलग-अलग प्रयोग बहुत कम मिलता है। यमक का प्रयोग देखिए :-

"रस दै कै राखी सरबस जानि बार बार,
नारी गई छुटि जैसे नारी छूटि जात है।"

यहाँ 'नारी' का प्रयोग यमक के रूप में द्रष्टव्य है। नख-शिख वर्णन में स्वतंत्र उपमाओं का भी कथन कवि ने किया है।

गर्वोक्ति :- रीति-कालीन प्रभाववश अपने पांडित्य से सम्बन्धित गर्वोक्तियों का कथन सेनापति ने कई कविताओं में किया है। द्वै-अर्थक कविताओं को करने के कारण अपने को श्रेष्ठ कवि घोषित करते हुए उन्होंने कहा है--

सेवक सियापति को, सेनापति कबि सोई,
जाकी द्वै अरथ कविताई निर्वाह है।

आश्रयदाता की प्रशंसा :- कवित्त-रत्नाकर की पहली तरंग के ५६वें छन्द में राजा सूरबली की प्रशंसा करते हुए सेनापति ने राजा को कृष्ण-सा कह दिया है। उसके इस कथन में उसकी रीति-कालीन प्रवृत्ति ही प्रतिभासित होती है।

नख सिख और ऋतु वर्णन :- रीति-कालीन कवियों की परिपाटी में सेनापति ने नख-शिख वर्णन सम्बन्धी विभिन्न पदों का कथन किया है। देह-दीप्ति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं--

"चंद की कला सी, चपला सी, तिय सेनापति,
बालम के उर बीच आनन्द के बोति है।
जाके आगे कंचन मैं रंचक न पैये रुचि,
मनौं मनि मोती लालमाल आगे पोति है।।
देखी प्रीति गाढ़ी पै धैं तनसुख ठाढ़ी जोर,
जोबन की बाढ़ी खिन खिन और होति है।
गोरी देह झीने बसन मैं झलकत मानौं,
फानुस के अन्तर दिपति दीप-ज्योति है।।"

इसी प्रकार 'अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग, मीन' नेत्रों का भी कथन किया गया है। नायिका के झलकते हुए 'लाल लाल अधर रसाल' का तथा 'प्यारी के नयन असुवान बरसत, तासौं भीजत उरोज' का भी वर्णन हुआ है।

ऋतु-वर्णन की दृष्टि से सेनापति ने सभी ऋतुओं पर विचार किया है। यदि उन्होंने 'कातिक

की राति थोरी थोरी सिहराति' देखी है तो 'वृष कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि, ज्वालन के जाल विकराल बरसत' भी देखा है। जिस भादौं में, 'मेंह सघन बरसता' है और 'जोति चपला के चमके से चकचौंधी होती है, उसे भी अपने ऋतु-वर्णन में सेनापति ने स्थान दिया है और 'केतकि, असोक, नव चंपक, वकुल कुल' को प्रफुल्लित करने वाले बसंत को भी। ऋतु-वर्णन वियोगिनियों के वियोग-जन्य दुख को उद्दीप्त करने की दृष्टि से ही सापेक्षतापूर्ण है। बसंत वियोगिनी बाला को 'साँवरे की सूरत की सुरति कराकर बिहाल' कर डालता है।

भक्ति-वर्णन :- सेनापति की भक्ति-भावना का परिचय कवित्त-रत्नाकर में चतुर्थ और पंचम तरंगों से मिलता है। वे राम के उपासक थे और राम का शक्तिपूर्ण रूप उन्हें विशेष प्रिय था। उन्होंने भक्ति सम्बन्धी कुछ पद शिव और कृष्ण के सम्बन्ध में भी लिखे हैं किन्तु उनके आराध्य राम ही थे। 'देव दुख दण्डन, भरंत सिर मण्डन-रघुनाथ के खड़ाऊँ' की वन्दना उन्होंने की है। उन्होंने राम को पूर्ण ब्रह्म और 'भुवभार का हरनहार' माना है। 'गज खालधारी' शिव, 'राधा मन रंजन' कृष्ण, और 'रामपद संगिनी तरंगिनी' गंगा की भीं बन्दना में कई पदों का गान सेनापति ने किया हैं। कभी-कभी वे अपने भगवान पर खीझकर उन्हें उलाहना देते हुए कह उठते हैं :-

"आपने करम करि हौं ही निबहौंगे,
तौब हौं ही करतार करतार तुम काहे के।।"

इस पंक्ति में उनकी खीझ स्पष्ट है।

सेनापति की भाषा-शैली :- सेनापति शुद्ध ब्रजभाषा के कवि थे। उनकी भाषा में नित्य-प्रति के शब्दों का ही अधिक व्यवहार मिलता है। कहीं-कहीं भाषा में पूर्वी प्रयोग भी हैं --

"तन कौं वसन देत, भूख मैं असन, प्यासे,
पानी हेतु सन बिन माँगे आनि दीनौ है।।"

में 'सन' का प्रयोग ऐसा ही है। उनकी भाषा में प्रसाद और ओज गुणों की प्रधानता है। कहीं-कहीं उन्होंने 'जहान' आदि फारसी के शब्दों का भी प्रयोग किया है, किन्तु ये शब्द भी नित्य-प्रति के व्यवहार में आने वाले ही हैं। शब्द-शक्ति की दृष्टि से उनकी भाषा विशेषतः अभिधामूलक है।

उनकी कविताएँ कवित्त छन्द में अधिक लिखी गयीं हैं किन्तु वीर रस के कथन में छप्पय का भी प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं दोहा छन्द भी प्रयुक्त है। अपनी शैली और भाषा के प्रयोग से सेनापति को चित्र-विधान में विशेष सफलता मिली है।

सेनापति की कविताओं पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि सेनापति का भाषा पर अद्भुत अधिकार था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का सेनापति के सम्बन्ध में यह मत सर्वथा उचित है-- "भाषा पर ऐसा अधिकार कम कवियों का देखा जाता है, इनकी भाषा में बहुत कुछ माधुर्य ब्रजभाषा का ही है, संस्कृत-पदावली पर अवलम्बित नहीं। अनुप्रास और यमक की प्रचुरता होते हुए भी कहीं भी भद्दी कृत्रिमता नहीं आने पायी है।.... इनकी कविता बहुत ही मर्मस्पर्शिनी और रचना बहुत प्रौढ़ तथा प्राञ्जल है।" निश्चित ही शृङ्गार-मूलक मुक्तककारों में सेनापति का स्थान महत्त्वपूर्ण है।



बिहारी

जन्म-संवत् :-- १६५२ वि०

मृत्यु-संवत् :-- १७२० वि०

जीवन-वृत्त :- कविवर बिहारीलाल के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक रूप से कुछ जानने के लिए 'बिहारी-बिहार' नामक पद्यात्मक कृति का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है। 'रत्नाकर' द्वारा लिखे गये शोधपूर्ण निबन्ध भी बिहारी के जीवन पर प्रकाश डालते हैं। 'बिहारी-बिहार' में कवि के जन्म सम्वत् का कथन करते हुए एक दोहा कहा गया है :-

"सम्वत् जुग सर रस सहित भूमि रीति गिन लीन्ह।
कातिक सुदि बुध अष्टमी जन्म हमहिं विधि दीन्ह।।"

इस दोहा के आधार पर भूमि की संख्या १ रस की संख्या ६, सर की संख्या ५ और जुग की संख्या २ मानकर लोगों ने उनका जन्म संवत् १६५२ माना है। उनके पिता का नाम केशवराय था। कुछ लोग उनके पिता केशवराय और आचार्य केशवदास को एक ही मानते हैं ; किन्तु केशवराय और केशवदास दो भिन्न व्यक्ति थे।

"जनम ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुनाई आई सुघर, मथुरा बसि ससुराल।।"

के आधार पर उनकी जन्मभूमि ग्वालियर थी। बाद में वे बहुत दिनों तक अपनी ससुराल मथुरा में रहे, किन्तु अपमानित होने पर उन्हें यह स्थान छोड़ना पड़ा। जाति से वे धौम्य गोत्री माथुर चौबे थे। वे महाराज जयसिंह के आश्रित कवि थे। महाराज जब अपनी छोटी रानी के प्रेम-पास में बँधकर राज्य के प्रति उदासीन हो उठे थे तब कविवर बिहारी ने अन्योक्ति-मूलक एक पद लिखकर उन्हें कर्तव्य-ज्ञान कराया था।

"नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहि विकास इहि काल।
अली कली ही सौं बिंध्यौ आगे कौन हवाल।।"

अन्योक्ति-मूलक इस दोहे को पढ़कर राजा ने अपने कर्तव्य को समझा। कविवर बिहारीलाल ने दोहा छन्द में ही रचनाएँ कीं। बिहारी-सतसई' उनके द्वारा लिखित ७१६ दोहों का संग्रह है।

सतसई की परम्परा और बिहारी-सतसई :- संस्कृत साहित्य के 'अमरुक शतक' के प्रभाववश सतसई-रचना की ओर लोग प्रवृत्त हुए। 'आर्या सप्तशती' को विशेष ख्याति मिली, 'गाहा-सतसई' बहुत पहले ही प्रकाश में आ चुकी थी। इन्हीं सतसइयों तथा स्फुट मुक्तकों के प्रभाव में बिहारी-सतसई की रचना कविवर बिहारी द्वारा की गयी। इसके पश्चात् 'मतिराम सतसई', रामसहाय कृत 'राम सतसई', विक्रम शाह कृत 'विक्रम सतसई' आदि का भी दर्शन हुआ। सतसई की परम्परा में ही 'हजारा' का प्रचलन हुआ। रसनिधिकृत 'रतन हजारा' को विशेष ख्याति मिली। वर्तमान युग में वियोगी हरि द्वारा 'वीर सतसई' की भी रचना की गयी थी।

वर्ण्य-विषय :- बिहारीलाल के दोहों में शृङ्गार-रस का बाहुल्य है। 'बिहारी की कविता' कहने से प्रायः पाठक और श्रोता शृङ्गारमूलक कविताओं का ही अर्थ ग्रहण करते हैं। बिहारी ने शृङ्गार के अतिरिक्त नीति, भक्ति और वैराग्य सम्बन्धी दोहे भी रचे हैं, किन्तु उनकी प्रवृत्ति शृङ्गार-मूलक ही रही

है। इसीलिए 'शृङ्गार-रस के ग्रन्थों में 'बिहारी सतसई' को अत्यधिक ख्याति प्राप्त हुई है। शृङ्गार-मूलक इन कविताओं में प्रेम-वर्णन, ऋतु-वर्णन, नायिका-विचार, शिख-नख सम्बन्धी दोहे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। विभिन्न हाव-भावों का चित्रण करने के साथ ही शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों पर उन्होंने विचार किया है। दोहा जैसे छन्द में विभिन्न अन्तर्वृत्तियों का कथन करने के साथ व्यंग, उपदेश आदि का भी कथन उन्होंने इन दोहों के माध्यम से किया है।

रीतिकाल और बिहारी :- बिहारीलाल रीतिकाल के रीतिसिद्ध धारा के एकमात्र कवि सिद्ध होते हैं। उन्होंने आचार्यत्व की कामना कभी भी नहीं की, कभी भी लक्षणों को स्पष्ट करने का उद्देश्य लेकर उन्होंने लक्षण सम्बन्धी दोहे नहीं लिखे; किन्तु शृङ्गार के प्रवाह में उनके काव्य में विभाव, अनुभाव, सञ्चारी भावों के लक्षण तथा नायिका-भेद के लक्षण स्वतः ही उपस्थित हो गये हैं। उनके दोहों में कला-पक्ष को पर्याप्त स्थान मिला है किन्तु कला के लिए उन्होंने भाव की हत्या नहीं होने दी है। भाव और कला दोनों का समन्वित रूप उनके दोहों में देखने को मिलता है, इसीलिए वे रीतिसिद्ध कवि कहे जाते हैं।

"मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित द्रुति होय।।"

इस दोहा में यदि श्लेष का सुन्दर परिचय मिलता है तो भाव का भी उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है।

शृङ्गार-भावना और प्रेम-दर्णनः- संयोग शृङ्गार का वर्णन करते समय बिहारीलाल ने कहीं तो प्रेम का मर्यादित रूप दिखलाया है और कहीं उसका अत्यन्त निकृष्ट रूप। जहाँ संयोग का वर्णन करते हुए उन्होंने सुरति और विपरीत का कथन किया है, वह स्थल अमर्यादित हो उठा है; किन्तु जिन पदों में सात्विकता-समन्वित भावों का कथन है उनमें संयोग का सुन्दर रूप ही व्यक्त हुआ है। गर्भवती नारी की सुरति का कथन करते हुए अमर्यादित संयोग का परिचय बिहारी ने दिया है--

"दृग थिरकौंहें अधखुले, देह थकौहें ढार।
सुरति सुखित-सी देखियत, दुखित गरभ कै भार।।"

इसी प्रकार छिछले प्रेम का परिचय देते हुए उन्होंने उस नायिका का भी कथन किया है जिसकी गोद से बालक को लेने का बहाना कर नायक उसकी छाती के स्पर्श का सुख लेता है--

"लरिका लैबे के मिसन, लँगुर मो ढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी, छाती छैल छुवाय।।"

संयोग के कथन में सखियों से नायिका अपनी सुरति का भी कथन करती दिखायी गयी है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि बिहारी ने संयोग के चित्रण में नग्न शृङ्गार का ही कथन किया है। मर्यादित रूप में भी संयोग की स्थिति का कथन उन्होंने किया है--

"उड़ी गुड़ी लखि लाल की, अँगना अँगना माहि।
बौरी लौं दौरति फिरत, छुवत छबीली छाँह।।"

वियोग-शृङ्गार के कथन में बिहारीलाल ने पूर्वानुराग, प्रवास, मान आदि का वर्णन किया है। इस प्रसंग में नायिका-भेद का भी सुन्दर कथन हो गया हैं। यदि मान के प्रसंग में मानिनी का रूप चित्रित है तो प्रवास के वर्णन में प्रोषित-पतिका का। स्वकीया और परकीया नायिकाओं के साथ पर-स्त्री समागम करने वाले शठ-नायक का भी परिचय उन्होंने दिया है। पूर्वानुरागिनी नायिका का चित्र बिहारी के इस

दोहा में देखिए-

"नई लगन, कुल की सकुच, विकल भई अकुलाइ।
दुहूँ ओर ऐंची फिरै, फिरकी लौं दिन जाइ।"

इसी प्रकार 'सखी सिखवत मान विधि, सैननि वरजति बाल' में मान का और --

'ह्याँ ते ह्वाँ, ह्वाँ ते यहाँ, नेको धरति न धीर।'
'निसि दिन डाढ़ी-सौ रहे, बाढ़ी गाढ़ी पीर।।'

में प्रवास का सुन्दर परिचय दिया गया है।

"नख-रेखा सोहैं नई, अलसौहैं सब गात।
सौहैं होत न नैन ये, तुम कत सौहैं खात।।"

नायिका की यह फटकार स्पष्ट है। विहारी ने इसी प्रकार नायक-नायिका के विभिन्न भेदों का कथन किया है।

नेत्र के मिलने से प्रेम की स्थिति उत्पन्न होती है। बिहारीलाल ने "दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति" के द्वारा इस ओर संकेत किया है। सुन्दरी नायिका के गौर और श्याम दोनों ही रूपों पर विहारी ने रसिकों का मन मुग्ध होता दिखलाया है। गोरी नायिका का मुख इतना प्रदीप्त है कि उसकी आभा से सर्वत्र सदा शुक्ल-पक्ष-सा प्रकाश छाया रहता है और पक्ष-निर्णय के लिए पत्रा देखने की आवश्यकता हो जाती है--

"पत्रा ही तिथि पाइयत वा घर के चहुँ पास।
नित प्रति पुन्योई रह्यो आँगन ओप उजास।।"

काली नायिका के यौवन का स्वरूप भी देखिए --

"नारि सलोनी साँवरी, नागिन लौं डसि जाय।"

विहारीलाल ने अभिसारिकाओं का परिचय भी दिया है। सौन्दर्य का स्वरूप सदा परिवर्तनशील और नवीन मानते हुए उन्होंने नायिका का चित्र बनाने के लिए आये सभी कुशल चित्रकारों को असफल सिद्ध किया है--

"लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर।।"

बिहारी के प्रेम-वर्णन में स्वाभाविकता भी है और अतिशयोक्ति भी। पूर्वानुरागिनी नायिका का श्वाँस के साथ छ-सात हाथ इधर आना और छ-सात हाथ उधर जाना अतिशयोक्तिमूलक है, किन्तु 'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय' में हाव की स्वाभाविकता भी प्रशंसनीय है।

शिख-नख पद्धति पर सौन्दर्य का वर्णन बिहारी लाल ने बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। 'अनियारे दीरघ नयन' के साथ 'जेहि बस होत सुजान' वाले चितवन का कथन करते हुए उन्होंने 'कुटिल अलक', 'मन के बाँधन हारि जूरे', 'भाल लाल बिंदी', 'ठोड़ी-गाढ़', 'मुख-सुखमा', 'कुच उतंग गिरिवर गह्यो मीना-मैन-मवास', 'सूक्ष्म कटि परब्रह्म सी' आदि का भी अलग-अलग वर्णन किया है। सौन्दर्य-वर्णन में बिहारी की चित्रात्मकता भी अनुपम है। सद्यःस्नाता के रूप का वर्णन करते हुए उन्होंने अद्भुत चित्र प्रस्तुत किया है--

"विहँसति सकुचति सी दिए, कुच आँचर बिच बाँह।
भीजे पट तट को चली, न्हाय सरोवर माह।।"

ऋतु-वर्णन :- बिहारी लाल ने ऋतु-वर्णन और प्रकृति-वर्णन सम्बन्धी दोहों का भी बड़े सुन्दर ढंग से कथन किया है। इन वर्णनों से उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का बोध होता है। 'छकि रसाल सौरभ सने मधुर माधवी गंध' जैसी पंक्तियों में बसन्त का कथन कर बिहारी ने क्रम से अन्य छ ऋतुओं का भी कथन किया है। जेठ की दुपहरी देख छाँह भी छाँह चाहती है :-

"पैठि रही अति सघन बन बैठि सदन मन माँहि।
देखि दुपहरी जेठ की छाँहौं चाहति छाँह।।"

विरहिणियों को पावस का प्रथम पयोद जलाता हुआ दिखायी पड़ता है। शरद में 'रसिक रस-रास रमते' दिखायी पड़ते हैं, हेमन्त में 'कोक को सोक' होता है और 'ओक सब लोक सुख' पाते हैं। शिशिर में 'सूर्य' को 'चाँद' समझ चकोरी उसकी ओर देखने लगती है। ऋतु-वर्णन के साथ ही जल-बिहार, हिंडोला आदि का कथन भी बिहारी ने बड़ी सुन्दरता से किया है।

भक्ति-भावना तथा दार्शनिकता :- बिहारी वैष्णव भक्त थे। उन्होंने कृष्ण की भक्ति से सम्बन्धित विभिन्न दोहों का कथन किया है। आनन्द-दायिनी शक्ति राधा की वन्दना करते हुए उन्होंने उनसे भव-बाधा से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना की है--

"मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होइ।।"

वे 'विपति विदारनहार जदुपति' को ही अपनी सबसे बड़ी सम्पत्ति मानते हैं। 'हरि-नामै करि नाव' वे 'संसार-पयोधि' को तरना जानते हैं। भक्ति के क्षेत्र में कपट को वे स्थान नहीं देते। जब तक 'कपट-कपाट' नहीं खुल जाता 'मन-सदन' मे हरि किस 'बाट' से आ सकते हैं? बिहारी बाह्याडम्बर के विरोधी थे--

"जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाचे वृथा साँचे राचे राम।।"

मुँह लगे भक्त की सी भावना उनकी भक्ति में दिखायी पड़ती है।

"कौन भाँति रहिहै बिरद अब देखिबी मुरारि।
बींधे मोसों आइके, गीधे गीधहिं तारि।।"

जैसे दोहों से उनकी सखा-भावना की भक्ति का परिचय मिलता है।

बिहारी की भक्ति-भावना के साथ उनका दर्शन-ज्ञान भी कार्य करता रहा है। परब्रह्म को स्थूल-दृष्टि से देखना वे सम्भव नहीं मानते। उसे तो 'बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किए नीठि ठहराइ' के अनुसार वे बुद्धि और शब्द द्वारा ही पहचानते हैं। प्रतिबिम्बवादी दर्शन का कथन उनके इस पद में मिलता है--

"मैं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचों काँच-सो,
एकै रूप अपार प्रतिबिम्बित लखियत यहाँ।"

बिहारी की बहुदर्शिता :- कविवर बिहारी का ज्ञान केवल शृङ्गार और भक्ति के क्षेत्र में ही सीमित नहीं था। वे चित्रकला, वैद्यक, ज्योतिष आदि विभिन्न शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनकी रचनाओं में

उनके विविध विषयक ज्ञान का दर्शन होता है। उन्होंने नीतिज्ञ की तरह नीति सम्बन्धी विभिन्न दोहे भी लिखे हैं :-

"कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचौ चढ़ै, अन्त नीच को नीच।।"

ऐसे ही अन्य दोहों के माध्यम से उन्होंने नीति की शिक्षा दी है। 'मङ्गल-विन्दु-सुरङ्ग, ससि मुख, केसर-आड़-गुरु' जैसी पंक्तियों से उनके ज्योतिष-शास्त्र और 'जरी विषय जुर ज्याइए, आय सुदरसन देहु' के द्वारा उनके वैद्यक शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान का परिचय मिलता है। 'जा तन की झाँई परै स्याम हरित दुति होय' में वैद्यक-शास्त्र तथा चित्रकला के ज्ञान का समावेश है। इस प्रकार बिहारी बहुदर्शी और विविध ज्ञान-सम्पन्न कवि तो थे किन्तु उनका विविध विषयों से सम्बन्धित ज्ञान कितना गहरा और गम्भीर था, यह कहा नहीं जा सकता है।

कला-पक्ष :- (भाषा)-- बिहारीलाल ने परिमार्जित ब्रजभाषा में ही अपने भावों को अभिव्यक्त किया है। भाषा पर अधिकार होने के कारण ही दोहा जैसे छोटे छन्द में भी अमित भावों को भरने में वे समर्थ रहे हैं। उनकी इसी शक्ति के कारण कोई उन्हें 'गागर में सागर' भरने वाला कहता है तो कोई उनके दोहों को 'नावक के तीर' रूप में मानता है। उनकी भाषा में चित्र-विधान की अद्भुत शक्ति थी, इसीलिए नायिकाओं का चित्र खड़ा करने में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। कहीं-कहीं उन्होंने बुन्देलखण्डी-'रीझबों', 'जानबी' आदि- प्रयोग भी किये है। फारसी तथा अरबी के शब्दों का व्यवहार भी उनकी कविता में हुआ है। ऐसे प्रयोग भाव की सुरक्षा के लिए ही किये गये हैं। इनके प्रयोग से भाव की प्रेषणीयता को गति मिली है। कहीं-कहीं उन्होंने शब्दों को विकृत भी किया है जैसे 'मोक्ष' को 'मोख' लिखना।

अलंकार :- बिहारीलाल की कविताओं में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग स्वभावतः हो गया है। यमक, श्लेष, उदाहरण, स्मरण, अन्योक्ति आदि विभिन्न अलंकारों का जैसा स्वाभाविक प्रयोग बिहारी में दीखता है, वैसा रीतिकालीन अन्य कवियों में कम दिखायी पड़ता है। कुछ अलंकारों को देखिए :-

यमक-- तोपर बारौं उरवसी सुन राधिके सुजान।
तू मोहन के उरबसी है उरवसी समान।।

श्लेष-- अजौं तर्‌योना ही रह्यो श्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास बेसर लह्यो बस मुकुतनि कै संग।।

स्मरण-- सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन अजहूँ है जात वै वा जमुना के तीर।।

असंगति-- दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुर्जन हिये दई. नयी यह रीति।।

इसके अतिरिक्त वक्रोक्ति, उत्प्रेक्षा, मीलित, व्यतिरेक आदि विविध अलंकारों का परिचय भी बिहारी के दोहों से मिलता है।

कविवर बिहारीलाल कृत 'बिहारी सतसई' के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि प्रेम की सूक्ष्म स्थितियों का कथन बिहारी ने बड़ी कारीगरी से किया है। काव्य-कुशलता की दृष्टि से वे प्रथम-श्रेणी के कवियों की पंक्ति में स्थान पाने के अधिकारी माने गये हैं।



महाकवि 'देव'

जन्म-संवत् :-- १७३० वि० मृत्यु-संवत् :-- १८२५ वि०

जीवन-वृत्त :- महाकवि देव का वास्तविक नाम देवदत्त था। 'देव' उपनाम से वे कविता किया करते थे। जाति की दृष्टि से उन्हें कुछ लोग कान्यकुब्ज ब्राह्मण और कुछ लोग सनाढ्य ब्राह्मण मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण मानते थे। अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य के अभाववश उनकी जाति-गोत्र का निश्चित कथन नहीं हो सका है। 'देव' इटावा के निवासी थे। स्वयं इतने स्वाभिमानी थे कि किसी एक नरेश से सन्तुष्ट न हो सके। इसीलिए कई आश्रयदाताओं के आश्रय में उन्हें रहना पड़ा। 'देव' की कृतियों के सम्बन्ध में भी कोई निश्चित निर्णय नहीं हो सका है। 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार 'देव' के ग्रन्थों की संख्या ७२ और मिश्रबन्धुओं के अनुसार ५२ मानी गयी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके २५ ग्रन्थों को मान्यता दी है। इनकी रचित पुस्तकों में १८ पुस्तकें तो प्राप्त हैं किन्तु शेष अप्राप्त हैं। अनुपलब्ध ग्रन्थों में ९ पुस्तकों का नाम ज्ञात हो सका है।

उपलब्ध पुस्तकें :- (१) भाव विलास (२) अष्टयाम (३) भवानी विलास (४) प्रेमतरंग (५) कुशल विलास (६) जाति विलास (७) रस विलास (८) सुजान-विनोद (९) प्रेम चन्द्रिका (१०) शब्द रसायन (११) राग रत्नाकर (१२) देव चरित्र (१३) देव माया प्रपञ्च (१४) जगद्दर्शन पचीसी (१५) आत्मदर्शन पचीसी (१६) तत्त्वदर्शन पचीसी (१७) प्रेम पचीसी (१८) सुखसागर तरङ्ग।

अनुपलब्ध पुस्तकें :- (१) रसानन्द लहरी (२) प्रेम-दीपिका (३) सुमिल विनोद (४) राधिका विलास (५) पावस विलास (६) कक्ष-विलास (७) नखशिख दर्शन (८) नीति शतक (९) वैद्यक ग्रन्थ।

देवकृत 'भाव-विलास', 'रस विलास', 'प्रेम चन्द्रिका' और 'शब्द रसायन' का रीतिकालीन ग्रन्थों में असाधरण स्थान है।

आचार्य रूप में कवि देव :- महाकवि देव ने कई एक रीतिग्रन्थों का प्रणयन किया। कहीं-कहीं उन्होंने रीति के सम्बन्ध में मौलिक बातों का भी कथन किया है। उन्होंने काव्य के विभिन्न अङ्गों पर विचार किया है, किन्तु रस के सम्बन्ध में उनकी विवेचना महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने शृङ्गार रस को सब रसों का मूल माना है। अलंकारों के विवेचन में देव ने दण्डी और केशवदास का ऋण स्वीकार किया है। 'भाव विलास' पर आचार्य दण्डी का प्रभाव स्पष्ट है। 'शब्द-रसायन' भी अलंकार ग्रन्थ ही है। उसमें ८४ अलंकारों का कथन हैं। उन्होंने उपमा के लगभग ५० भेद किये हैं। नायक-नायिका भेद के निरूपण में उन्होंने विभिन्न देश और जाति की नायिकाओं-दर्जिन, धोबिन आदि- का वर्णन भी किया है। देव ने शब्द-शक्तियों पर भी विचार किया है, किन्तु उनके विवेचन में अवैज्ञानिकता होने के कारण इस सम्बन्ध में अनेक भ्रम उत्पन्न हो गये हैं। छन्दों के क्षेत्र में देव ने एक नये छन्द की उद्भावना की जो उन्हीं के नाम के आधार पर 'देव-घनाक्षरी' की संज्ञा से विभूषित है। इसप्रकार काव्य के विभिन्न अंगों पर उन्होंने विचार किया। मौलिक विचार देने पर भी उनका आचार्यत्व बहुत मान्य नहीं हो सका। अधिकांश स्थलों पर उनमें उलझन और भ्रम की स्थिति है।

देव का शृङ्गार-वर्णन :- देव ने शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों को अपने काव्य में स्थान दिया है। नायिका-भेद और रूप-चित्रण के प्रसंग में उन्होंने संयोग-शृङ्गार का कथन किया है। रूप का चित्र देते समय उन्होंने बाह्य रूप के साथ ही नायिका के हृदयगत-सौंदर्य का भी आकलन किया है--

"माखन सों तन, दूध सों जोबन, है दधि तें अधिकै उर ईठी।

जा छवि आगे छपाकर छाछ, समेत सुधा बसुधा सब सींठी।।
नैनन नेह चुवै कहि 'देव', बुझावत बैन वियोग अँगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी कहे, अहो क्यों न लगे मनमोहनै मीठी।।"

देव ने प्रेम से सम्बन्धित कई पद कहे हैं और पर-नारी संयोग को 'जोगहू ते कठिन' कहा है। संयोग का सुन्दर रूप देखिए--

"दोउन को रूप गुन दोऊ बरनत फिरै,
घर न घिरात, रीति नेह के नई नई।
मोहि मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
राधा मन मोहि मोहि मोहन मई भई।।"

विरह-वर्णन में देव ने पूर्वानुराग, प्रवास और मान तीनों का ही सुन्दर कथन किया है। 'साँसन हीं सों समीर गयो, अरु आँसुन ही सब नीर गयो ढरि' जैसी पंक्तियों में पूर्वानुरागिनी नायिका अपने पंचतत्वों को क्रम से नष्ट होता देखती है। प्रवास-काल में नायिका की स्थिति 'सूखे जल सफरी ज्यों' हो जाती है और वह 'लौटि लौटि परत करौट खाट पाटी लै लै, सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति' दिखाई पड़ने लगती है। 'मानिनी' ने मान में 'सिसिक सिसिक निसि खोइ रोय' और तब प्रात हो पाया तथा बड़े- बड़े नैनन आँसू भर-भर कर ढरते हुए दिखायी पड़े। देव ने वियोगमयी नारी की हर स्थिति का कथन किया है।

नायिका के नख-शिख का वर्णन भी 'देव' ने किया है। कहीं उन्होंने नायिका की वेणी का कथन किया है तो कहीं नायिका के रूप की राशि को निहारती हुई ठगी सी ठकुराइन को देखा है। नायिका-भेद के क्षेत्र में उन्होंने स्वकीया नायिका पर अधिक विचार किया है। स्वकीया अपने प्राणनाथ के साथ रहना चाहती है। उसकी इस कामना का कथन बड़े ही सुन्दर ढंग से देव ने किया है--

"संग ही संग बसौं उनके, अँग अंगन देव तिहारे लुरी ये।
साथ ही राखिये नाथ उन्हें, हम हाथ में चाहत चार चुरी ये।।"

प्रोषित-पतिका को 'कंत बिन वासर बसन्त अन्तक' सा लगता है। इसी प्रकार उन्होंने अनेक अन्य प्रकार की नायिकाओं का वर्णन भी किया है। अहीरिन, दर्जिन, कहारिन आदि के रूप, वृत्ति का कथन कर देव ने अपने अनुभव और अपनी सूक्ष्म-दृष्टि का परिचय दिया है

प्रकृति-वर्णन :- कवि देव ने प्रकृति को उद्दीपन और आलंबन रूप में स्वीकार किया है। 'डार द्रुम पलना विछौना नव पल्लव से, सुमन झँगूला सोहे, कर करताली दै' में बसन्त का आलम्बन रूप में ही कथन हुआ है। ऋतु-वर्णन में तो देव ने प्रकृति का चित्र-सा ही प्रस्तुत कर दिया हैं। पावस-वर्णन में पावस का चित्र देखिए--

"सुनि कै धुनि चातक मोरनि की, चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों।
अनुराग भरे हरि बागनि मैं, सखि रागत राग अचूकनि सों।।
कवि देव घटा उनई जु नई, बनभूमि भई दल दूकनि सों।
रंगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकनि सों।।"

बसन्त में बहने वाला त्रिबिध पवन उद्दीपन रूप में देह को दुगुना दाहक लगता है। बन के बौरते नायिका बौरी हो जाती है और कोकिल की धुनि से डरने लगती है। वियोग में प्रकृति का सुखकारी रूप

भी दुखदायक हो जाता है। वह वियोग की आग को प्रदीप्त ही करता है, अतः उद्दीपन रूप ही है।

भक्ति-भावना :- कवि देव भक्ति-भावना के क्षेत्र में राधाकृष्ण के उपासक थे। राधाकृष्ण की सौन्दर्य-सुधा का पान करना उन्हें भाता था। उन्होंने यदि 'पाँयन नूपुर मंजु बजैं, कटि किंकिनि मैं धुनि की मधुराई' के द्वारा लीला पुरुषोत्तम कृष्ण की वन्दना की है तो उस जगमोहनी राधे के पाँव भी पड़े हैं जो "गुन बाँधे कर की पुतरी ज्यों तीनहुँ लोक" को नचाती रहती हैं। 'सूनौ कै परम पदु, ऊनौ कै अनन्त मद' जैसी पंक्ति से आरम्भ होनेवाली कविता में 'पारावार पूरन अपार पर ब्रह्मराशि' को जशोदा की गोद में दिखाकर देव ने अपनी सगुणोपासक भक्ति का परिचय दिया है। भक्ति के क्षेत्र में बाह्याडम्बर को देव भी अस्वीकार करते थे। भगवान को विश्वास के वशीभूत मानकर उन्होंने बाह्याडम्बर का खण्डन किया है--

"कथा मैं न कंथा मैं न तीरथ के पंथा मैं,
पोथी मैं न पाथ मैं न साथ की बसीति मैं।
जटा मैं न मुंडन; न तिलक त्रिपुण्डन; न नदी,
कूप कुण्डन अन्हान दान रीति मैं।।"

कला-पक्ष (भाषा शैली) :- आनुप्रासिक पदावली से पूर्ण शुद्ध ब्रजभाषा में देव ने अपनी कविताओं का कथन किया। भाषा में प्रसाद गुण का समावेश होने के कारण कर्ण-कटु प्रयोग बहुत कम हुए हैं। शैली की दृष्टि से उनकी रचनाएँ कवित्त और सवैया छन्द में अधिक लिखी गयीं हैं। उनमें चित्र-विधान की पूर्ण क्षमता थी। सरोवर में स्नान कर भींगे वस्त्र से युक्त सुन्दरी का तट की ओर आना चित्रमय भाषा में व्यक्त है, देखिए : --

"पीत रङ्ग सारी गोरे अंग मिलि गई देव
श्रीफल उरोज आभा आभासै अधिक-सी।
नीबी उकसाय, नैकु नैनन हँसाय हँसि,
ससि-मुखी सकुचि सरोवर तें निकसी।।"

अलंकार परिचय :- आचार्यत्व के प्रदर्शन के लिए जहाँ देव ने अलंकारों का बलपूर्वक कथन किया है वहाँ कविता की श्री धूमिल पड़ गयी है; किन्तु जहाँ ये अलंकार स्वाभाविक रूप में प्रयुक्त हैं, वहाँ कविता का सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। 'अनुप्रास' उनको बहुत प्रिय था। उनकी कविताओं में उपमा, रूपक, श्लेष, यमक, उत्प्रेक्षा आदि विभिन्न अलंकारों का प्रयोग है।

उपमा -- *"आरसी से अम्बर मैं आभा सी उज्यारी लागै।*
प्यारी राधिका को प्रतिबिम्ब सों लगत चंद।।"
यमक -- *"प्रान से प्रानपति सों निरंतर अंतर अंतर पारत है री।'*
अनुप्रास -- *"प्यारी के प्रान समेत पियो परदेश पयान की बात चलावै।"*

देव की कविताओं में मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है।

कवि देव की कविता की वर्ण्य-वस्तु और कला पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उनकी प्रारम्भिक कविताओं में यौवन का उन्माद और शृङ्गारिकता का प्राचुर्य है, किन्तु क्रम से उनमें संयम आता गया है। रीतिकाल के कवियों में उनका गौरवपूर्ण स्थान है।



देव-बिहारी

देव और बिहारी दोनों ही रीति-काल के श्रेष्ठ कवि थे। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा निरूपित रीति-कालीन विभिन्न धाराओं में इन कवियों का स्थान निर्णय करने पर देव रीतिबद्ध धारा के कवि सिद्ध होते हैं और बिहारी रीतिसिद्ध धारा के। रीतिकाल में होने के कारण इन दोनों ही कवियों का साहित्य आश्रय-दाताओं के लिए लिखा गया। जीवन के अधिकांश भाग को इन दोनों ही कवियों ने शृङ्गार-भाव के पोषण में लगाया। वृद्धावस्था में ही इनकी रचनाएँ भक्ति-भाव-समन्वित हुईं।

बिहारी और देव को लेकर हिन्दी के आलोचना-साहित्य में पर्याप्त वाद-विवाद हुआ है। पं० पद्मसिंह शर्मा और लाला भगवानदीन बिहारी को श्रेष्ठ मानते थे, किन्तु मिश्र-बन्धुओं ने देव को बिहारी से ऊँचा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। देव के समर्थन में आलोचकों ने कहा कि बिहारी ने केवल एक पुस्तक 'बिहारी सतसई' का ही प्रणयन क़िया है और देव ने ५२ पुस्तकों का, जिनमें २६ उपलब्ध भी हैं। इसी प्रकार विहारी के समर्थकों का कहना है कि बिहारी अपनी एक पुस्तक को लिखकर भी अधिक लोक-प्रिय हो गये हैं, इसलिए वे श्रेष्ठ हैं।

देव और बिहारी दोनों ही कवियों ने शृङ्गार का अधिक कथन किया है। बिहारी की रचनाओं में मुख्यतः शृङ्गार-रस के दोहे हैं और अल्प-संख्या में ही भक्ति और नीति के दोहे मिलते हैं। देव ने भी शृङ्गार वर्णन अधिक किया है, किन्तु आचार्यत्व की ओर विशेष प्रवृत्ति होने के कारण उन्होंने अन्य रसों का भी परिचय दिया है। इस प्रकार व्यापकता की दृष्टि से देव ऊँचे ठहरते हैं किन्तु शृङ्गार की सूक्ष्म भावनाओं की व्यंजना बिहारी में ही अधिक है।

शृङ्गार-वर्णन में बिहारी और देव दोनों ही कहीं-कहीं अश्लीलता का परिचय देते दिखायी पड़ते हैं किन्तु इस परिचय में भी बिहारी ने सांकेतिकता का आश्रय लिया है, जब कि देव ने वाच्य रूप में ही उसका कथन कर दिया है। इसी वाच्य रूप के कारण देव की कविताओं में नग्न काम-भावना का उद्वेग-वर्द्धक वर्णन अधिक मिलता है। कुलटा का वर्णन सांकेतिक ढंग से बिहारीलाल ने क़िया है--

"खेलन सिखए अलि भले चतुर अहेरी मार।
क़ानन-चारी नैन-मृग नागर नरन सिकार।।"

देव ने इसी कुलटा का चित्र इतने नग्न रूप में उपस्थित किया है कि वह चित्र साहित्य का पोषक न होकर काम-शास्त्र का पोषक हो गया है--

"छोरि दुकूल, सकोरि कै अंग, मरोरि कै बारन हार न छूटे।
मीड़ि नितम्बहि, पीड़ि पयोधर, दाबत दन्त रदच्छद फूटे।।
ज्यों कररी कर केलि करै, निकरै न कहूँ कुल सों किन टूटे।
मानहि कौन सुखे जुवती जग, जो न जुवा दिन-जामिनी जूटे।।"

देव का वर्णन निश्चित ही अनौचित्यपूर्ण लगता है। इस प्रकार के पदों को देखकर यह कहा जा सकता है कि देव स्थूल-चित्रों का अच्छा अंकन करते थे, किन्तु भाव-चित्रों के कथन में बिहारी ही श्रेष्ठ थे। अनुभाव वर्णन में तो बिहारी अद्वितीय रहे हैं :-

"बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हँसै, दैन कहै नटि जाय।।"

इस छोटे से दोहे में हाव-भाव का जैसा परिचय बिहारी ने दे दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

बिहारी की रचनाओं में अपने को आचार्य सिद्ध करने का मन्तव्य नहीं दिखायी पड़ता। इसीलिए बिहारी ने लक्षणों को गिनाने का प्रयत्न नहीं किया। देव आचार्यत्व के चक्कर में पड़ गये। उन्होंने लक्षणों के कथन और सिद्धान्तों के निरूपण में अपनी काव्य-प्रतिभा का उपयोग किया। कुछ लोग इसीलिए देव को श्रेष्ठ सिद्ध करते हैं, किन्तु देव की कविताओं में आचार्यत्व अत्यन्त क्षीण रूप में ही प्रकट हो सका है। इसके विपरीत आचार्यत्व की कामना न करते हुए भी बिहारी की कविताओं में कई लक्षणों का बड़ा सुन्दर परिचय मिल गया है। नायिका-भेद, ऋतु-वर्णन आदि से सम्बन्धित उक्तियाँ तो बिहारी को इस क्षेत्र में आचार्य की कोटि में ही लाकर खड़ी कर देती हैं।

मनोवैज्ञानिक चित्रण की दृष्टि से बिहारी की कविताएँ बेजोड़ हैं। यदि विरह-वर्णन में उनकी ऊहात्मक उक्तियाँ हास्यास्पद हो उठी हैं तो विरह वर्णन में उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि महत्त्वपूर्ण भी सिद्ध हुई है।

उदाहरण (१) *"आड़े दै आले वसन जाड़े हू की राति।*
साहसु करि सनेह बसु सखी सबै ढिग जाति।।"

उदाहरण (२) *"इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरज्योही नाहिं।*
देखै बनै न देखते, बिन देखै अकुलाहिं।।"

कवि देव ने भी मनोवैज्ञानिकता का परिचय दिया है, किन्तु उनकी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बिहारी की दृष्टि अधिक पैनी है।

प्रकृति को उद्दीपन रूप में ही देव ने भी स्वीकार किया है और बिहारी ने भी। परम्परा से प्राप्त कवि-प्रसिद्धियों का आश्रय प्रकृति-चित्रण के लिए इन दोनों ही कवियों ने ग्रहण किया है; किन्तु प्रकृति-चित्रण में भी रूपकों की योजना के कारण बिहारी देव से बाजी मार ले गये हैं। कवि-रूढ़ि से हटकर बिहारी ने वायु को हाथी का रूपक प्रदान करते हुए कहा है--

"रनित भृंग घंटावली, झरति दान मधु नीर।
मन्द मन्द आवत चल्यो कुञ्जर कुञ्ज समीर।।"

देव का बसन्त वर्णन भी अत्यन्त सुन्दर है, किन्तु उसमें कवि-परम्परा से मुक्त रहने की स्थिति नहीं है--

"मदन महीपं जू को बालक बसन्त ताहि।
प्रातहि जगावत गुलाब चटकारी दै।।"

इसमें चित्र और मूर्तविधान अत्यन्त सुन्दर है, किन्तु उक्ति की नवीनता नहीं है।

बिहारी और देव दोनों ही ब्रजभाषा के पंडित थे। मुहावरे का प्रयोग दोनों ही कवियों ने किया है किन्तु बिहारी में सामासिकता अधिक है। देव में शब्दालंकार के कारण सरसता अधिक है किन्तु बिहारी में अर्थालंकार की बहुलता के कारण कवित्व अधिक है। बिहारी में उर्दू के शब्दों का अधिक प्रयोग है किन्तु देव ने इन शब्दों के प्रयोग में सतर्कता बरती है। कविता के किसी पक्ष को देव ने अधिक सँवारा है तो किसी को बिहारी ने। निश्चित ही ये दोनों ही हिन्दी के अमर कवि हैं।

❖❖❖

'भूषण'

जन्म-संवत् :-- १६७० वि०

मृत्यु-संवत् :-- १७७२ वि०

जीवन-वृत्त :- 'भूषण' उपनामधारी कवि के वास्तविक नाम के सम्बन्ध में अभी कोई निश्चित निर्णय नहीं हो सका है। उनके जन्म-संवत्, जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी विभिन्न मत हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार कवि 'भूषण' का वास्तविक नाम मनिराम था। पं० भगीरथ प्रसाद दीक्षित ने इसी मत को स्वीकार किया है। वे कानपुर जिला स्थित त्रिविक्रमपुर निवासी श्री रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। उनके तीन भाई थे, जिनमें चिन्तामणि और मतिराम को कवि रूप में विशेष ख्याति मिली। उनके तीसरे भाई जटाशंकर की रुचि काव्य-रचना की ओर थी, किन्तु अपने अन्य भाइयों की तरह वे ख्याति अर्जित नहीं कर सके। वे काश्यप-गोत्रीय कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके जन्म-संवत् के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनका जन्म-संवत् १६७० वि० माना है, श्री शिवसिंह सेंगर के अनुसार उनका जन्म-संवत १७३८ माना जाता है और मिश्रबन्धुओं के अनुसार उनका जन्म १६७२ वि० में प्रमाणित होता है। आचार्य शुक्ल के मत को ही अधिक मान्यता मिली है।

'भूषण' जी अपनी बाल्यावस्था से ही बड़े स्वाभिमानी थे। किंवदन्ती है कि एक बार भोजन करते समय उन्होंने अपनी भाभी से नमक माँगा। उनकी भाभी ने इस पर ताना देते हुए कुछ कहा। इससे उनका स्वाभिमानी मन विक्षुब्ध हो उठा और वे खाना छोड़कर उठ गए तथा घर से अलग हो गए। इसी स्वाभिमान के कारण वे दरबारी कवियों की तरह किसी भी नरेश की कृपा के इच्छुक न हो सके। वे तो गुणों पर रीझकर केवल दो नरेशों के यशगान में लगे और वे दो नरेश थे- वीर शिवा और बहादुर छत्रसाल। पहले वे चित्रकूट के राजा हृदयराम के पुत्र रुद्रराम सोलंकी के दरबार में गये। वहीं उन्हें 'कविभूषण' की उपाधि मिली। इसके बाद कई राजाओं के आश्रय में वे रहे पर स्वाभिमानी होने के कारण उनकी किसी से बनी नहीं और अन्त में वे शिवाजी के दरबारी कवि हुए। उन्हें शिवाजी और छत्रशाल ने ही प्रभावित किया और उनसे प्रभावित होने के कारण ही भूषण को सोचना पड़ा :-

''सिवा को बखानौं कि बखानौं छत्रसाल को।'

भूषण की मृत्यु संवत् १७७२ में हुई।

रचनाएँ :- भूषण की ६ पुस्तकों का उल्लेख किया जाता है :- (१) शिवराज़-भूषण, (२) शिवा-बावनी, (३) छत्रसाल दशक (४) भूषण उल्लास, (५) दूषण उल्लास, (६) भूषण हजारा। इन कृतियों में प्रथम तीन तो उपलब्ध हैं और शेष का केवल नामोल्लेख ही मिलता है।

रीतिकाल और भूषण :- रीतिकालीन कविता में भाव की दृष्टि से शृङ्गार को प्रधानता मिली है। भूषण की रचना में शृङ्गार रस को लगभग नहीं-सा स्थान मिला है, फिर भी इन्हें रीतिकाल के कवियों में रीतिबद्ध शाखा का कवि माना जाता है। कला-पक्ष में रीति को मान्यता देने के कारण ही इस काल को रीतिकाल कहा गया। भूषण में भी रीति-परम्परा का पूर्ण निर्वाह मिलता है, अतः उनकी कृतियों को भी रीतिकाव्य के अन्तर्गत स्थान मिला। भाव की दृष्टि से वीर रस को पुष्ट करने पर भी उन्होंने 'शिवराज भूषण' जैसे लक्षण-ग्रन्थ की रचना की। इस कृति में 'अलंकारों' के लक्षण दोहों में देकर फिर वीर रस पूर्ण कवित्तों के बीच उन्हें उदाहरण रूप में व्यक्त किया गया है। लक्षण-ग्रन्थ की ओर दृष्टि होने के कारण ही उन्हें रीतिबद्ध धारा का कवि माना जाता है। रीतिकालीन प्रभाव के कारण

ही उनकी रचनाओं में कुछ शृङ्गार रस के भी पद आ गए हैं :-

"और के धाम में स्याम बसै सिगरी रतिया तिय जाग बिताई।
आजु सखी लखि लालन सों हठ सी बतियाँ करिहौं कठिनाई।।
आयो हरी कवि भूषण भोर तों दूषन देन को है ढिग ठाई।
राखि उसासि कही न कछू अँसुवा जल सों अखियाँ भरि आई।।"

किन्तु शृङ्गारमूलक ये भाव अत्यन्त अल्प संख्या में ही उनकी रचनाओं में मिलते हैं। वे मुख्यतः वीर रस के कवि थे और वीर रस के साथ ही रौद्र-रस भी उनकी कविताओं में व्यंजित है; किन्तु लक्षणों के कथन और रीति-परम्परा के पालन के कारण वे रीतिकाल के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

वर्ण्य-विषय :- छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल के चरित्रों को ही भूषण ने अपने काव्य का विषय बनाया है। इतिहास प्रसिद्ध इन दोनों नरेशों ने अपने युग के अन्याय-भाव को दबाया था। इन्होंने हिन्दुओं के हिन्दुत्व और राष्ट्र की राष्ट्रीयता को रक्षित रखने का प्रयत्न किया था। राष्ट्र-प्रेम, हिन्दुत्व-प्रेम, नैतिक आदर्श आदि को मान्यता देने वाले कवि भूषण ने अपने आदर्श के अनुरूप इन दो चरित्रों को ही चरित्र-नायक बनाकर वीर-रस पूर्ण कविताएँ लिखीं। कभी वे 'सिवा' के 'समशेर' की, और कभी छत्रसाल की 'बरछी' की प्रशंसा करते थे। कभी वे 'सिवा' को बखानते थे और कभी छत्रसाल को।

वीर भावना :- जब रीतिकालीन कवियों ने धन के लोभ में पड़कर अपने आश्रयदाताओं की संकीर्ण आमोदमयी वृत्ति को पुष्ट करना ही अपना धर्म मान लिया था, तभी भूषण कवि ने वीर-रस की कविताएँ लिखकर अपने आश्रयदाताओं को कर्म की प्रेरणा दी थी, उन्हें अन्याय के दमन और न्याय के समर्थन के लिए उत्प्रेरित किया था और उनको कर्तव्य का ज्ञान कराया था। उनकी लेखनी ने निराश व्यक्तियों में आशा का संचार कर स्वतन्त्रता का भाव भर दिया। उनकी वीर-भाव पूर्ण कविताओं को सुनकर मन उत्साहित हो उठता है। उसमें ओज है, दर्प है और सोयी हुई शक्ति को जगाने की क्षमता है। शिवाजी की प्रशंसा में लिखा गया उनका छन्द आज प्रत्येक हिन्दी-ज्ञाता को याद है :-

"इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
....
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेक्ष वंस पर सेर सिवराज हैं।"

इसी प्रकार छत्रसाल की प्रशंसा में भी वीर-भाव पूर्ण पदों की सृष्टि उन्होंने की है। उन्होंने वीररस की रचना करते समय युद्धवीर, दानवीर, दयावीर आदि का सुन्दर परिचय दिया है।

राष्ट्रीय-भावना :- कुछ आलोचकों का मत है कि भूषण साम्प्रदायिक भाव के कवि थे। इस सम्बन्ध में वे 'हिन्दू' शब्द के प्रयोग तथा चोटी और टीका के सम्बन्ध में कही गयी भूषण की उक्तियों की ओर संकेत करते हैं। उन्हें भूषण की कविताओं में मुसलमान-विरोधी भाव दिखायी पड़ता है, किन्तु इस प्रकार का विचार भ्रमपूर्ण है। भूषण ने मुसलमान का या किसी सम्प्रदाय का विरोध नहीं किया। उनकी कविताओं में अत्याचार और बर्बरता का विरोध है, किसी सम्प्रदाय का नहीं। औरङ्गजेब की निन्दा में औरङ्गजेब के अत्याचारपूर्ण कार्यों की ही निंदा हुई है, उसे अन्यथा लेना अनुचित है। जिस औरङ्गजेब ने "खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके, लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तबकी" की स्थिति उत्पन्न कर दी उसकी भर्त्सना ही भूषण की कृतियों में मिलती है। मन्दिरों को गिराने वाले औरङ्गजेब

बुराई मुसलमान-धर्म की बुराई नहीं मानी जा सकती है। 'शिवा' की वन्दना भी भूषण ने केवल इसलिए नहीं की कि वे हिन्दू थे। उनकी नैतिकता से प्रभावित होकर ही उन्होंने उन्हें अपना आदर्श माना। औरङ्गज़ेब की बर्बरता का विरोध करते हुए भी उन्होंने कभी मस्जिद को गिराने की बात नहीं कही। भूषण साम्प्रदायिक नहीं थे, इस बात का प्रमाण उनकी उन कविताओं से मिलता है जिनमें उन्होंने हुमायूँ, अकबर आदि मुसलमान नरेशों की स्तुति की है :-

> *"बब्बर के तब्बर हुमायूँ, हद्द बाँध गए*
> *दो में एक करो ना कुरान वेद ढब की"*

"दो में एक करो ना कुरान वेद ढब की" जैसी पंक्तियों में हुमायूँ की प्रशंसा स्पष्ट है। भूषण की कविताओं का उद्देश्य कभी साम्प्रदायिक नहीं था। वे बराबर हिन्दू-मुस्लिम एक्य को ही मान्यता देते रहे। उनकी इस भावना के कारण हम उन्हें साम्प्रदायिक नहीं कह सकते, वे निश्चित ही राष्ट्रीय-भाव के कवि थे और बर्बरता, अत्याचार आदि के विरोधी थे।

कलापक्ष :- भूषण ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए दोहा, रोला, छप्पय, सवैया, मनहरण, उल्लाला, गीतिका आदि छन्दों को स्वीकार किया। युद्धों के वर्णन में उन्होंने वर्णनात्मक शैली का तथा मनोगत भावों और विचारों के कथन में विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। उनकी कविताएँ ब्रजभाषा में ही लिखी गयीं हैं। ब्रजभाषा में भी बुन्देली और बैसवाड़ी शब्दों का प्रभाव है। उन्होंने ब्रजभाषा में ओज लाने के लिए शब्दों में तोड़-मरोड़ भी किया है। उनकी भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का सुम्दर प्रयोग है। "केते पातसाहन की छाती दरकति है" और "कटि गई नाक सिगरेई दिल्ली दल की" आदि पंक्तियाँ मुहावरों से पूर्ण हैं। वीर रस की ध्वनि उत्पन्न करने के लिए द्वित्वध्वनिमूलक, अपभ्रंश-ध्वनि पूर्ण शब्दों का प्रयोग भी भूषण की रचनाओं में मिलता है। 'बब्बर के तब्बर हुमायूँ हद्द बाँधि गये' में इस प्रकार के शब्दों के द्वारा उत्पन्न ओजस्विता स्पष्ट है।

अलंकारों की दृष्टि से अनुप्रास, उपमा, यमक, उत्प्रेक्षा आदि विविध अलंकारों का प्रयोग उनकी कविताओं में मिलता है। कुछ अलंकारों का प्रयोग देखिए :-

यमक-अनुप्रास -- **"पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर।**
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।।"

उपमा-- **'चाक-सो फिरति धाक चंपति के लाल की।'**

उत्प्रेक्षा-- **'मानो गगन तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं।'**

उदाहरण -- **'इन्द्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर'**

छन्द, अलंकार और भाव की दृष्टि से भूषण रीतिकाल के रीतिबद्ध-धारा के कवियों में वीर-भाव के कवि सिद्ध होते हैं। रीतिकालीन शृङ्गारमयी वातावरण के बीच वीर-रस की कविताओं को लिखकर उन्होंने समाज की सोई हुई शक्ति को जगाया और हमें डूबने से बचाया है।



ही उनकी रचनाओं में कुछ शृङ्गार रस के भी पद आ गए हैं :-

"और के धाम में स्याम बसै सिगरी रतिया तिय जाग बिताई।
आजु सखी लखि लालन सों हठ सी बतियाँ करिहौं कठिनाई।।
आयो हरी कवि भूषण भोर तों दूषन देन को है ढिग ठाई।
राखि उसासि कही न कछू अँसुवा जल सों अखियाँ भरि आई।।"

किन्तु शृङ्गारमूलक ये भाव अत्यन्त अल्प संख्या में ही उनकी रचनाओं में मिलते हैं। वे मुख्यत: वीर रस के कवि थे और वीर रस के साथ ही रौद्र-रस भी उनकी कविताओं में व्यंजित है; किन्तु लक्षणों के कथन और रीति-परम्परा के पालन के कारण वे रीतिकाल के प्रमुख कवि माने जाते हैं।

वर्ण्य-विषय :- छत्रपति शिवाजी और छत्रसाल के चरित्रों को ही भूषण ने अपने काव्य का विषय बनाया है। इतिहास प्रसिद्ध इन दोनों नरेशों ने अपने युग के अन्याय-भाव को दबाया था। इन्होंने हिन्दुओं के हिन्दुत्व और राष्ट्र की राष्ट्रीयता को रक्षित रखने का प्रयत्न किया था। राष्ट्र-प्रेम, हिन्दुत्व-प्रेम, नैतिक आदर्श आदि को मान्यता देने वाले कवि भूषण ने अपने आदर्श के अनुरूप इन दो चरित्रों को ही चरित्र-नायक बनाकर वीर-रस पूर्ण कविताएँ लिखीं। कभी वे 'सिवा' के 'समशेर' की, और कभी छत्रसाल की 'बरछी' की प्रशंसा करते थे। कभी वे 'सिवा' को वखानते थे और कभी छत्रसाल को।

वीर भावना :- जब रीतिकालीन कवियों ने धन के लोभ में पड़कर अपने आश्रयदाताओं की संकीर्ण आमोदमयी वृत्ति को पुष्ट करना ही अपना धर्म मान लिया था, तभी भूषण कवि ने वीर-रस की कविताएँ लिखकर अपने आश्रयदाताओं को कर्म की प्रेरणा दी थी, उन्हें अन्याय के दमन और न्याय के समर्थन के लिए उत्प्रेरित किया था और उनको कर्तव्य का ज्ञान कराया था। उनकी लेखनी ने निराश व्यक्तियों में आशा का संचार कर स्वतन्त्रता का भाव भर दिया। उनकी वीर-भाव पूर्ण कविताओं को सुनकर मन उत्साहित हो उठता है। उसमें ओज है, दर्प है और सोयी हुई शक्ति को जगाने की क्षमता है। शिवाजी की प्रशंसा में लिखा गया उनका छन्द आज प्रत्येक हिन्दी-ज्ञाता को याद है :-

"इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर
रावन सदंभ पर रघुकुल राज हैं।
....
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर
त्यों म्लेक्ष वंस पर सेर सिवराज हैं।"

इसी प्रकार छत्रसाल की प्रशंसा में भी वीर-भाव पूर्ण पदों की सृष्टि उन्होंने की है। उन्होंने वीररस की रचना करते समय युद्धवीर, दानवीर, दयावीर आदि का सुन्दर परिचय दिया है।

राष्ट्रीय-भावना :- कुछ आलोचकों का मत है कि भूषण साम्प्रदायिक भाव के कवि थे। इस सम्बन्ध में वे 'हिन्दू' शब्द के प्रयोग तथा चोटी और टीका के सम्बन्ध में कही गयी भूषण की उक्तियों की ओर संकेत करते हैं। उन्हें भूषण की कविताओं में मुसलमान-विरोधी भाव दिखायी पड़ता है, किन्तु इस प्रकार का विचार भ्रमपूर्ण है। भूषण ने मुसलमान का या किसी सम्प्रदाय का विरोध नहीं किया। उनकी कविताओं में अत्याचार और बर्बरता का विरोध है, किसी सम्प्रदाय का नहीं। औरङ्गजेब की निन्दा में औरङ्गजेब के अत्याचारपूर्ण कार्यों की ही निंदा हुई है, उसे अन्यथा लेना अनुचित है। जिस औरङ्गजेब ने "खोदि डारे देवी देव सहर मुहल्ला बाँके, लाखन तुरुक कीन्हें छूटि गई तबकी" की स्थिति उत्पन्न कर दी उसकी भर्त्सना ही भूषण की कृतियों में मिलती है। मन्दिरों को गिराने वाले औरङ्गजेब के

बुराई मुसलमान-धर्म की बुराई नहीं मानी जा सकती है। 'शिवा' की वन्दना भी भूषण ने केवल इसलिए नहीं की कि वे हिन्दू थे। उनकी नैतिकता से प्रभावित होकर ही उन्होंने उन्हें अपना आदर्श माना। औरङ्गज़ेब की बर्बरता का विरोध करते हुए भी उन्होंने कभी मस्जिद को गिराने की बात नहीं कही। भूषण साम्प्रदायिक नहीं थे, इस बात का प्रमाण उनकी उन कविताओं से मिलता है जिनमें उन्होंने हुमायूँ, अकबर आदि मुसलमान नरेशों की स्तुति की है :-

''बब्बर के तब्बर हुमायूँ, हद्द बाँध गए
दो में एक करो ना कुरान वेद ढब की''

''दो में एक करो ना कुरान वेद ढब की'' जैसी पंक्तियों में हुमायूँ की प्रशंसा स्पष्ट है। भूषण की कविताओं का उद्देश्य कभी साम्प्रदायिक नहीं था। वे बराबर हिन्दू-मुस्लिम एक्य को ही मान्यता देते रहे। उनकी इस भावना के कारण हम उन्हें साम्प्रदायिक नहीं कह सकते, वे निश्चित ही राष्ट्रीय-भाव के कवि थे और बर्बरता, अत्याचार आदि के विरोधी थे।

कलापक्ष :- भूषण ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए दोहा, रोला, छप्पय, सवैया, मनहरण, उल्लाला, गीतिका आदि छन्दों को स्वीकार किया। युद्धों के वर्णन में उन्होंने वर्णनात्मक शैली का तथा मनोगत भावों और विचारों के कथन में विवेचनात्मक शैली का प्रयोग किया है। उनकी कविताएँ ब्रजभाषा में ही लिखी गयीं हैं। ब्रजभाषा में भी बुन्देली और बैसवाड़ी शब्दों का प्रभाव है। उन्होंने ब्रजभाषा में ओज लाने के लिए शब्दों में तोड़-मरोड़ भी किया है। उनकी भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है। ''केते पातसाहन की छाती दरकति है'' और ''कटि गई नाक सिगरेई दिल्ली दल की'' आदि पंक्तियाँ मुहावरों से पूर्ण हैं। वीर रस की ध्वनि उत्पन्न करने के लिए द्वित्वध्वनिमूलक, अपभ्रंश-ध्वनि पूर्ण शब्दों का प्रयोग भी भूषण की रचनाओं में मिलता है। 'बब्बर के तब्बर हुमायूँ हद्द बाँधि गये' में इस प्रकार के शब्दों के द्वारा उत्पन्न ओजस्विता स्पष्ट है।

अलंकारों की दृष्टि से अनुप्रास, उपमा, यमक, उत्प्रेक्षा आदि विविध अलंकारों का प्रयोग उनकी कविताओं में मिलता है। कुछ अलंकारों का प्रयोग देखिए :-

यमक-अनुप्रास -- *''पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर।*
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के।।''

उपमा-- *'चाक-सो फिरति धाक चंपति के लाल की।'*

उत्प्रेक्षा-- *'मानो गगन तम्बू तन्यो ताके सपेत तनाय हैं।'*

उदाहरण -- *'इन्द्र जिमि जंभ पर, बाड़व सुअंभ पर'*

छन्द, अलंकार और भाव की दृष्टि से भूषण रीतिकाल के रीतिबद्ध-धारा के कवियों में वीर-भाव के कवि सिद्ध होते हैं: रीतिकालीन शृङ्गारमयी वातावरण के बीच वीर-रस की कविताओं को लिखकर उन्होंने समाज की सोई हुई शक्ति को जगाया और हमें डूबने से बचाया है।



घनानन्द

जन्म-संवत् :--१७४६ वि०　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- १८१७ वि०

जीवन-वृत्त :- रीतिमुक्त धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि रस-मूर्ति घनानन्द के जीवन के सम्बन्ध में बहिर्साक्ष्य ही प्रमाण है। जनश्रुतियों के आधार पर घनानन्द दिल्ली-वासी कायस्थ भटनागर थे। उनका जन्म-संवत् १७४६ मान्य है। रामचन्द्र शुक्ल ने भी इसी मत को स्वीकार किया है। इस जनश्रुति के आधार पर घनानन्द को बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले का मीर मुन्शी कहा गया है। इसके आधार पर यह भी कहा जाता है कि मुहम्मदशाह के दरबार की नर्तकी सुजान पर घनानन्द का अपार प्रेम था। एक बार बादशाह के मुसाहिबों ने बादशाह से कहा कि घनानन्द बहुत अच्छा गाना गाते हैं। बादशाह ने गाने की आज्ञा दी पर घनानन्द ने गाया नहीं। उसी समय लोगों के कहने पर सुजान ने गाने के लिए कहा और उसके कहने पर घनानन्द ने गा दिया। बादशाह ने क्रोध कर उन्हें दिल्ली छोड़ने की आज्ञा दी और तब वे ब्रज में चले गये तथा सुजान के प्रेम को कृष्ण की ओर मोड़कर निम्बार्क भक्त हो गये। नादिरशाह के आक्रमण के समय उनकी मृत्यु हुई, किन्तु विभिन्न खोजों के बाद अब यह किंबदन्ती अप्रामाणिक समझी जाने लगी है। उनके जन्म और मरण के सम्बन्ध में विचार करते हुए वियोगी हरि, लाला भगवानदीन, शंभुप्रसाद बहुगुना, राधाकृष्णदास, विश्वनाथप्रसाद मिश्र आदि विद्वानों ने विभिन्न शोध किये हैं। बाबू राधाकृष्णदास ने जयलाल कवि के एक पत्र का हवाला देकर सिद्ध किया है कि घनानन्द की मृत्यु संवत् १८१७ में अहमद दुर्रानी के कत्लेआम के समय हुई। नादिरशाह के आक्रमण के समय घनानन्द जीवित थे। उसके बाद की उनकी रचनाएँ भी प्राप्त हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने जयलाल कवि के पत्र को प्रमाणिक मान कर घनानन्द को चतुर्थ महात्मा नागरीदास का समकालीन माना है और उनकी मृत्यु १८१७ वि० में अहमद दुर्रानी के कत्लेआम के समय स्वीकार किया है। इस नये प्रमाण से सुजान नामक वेश्या के प्रेम की कथा भी संदेहास्पद हो गयी है। घनानन्द के नाम के सम्बन्ध में भी मतभेद है। कुछ पदों में 'घन आनन्द', कुछ में 'आनन्द घन' और कुछ में केवल 'आनन्द' शब्द का प्रयोग हुआ है। कुछ विचारकों ने इन तीनों नामों को एक व्यक्ति से ही सम्बन्धित माना है और तीनों ही नामों को एक व्यक्ति का विविध नाम कहा है; किन्तु नये शोधों से इन तीन नामों के तीन व्यक्ति अलग-अलग समय में सिद्ध हो चुके हैं। अतः घनानन्द ही नाम उचित है और इस नाम से युक्त कविताएं ही घनानन्द की हैं। नये शोधों के आधार पर अब तक यही निर्णय निकल सका है कि घनानन्द का जन्म-संवत् १७४६ वि० और मृत्यु-संवत १८१७ वि० ही है। वे दिल्ली के रहने वाले भटनागर कायस्थ थे।

रचनाएँ :- घनानन्द की रचनाओं के सम्बन्ध में भी विविध मत हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने घनानन्द द्वारा रचित पुस्तकों की सूची में ४२ की गणना की है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के सं० २००० तक की खोज में घनानन्द कृत १७ पुस्तकों की हस्तलिपि का उल्लेख है। शंभुप्रसाद बहुगुना ने उनकी १२ पुस्तकों की चर्चा की है। इन सभी विचार-धाराओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि घनानन्द की रचनाएँ संख्या में अधिक हैं। उनमें से कुछ की सूची इस प्रकार है :-

सुजान सागर, घनानन्द कवित्त, रसकेलि बल्ली, सुजान हित, वियोग बेलि, इश्कलता, प्रीतिपावस, ब्रजविलास आदि।

प्रेम-भावना :- प्रेम की विविध अंतर्दशाओं और भावना-भेदों का निरूपण करने की विशेषता लेकर घनानन्द ने काव्य-जगत में प्रवेश किया। उनका प्रेम पहले लौकिक था किन्तु बाद में उन्होंने सुजान के प्रति होने वाले अपने लौकिक प्रेम को कृष्ण-प्रेम में परिणत कर उसे अलौकिक रूप प्रदान किया। प्रेम के क्षेत्र में वे किसी प्रकार के बाँकपने और स्वार्थमयी स्थिति को बुरा समझते थे। उन्हें तो प्रेम का मार्ग 'अति सूधो' लगा। उनके प्रेम का आदर्श 'चकोर' और 'चातक' का प्रेम था, अतः वे एकांगी प्रेम के भी समर्थक थे। "इन बाट परी सुधि रावरे भूलनि कैसे उराहनों दीजिये जू" जैसी पंक्तियों में निष्ठुर प्रिय के प्रति उपालंभ न देने की बात कहकर प्रेम की मर्यादा का ही कवि ने कथन किया है। प्रेम के क्षेत्र में उन्होंने बुद्धि की अपेक्षा हृदय को अधिक महत्त्व दिया है। हृदय की रीझ को ही उन्होंने रानी कहा है, बुद्धि तो दासी मात्र रह गयी है :-

"रीझ सुजान सची पटरानी, बची बुद्धि बापुरी है करि दासी।"

रीतिकालीन कवियों के यहाँ प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए दूत और दूती का प्रसंग लाया गया है। रीतिकाल के होकर भी घनानन्द रीतिमुक्त थे। उन्होंने पिटी पिटाई लीक नहीं अपनाई और इस तरह के प्रसंगों का कथन नहीं किया। घनानन्द के विरह का संदेश सुनने का सामर्थ्य ही किसी में नहीं है क्योंकि उसे सुनने के लिए तो कान को आँवा-सम करना पड़ जाएगा।

घनानन्द के प्रेम की अनन्यता उनके पदों में स्थान-स्थान पर व्यक्त है। उनके प्रेम में स्वार्थ नहीं है--"गोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहिं कहा कछु चंदहि चकोरनि की कमी है"। प्रेमी के विरह में मर जाने को घनानन्द ने 'जड़ता' की संज्ञा दी है। वे मर कर विरह भाव से मुक्ति नहीं लेना चाहते, वे तो अपनी एकनिष्ठ भावना से प्रिय की निष्ठुरता को जीतने का संकल्प करते हुए कहते हैं :-

"ऐसे घन आनन्द गही है टेक मन माहि।
एरे निरदई तोउ दया उपजाय हौं।"

उनके प्रेम की गंभीरता मीन और पतंग के प्रेम से भी अधिक है। अपने प्रेम की इस महान स्थिति का कथन स्वयं गर्व के साथ कवि ने किया है :-

"मरिबो बिसराम गनै वह तौ, यह बापुरो मीत तज्यो तरसै।
वह रूप छटा न सहारि सकै, यह तेज तबै जितबै बरसै ।।
घन आनन्द कौन अनोखी दसा मति आवरी बावरी है थरसै।
बिछुरे मिलै मीन पतंग दसा, कहा मो जिय की गति को परसै।।"

घनानन्द की कविता में 'प्रेम की पीर' भरी पड़ी है। उन्होंने प्रेम की तीव्रता दिखलाने के लिए विषम-प्रेम का कथन किया है।

प्रेम-वर्णन में नायक और नायिका दोनों के सौन्दर्य का चित्रण घनानन्द ने किया है। नायक के 'चटक मटक भरी लटकि चलति नीकी, मृदु मुसक्यान देखें' यदि नायिका का मन 'बिकाय' जाता है तो नायिका भी कम सुन्दर नहीं है। उसके सौन्दर्य का कथन करते हुए कवि ने कहा है :-

"स्याम घटा लपटी थिर बीज कि सोहै अमावस अंक उज्यारी।
धूम के पुंज मैं ज्वाल की जाल-सी पै दृग सीतलता सुखकारी।।
कै छवि छायो सिंगार निहारि, सुजान तिया तिन दीपति प्यारी।
कैसी फबी घन आनन्द चौंपनि सों पहिरी चुन साँवरी सारी।।"

घनानन्द ने पूर्वानुराग, मिलन, वियोग और वियोग की सभी दशाओं का चित्रण किया है। पूर्वानुरागिनी प्रेम के मद में छकी हुई यौवन के उमंग में, लज्जा का आवरण धारण कर गृह-काज करती हुई दिखाई गयी है :-

"हरि नेह-छकी तरुनाई के तेह सु गेह में लाज सों काज करै

....

पिय कौ हित ताहिं लखै अभिलाखनि लाखनि लाखनि भाँति भरै।।"

मिलन के समय ही मानों नायिका की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण हो गयीं :-

"सुख स्वेद कनी मुखचंद बनी बिथुरी अलकावलि भाँति भली।

....

गति ढीली लजीली रसीली लसीली, सुजान मनोरथ बेलि फली।"

वियोगिनी के विविध रूप-चित्रों से घनानन्द की कविता भरी पड़ी है। वियोगिनी प्रकृति के तत्वों-परजन्य, वीर पौन-- आदि से संदेशा भेजती है। वह प्रिय को ढूँढ़ने के लिए धरती में घुसने और आकाश को चीरने का साहस रखती है। वियोग की विविध दशा मूर्च्छा, उन्माद आदि का बड़ी सफलता से कवि ने कथन किया है। प्रेम की अन्तर्दशाओं का चित्रण करने में घनानन्द को अद्भुत सफलता मिली हैं।

भक्ति एवं सम्प्रदाय :- घनानन्द निम्बार्क सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन होकर विभिन्न पदों का गान किया है। सुजान नाम का सम्बोधन उन्होंने कृष्ण को दिया है।

'गुरनि बतायो राधा मोहन हूँ गायो,
सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढ़े गहिरे।'

जैसी पंक्तियों से उनकी भक्ति का परिचय मिलता है। उन्होंने ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ माना है। रसखानि ने 'कै यह विषयानन्द कै ब्रह्मानन्द बखान' के द्वारा भक्ति को श्रेष्ठ कहा है और घनानन्द ने 'ज्ञान हूँ ते आगे जाकी पदवी परम ऊँची' कहकर उसकी श्रेष्टता सिद्ध की है। सुजान के प्रति अपने प्रेम को अलौकिक प्रेम-लीला का एक अंश बतलाते हुए उन्होंने कहा है :-

"प्रेम को महोदधि अपार हेरि कै,
विचार बापुरो हहरि बारिही तैं फिरि आयो है।
ताही एक रस है विवस अवगाहैं दोऊ,
नेहि हरि राधा जिन्हें देखे सरसायो हैं।।"

उनके लिए संसार में फैला हुआ प्रेम-व्यापार उसी प्रेम-महोदधि का एक अंश है जिसमें राधा-कृष्ण जल-केलि किया करते हैं। घनानन्द के पदों में राधा को अधिक महत्त्व मिला है, इसीलिए उन्हें निम्बार्क सम्प्रदाय का भक्त माना जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा के शृंगारिक-वर्णन को अधिक महत्त्व मिला है। राधा की वन्दना घनानन्द ने अनेक स्थलों पर की है। राधा के रूप का चित्र देखिए :-

'ऐरी रूप अगाधे राधे, राधे राधे राधे राधे।
तेरे मिलिबो को ब्रजमोहन बहुत जतन हैं साधे।।"

वन्दना के स्वर में उन्होंने 'राधिका-चरन बन्दन करि बखानौ' जैसी पंक्तियों का कथन किया हैं। कृष्ण-भक्तों की तरह रास का भी कथन घनानन्द ने किया है।

प्रकृति-वर्णन :- घनानन्द ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का कथन किया है। उनकी कविता में प्रकृति का उद्दीपन रूप में, स्वतंत्र आलंबन रूप में, अलंकार रूप में और संदेशवाहक रूप में वर्णन हुआ है। उद्दीपन रूप में प्रकृति का सुख और दुख दोनों ही स्थितियों में सापेक्ष वर्णन उन्होंने किया है। भाव के रंग में रँगकर ही उन्होंने प्रकृति का वर्णन किया है।

(१) प्रकृति उद्दीपन के रूप में :- संयोग के समय में प्रकृति सुखों को उद्दीप्त करती हुई दिखायी गयी है और वियोग के समय में दुखों को। प्रेम में विभोर राधा और कृष्ण को प्रकृति में उल्लास दिखायी पड़ता है। मिलन के समय वसंत, शरद सभी ऋतुएं अत्यन्त सुन्दर लगती हैं। बरबस शरद की रस भीनी जामिनी के बीच पूरन ससि प्राची में उदित हो 'बिहरनि-रुचि' उत्पन्न कर देता है। ''बृन्दावन मधि मधुरितु आई अति छवि पाइ सुहाई'' में बसंत की सुन्दरता वर्णित है तो शरद और पावस भी कम सुन्दर और उद्दीपनकारी नहीं लगते हैं।

वियोग की बेला में प्रकृति वियोगिनी को ताप देने लगती है। वही पावस 'महकि महकि प्रसून वाण' मारने लगता है और कारी कूर कोकिला न जाने कहाँ का बैर काढ़ने लगती है।

(२) स्वतन्त्र रूप में प्रकृति का चित्रण :- आलम्बन रूप में प्रकृति का चित्रण रीतिकालीन कवियों ने प्रायः नहीं किया है। घनानन्द में भी ऐसे चित्र अपेक्षाकृत कम ही आये हैं। वृन्दावन का वर्णन आलम्बन-रूप में करते हुए कवि ने कहा है :-

''वृन्दावन आनन्द घन राजत यमुना कूल।
सदा सुखद सुन्दर सरस, सब ऋतु रुचि अनुकूल।।''

(३) अलंकार-रूप में :- नायक-नायिका के सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का आलंकारिक प्रयोग भी घनानन्द ने किया है। राधा के शरीर में वियोग के कारण एक साथ ही पतझड़ और बसंत का निवास दिखाते हुए कवि कहता है :- 'ह्वै पतझार बसंत दुहू घनआनन्द एक ही बार हमारे'। विरह को व्यक्त करने के लिए दावाग्नि की उपमा दी गयी है। विरह की स्थिति का वर्णन करते हुए कवि कहता है।

''विरह दवागिनि उठी है तन-बन बीच,
जतन सलिल के सु कैसे सीचिये परै
अन्तर पुढाई फटै, चटकत साँस बाँस,
आस लाँबी लता हूँ उदेग झर सों झरै।।''

(४) दूतत्व कार्य के निमित्त प्रकृति का प्रयोग :- घनानन्द ने प्रकृति से दूतत्व कार्य कराया है। कालिदास के मेघदूत की तरह घनानन्द ने भी मेघ को 'परजन्य' कहा है और उससे अपने आँसुओं को सुजान के आँगन में बरसा देने की प्रार्थना की है।

''परकारज देह को धारे फिरै
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
+ + + +
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन

मो अँसुवान को लै बरसो।।"

'ए रे बीर पौन तेरो सबै ओर गौन' जैसी पंक्तियों से आरम्भ होने वाली कविता में 'पौन' को भी दूत ही बनाया गया है।

कला-पक्ष :- घनानन्द की भाषा ब्रज-भाषा थी। ब्रज-भाषा का जैसा परिष्कृत रूप उनकी कविताओं में मिलता है, अन्यत्र दुर्लभ है। उनकी भाषा में अधिकतर संस्कृत के शब्दों का प्रयोग है किन्तु फारसी आदि के शब्दों को पचाने की अद्भुत शक्ति भी उसमें थी। 'इश्कलता' में फारसी का अत्यधिक प्रभाव है। उनकी भाषा में चित्रात्मकता और नाद-सौन्दर्य का गुण है। 'एरे बीर पौन' में मृदंग सी ध्वनि स्पष्ट है। उनकी भाषा में मुहावरों का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। 'अब तौ सब सीस चढ़ाय लई जु कछू मन भाई सु कीजिये जू' में 'सीस चढ़ाना' का प्रयोग द्रष्टव्य है। इसी प्रकार के न जाने कितने प्रयोग उनकी भाषा में मिलते हैं। भाषा की दृष्टि से निश्चित ही वे 'ब्रजभाषा प्रवीन' थे।

छन्दों की दृष्टि से उन्होंने मुख्यतः कवित्त और सवैया को ही अपने काव्य में स्थान दिया है। इन छन्दों में पिंगल-शास्त्र के आधार पर कोई दोष नहीं मिलता।

घनानन्द की कविता में विरोधाभास अलंकार की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त श्लेष, रूपक, विभावना, असंगति, यथासंख्य, अपह्नुति आदि अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी उनकी कविताओं में हुआ है। इन अलंकारों में से कुछ का उदाहरण देखिए :-

विरोधाभास-- 'झूठ की सचाई छाक्यौ त्यों हित कचाई पाक्यो
ताके गुनगन घन-आनन्द कहा गनौ।'

रूपक-- "प्रान-पखेरू परे तरफैं लखि रूप-चुगौ जु फँदे गुन गाथनि"

यमक-- "मोही मोह जनाय के, अरे अमोही जोहि।
सो ही मोही सी कठिन, क्यों करि सोही तोहि।"

श्लेष-- 'परकारज देह को धारें फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।'

असंगति-- 'नैननि में लागै जाय लागै सो (कटाक्ष) करेजे बीच।'

अनुप्रास-- 'कारी कूर कोकिल कहाँ को बैर काढ़ति री
कूकि कूकि अबही करेजौ किन कोरि लै।'

घनानन्द के काव्य में उक्ति-वैचित्र्य और मूर्ति-विधान का भी सुन्दर प्रयोग है। भाषा, छन्द, अलंकार के प्रयोग में घनानन्द किसी भी रीतिकालीन कवि से पीछे नहीं रहे हैं, किन्तु उनके प्रयोगों में रीतिकालीन प्रवृत्ति और पिटी-पिटाई शैली पर बढ़ने की स्थिति नहीं दीखती। उनके प्रयोग नवीन हैं, और स्वाभाविक हैं। रीतिकाल के रीतिबद्ध कवियों की तरह उन्होंने कविता बनाने के लिए कविता नहीं बनायी, बल्कि भावावेश में कविता स्वयं बनती चली गयी। रीतिकालीन कवियों से अपना यह स्पष्ट अन्तर देखकर ही घनानन्द ने स्वयं कहा है :-

'लोग हैं लाग कवित्त बनावन,
मोंहि तो मेरे कवित्त बनावत।'



दीनदयाल गिरि

जन्म-संवत् :-- १८६० वि० **मृत्यु-संवत् :-- १६१५ वि०**

जीवन-वृत्त :- संवत् १८६० वि० की वसन्त पंचमी के दिन काशी के एक पाठक (ब्राह्मण) घराने में दीनदयाल गिरि का जन्म हुआ। अल्पवय में ही माता और पिता का स्वर्गवास हो जाने के कारण उनका पालन-पोषण महंथ कुशागिरी के संरक्षण में हुआ। महंथ जी पंचकोशी मार्ग में पड़ने वाले देहली-विनायक नामक स्थान के अधिकारी थे। उनके संरक्षण में रहने के कारण उनके संस्कृत और हिन्दी ज्ञान का प्रभाव बालक दीनदयाल पर भी पड़ा। दीनदयाल नाम भी महंथ जी ने ही दिया था। संस्कृत और हिन्दी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद कविता की ओर उनकी प्रवृत्ति हुई। ११ वर्ष की अवस्था में ही वे तुकबन्दी करने लग[illegible] थे। दीनदयाल ने बाद में अपने नाम के साथ 'गिरि' शब्द को जोड़ लिया। इस शब्द से उन्हें उनके पिता-गुरु कुशागिरि का उत्तरार्ध प्राप्त हुआ। संन्यासियों के साथ में रहने के कारण उनके अन्दर भी वैराग्य भाव ने घर कर लिया, किन्तु संकुचित भावनाएँ उनके अन्दर न आ पायीं। दीन-दुखियों की सहायता और स्वाभिमान की रक्षा उन्हें अधिक प्रिय थी। बीस वर्ष की अवस्था में ही दीनदयाल संन्यासी हो गए। संवत् १८६० वि० में जब महंथ कुशागिरी की मृत्यु हो गयी तब दीनदयाल तीर्थयात्रा के लिए चल पड़े। बाद में वे मठौली के मठ में रहने लगे।

काशी के प्रति स्वाभाविक ममता के [illegible] प्रायः काशी आया करते थे। भारतेन्दु बाबू के पिता श्री गोपालचन्द्र (गिरधर दास) से उनकी [illegible] मित्रता थी। वे प्रायः उनके यहाँ जाया करते थे और उनसे काव्य-चर्चा किया करते थे। संवत् १६१५ वि० में उनका गोलोकवास हो गया।

उनेक द्वारा रचित पुस्तकों की संख्या पाँच है। उनका नामोल्लेख इस प्रकार हुआ है:- 'अन्योक्ति कल्पद्रुम', 'अनुराग बाग', 'वैराग्य दिनेश', 'विश्वनाथ नवरत्न' और 'दृष्टान्त तरंगिणी'। इन सबमें अन्योक्ति-कल्पद्रुम को विशेष ख्याति मिली है। वही उनकी कीर्ति का आधार है। 'अन्योक्ति कल्पद्रुम' अन्योक्तियों का संग्रह है। 'अनुराग-बाग' में कृष्ण की लीला का वर्णन है। 'वैराग्य दिनेश' में ज्ञान-विराग संबंधी भावों की अभिव्यक्ति हुई है। 'विश्वनाथ-नवरत्न' में शिव की वन्दना के पद संगृहीत हैं और 'दृष्टांत तरंगिणी' नीति सम्बन्धी दोहों की पुस्तक है।

भाव-पक्ष :- नीति विषयक दोहों के कथन में और अन्योक्तियों की रचना में दीनदयाल गिरि को अत्यधिक सफलता मिली है। इन रचनाओं की दृष्टि से उनका स्थान सर्वोपरि है। अन्योक्तियों के माध्यम से अपनी अनुभूति और अपने ज्ञान की सुन्दर अभिव्यक्ति उन्होंने की है। अप्रस्तुत का कथन कर प्रस्तुत का परिचय देना ही अन्योक्तिकार का महान् कर्तव्य होता है। यह कार्य सबके लिए सम्भव नहीं है। भाषा पर सबल अधिकार रखनेवाला अनुभवी व्यक्ति ही इस दिशा में सफल होता है। दीनदयाल गिरि की अन्योक्तियों को देखकर उनकी अनुभूति, भाषा-अधिकार आदि विशेषताओं का अनुमान लगाया जा सकता है। सुख और समृद्धि के क्षणों में बहुत अहंकार-ग्रस्त न हो जाना चाहिए, इस बात की शिक्षा देते हुए प्रकृति के माध्यम से उन्होंने अन्योक्ति की है :-

"दिन द्वै पाय बसंत-मद फूल्यो कहा पलास।
ग्रीखम भीखम सीस पै नहि लाली की आस।।
नहिं लाली की आस फूल सब तेरे झरिहैं।
पीछे तोहि न बली! अली कोऊ आदर करिहैं।।
बरनै दीनदयाल रहो नय कोमल किन है।
ये नख नाहर--रूप रहेंगे तेरे दिन द्वै।।"

कुछ आध्यात्मिक अन्योक्तियों का भी कथन उन्होंने किया है :-

"चल चकई तेहि सर विषे जहँ नहिं रैन विछोह।
रहत एक रस दिवस ही, सुहृद हंस संदोह।।
सुहृद हंस संदोह कोह, अरु द्रोह न जाको।
भोगत सुख अँबोह, मोह दुख होय न ताको।।
बरनै दीनदयाल भाग बिन जाय न सकई।
पिय मिलाप नित रहै, ताहि सर चल तू चकई।।"

उन्होंने अन्योक्ति के माध्यम से ही नीति सम्बन्धी बातें भी कहीं है। 'दृष्टांत-तरंगिणी' नीति सम्बन्धी दोहों का संग्रह है। उनके नीति-वाक्यों पर संस्कृत का प्रभाव है। संस्कृत की कुछ सूक्तियों को पढ़कर उनके भावों को अपने दोहों और अन्योक्तियों के माध्यम से उन्होंने बड़ी सुन्दरता से अभिव्यक्त किया है। उनकी नीति-सम्बन्धी भावाभिव्यक्ति में उपदेश की शुष्कता न होकर साहित्य की मार्मिकता और सरसता भरी हुई है।

कला-पक्ष :- गिरी जी की कविताओं में ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित ब्रजभाषा को देखकर कहा है :- "बाबा जी का भाषा पर बहुत ही अच्छा अधिकार था। उनकी सी परिष्कृत, स्वच्छ और सुव्यवस्थित भाषा बहुत थोड़े कवियों की है।" सरल शब्दों के कारण प्रसाद और माधुर्य गुणों का ही दर्शन उनकी काव्य-भाषा में मिलता है।

छन्द की दृष्टि से अन्योक्तियों के कथन में उन्होंने कुण्डलिया छन्द का प्रयोग किया है। दृष्टान्त-तरंगिणी में दोहा छन्द का व्यवहार है।

अनुप्रास, यमक, श्लेष और अन्योक्ति ही गिरी जी के प्रमुख अलंकार रहे हैं। अन्योक्ति पर तो 'अन्योक्ति-कल्पद्रुम' नाम की उनकी एक पुस्तक ही है। अन्योक्तियों में ही यत्र-तत्र यमक और श्लेष भी देखने को मिल जाते हैं। उनके इन अलंकारों की स्वाभाविकता देखिए :-

अनुप्रास— 'उन दीनन की दसा देखि नहिं दाया आई।'

यमक— "बरनै दीनदयाल कुन्द मिस तो जस छाये
एक विचारे पात तिने उतपात लगाये।।"

श्लेष— "अंबर देत सुहाय द्विजन की करत सहाई।"

अथवा

चहियत जीवन दानि ! तिहि निरदै पाहन मारि ?

गिरि जी की अन्योक्तियों में भाव की गम्भीरता और भाषा का सौष्ठव देखकर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन अन्योक्तियों को 'हिन्दी साहित्य में एक अनमोल वस्तु' की संज्ञा दी है। उनकी आध्यात्म सम्बन्धी अन्योक्तियों में रहस्यवादी स्वर सुनायी पड़ता है। प्रकृति और मानव पर कथित उनकी अन्योक्तियाँ नीति से सम्बन्धित हैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टि से नीति और अन्योक्ति काव्य के लेखकों के बीच दीनदयाल गिरि को शीर्ष-स्थान प्राप्त हैं।



भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जन्म-संवत् :-- १६०७ वि०

मृत्यु-संवत् :-- १६४१ वि०

जीवन-वृत्त :- काशी के एक सम्पन्न वैश्यकुल में भाद्र शुक्ल पंचमी संवत् १६०७ को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम गोपालचन्द्र था और वे स्वयं भी गिरिधर दास के नाम से कविता किया करते थे। पाँच वर्ष की अवस्था में ही हरिश्चन्द्र की माता का परलोकवास हो गया और दस वर्ष की अवस्था में उनके पिता की भी मृत्यु हो गयी। उनका विद्यालय से सम्बन्धित अध्ययन छूट गया और घर पर ही रह कर उन्होंने मराठी, गुजराती, बँगला, उर्दू, अँग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। उनमें प्रतिभा थी ही, इस अध्ययन से उसका विकास हुआ और वे आधुनिक काल के जन्मदाता माने गये। भारतेन्दु जी जब पाँच वर्ष के थे तभी एक दोहा उन्होंने अपने पिता को पढ़-कर सुनाया --

"लै ब्योड़ा ठाढ़े भए श्री अनिरुद्ध सुजान।
बानासुर की सैन को, हनन लगे बलवान।।"

इसे सुनकर उनके पिता ने उन्हें सुकवि होने का आशीर्वाद दिया था। १३ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह लाला गुलाबराय की कन्या से हुआ। उनके छोटे भाइ का नाम गोकुलचन्द्र था। भारतेन्दु बाबू की दानशीलता से सम्पत्ति की क्षति होते देख पत्नी ने गोकुलचन्द्र से बँटवारा कराने को कहा। बँटवारे में पिता की पुस्तकों को भारतेन्दु जी ने माँगा, शेष सम्पत्ति उन्होंने गोकुलचन्द्र को दे दी।

भारतेन्दु जी बड़े भावुक थे। उनकी भावुकता की कितनी ही कहानियाँ प्रचलित हैं। स्वदेश-प्रेमी होने के कारण उन्होंने विविध पत्र-पत्रिकाओं का संपादन और संस्थाओं का संस्थापन भी किया। वाराणसी स्थित 'हरिश्चन्द्र विद्यालय' उन्हींके द्वारा स्थापित हुआ। वे राजभक्त तथा देशभक्त, उदार हृदय व्यक्ति थे। उनकी राजभक्ति, देशभक्ति, भाषा प्रेम, सहृदयता, सुधारवादी भावना आदि का परिचय उनकी कृतियों से मिलता है। उनकी सेवाओं के कारण ही भारतीयों ने उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि दी। समाज के बीच से अंधविश्वास, कुरीतियों तथा बुराइयों को हटाने के लिए उन्होंने काव्य-ग्रन्थ लिखे, नाटक-कम्पनी खोल कर लोगों को नाटक दिखाया और भाषणों से लोगों की चेतना को उद्‌बुद्ध किया। वे गुणीजनों का आदर करते थे। भक्त के रूप में वे कृष्ण तथा राधा के उपासक थे। उनके इन समस्त गुणों का परिचय उनके इस पद में मिलता है :-

"सेवक गुनीजन के, चाकर चतुर के हैं
कविन के मीत, चित हिय गुनज्ञानी के।
सीधेन सों सीधे, महा बाँके हम बाँकेन सों
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के।।
चाहिबे की चाह, काहू को न परवाह, नेही
नेह के, दिवाने सदा सूरत निमानी के।
सरबस रसिक के, दास-दास प्रेमिन के
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधारानी के।।"

संवत् १९४१ में वह दुर्भाग्य-वेला आयी जब ऐसे महान साहित्यकार को हिन्दी-जगत खो बैठा। ३५ वर्ष की अल्पायु में इतना अधिक कार्य करने के बाद भारतेन्दु जी सदा के लिए हम सबको छोड़कर परोकवासी हो गए और हम 'प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी' कहते रहते हैं। भारतेन्दु-मण्डल के सदस्यों ने उन्हींके बनाये हुए मार्ग का अनुसरण कर वाणी की झोली को भरने का सफल प्रयास किया, साहित्य की विविध विधाएँ पुष्ट हुईं और भाषा का स्वरूप निश्चित हुआ।

रचनाएँ :- भारतेन्दु जी की छोटी-बड़ी सभी कृतियों की संख्या लगभग १७५ है। इन समस्त कृतियों की सूची भी दे सकता कठिन है। ३५ वर्ष की आयु में इतने ग्रन्थों की रचना करना भारतेन्दु जैसे प्रतिभावान के लिए ही संभव था। उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम उपयोग उनके नाटकों में हुआ है। इन्हीं नाटकों के प्रसङ्ग में उनके कवि-रूप का भी दर्शन होता है। कुछ भक्ति सम्बन्धी स्फुट पदों की भी रचना उन्होंने की है। उनकी रचनाएँ दो भागों में विभक्त हैं- (१) मौलिक :- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चन्द्रावली, विषस्य विषमौषधम, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, अँधेरनगरी, प्रेमजोगिन आदि। (२) अनूदित :- विद्या-सुन्दर, पाखण्ड विडम्बना, धनंजय विजय, कर्पूरमंजरी, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, भारत जननी आदि।

साहित्य-सेवा :- भारतेन्दु जी ने हिन्दी साहित्य की सेवा में अपना सारा जीवन लगा दिया। भाषा के प्रति उनका प्रेम उनके इस दोहा में व्यंजित है।

''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल।।''

उनकी प्रेरणा से ही हिन्दी जन-भाषा बनी। उसकी साहित्य-सेवा का आकलन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कहा है :- ''यद्यपि सबसे अधिक रचना उन्होंने नाटकों की ही की, पर हिन्दी साहित्य के सर्वतोमुखी विकास की ओर भी वे बराबर दत्तचित्त रहें। 'काश्मीर कुसुम', 'बादशाह दर्पण' आदि लिखकर उन्होंने इतिहास-रचना का मार्ग दिखाया। अपने पिछले दिनों में वे उपन्यास लिखने की ओर भी प्रवृत्त हुए थे, पर चल बसे। वे सिद्ध वाणी के अत्यन्त सरस कवि थे।'' उनकी कविताओं में एक ओर शृङ्गार रस की धारा बहती दीख पड़ती है तो दूसरी ओर स्वदेश-प्रेम और समाज-सुधार की भावनाएं तरंगित होती दिखायी पड़ती हैं। उनमें प्राचीन और नवीन का, पौर्वात्य और पाश्चात्य का समन्वय मिलता है। वर्तमान साहित्य की समस्त प्रवृत्तियों का प्रतिफलन उनकी रचनाओं में हुआ हैं। इसीलिए वे हिन्दी साहित्य के 'आधुनिक-युग' के जन्मदाता कहे जाते हैं। उनके पूर्व हिन्दी-गद्य का बिखरा हुआ रूप साहित्यों में मिलता आवश्य है, किन्तु गद्य-साहित्य को भारतेन्दु जी ने ही पुष्ट किया।

शृङ्गार भावना :- प्रेम-वर्णन और शृङ्गार भावनाओं के कथन की दृष्टि से भारतेन्दु का स्वर रसखान और घनानन्द के स्वर से मिलता है। राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन करने में उन्होंने संयोग और वियोग दोनों की ही अभिव्यक्ति की है। वियोग-वर्णन में उनकी वृत्ति अधिक रम सकी है। 'प्रेम-फुलवारी', 'प्रेम तरङ्ग' आदि कृतियों में शृङ्गार-भाव ही पुष्ट हुआ है। प्रेम-वर्णन में रीतिकाल के कवियों का प्रभाव भारतेन्दु जी पर था। अश्लीलता को छोड़कर शेष सभी प्रभावों को उन्होंने स्वीकार किया। इन पदों में इसीलिए कवित्त, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग तथा अलंकार-प्रियता का दर्शन होता है। विरह-वर्णन में अतिशयोक्ति का प्रयोग देखिए :-

काले परे कोस, चलि चलि थक गये पाँव
सुख के कसाले परे, ताले परे, नस के
रोय रोय नैनन में हाले परे, जाले परे

मदन के पाले परे, प्रान बरबस के।।
हरीचन्द अंगहुँ हवाले परे रोगन के
सोगन के भाले परे, तन बल खसके।
पगन में छाले परे, नाँघिबे को नाले परे
तऊ लाल, लाले परे रावरे दरस के।।"

संयोग शृङ्गार का भी कथन उन्होंने किया है। संभोग की तन्मयता का एक उदाहरण :-

'लाल के रंग रंगी तू प्यारी।
या ही तें तन धारत मिस कै सदा, कँसूभौ सारी।।
लाल अधर, कर पद सब तेरे लाल तिलक सिर धारी।
नैनन हूँ में डोरन के मिस झलकत लाल विहारी।।
तन में रही नहीं सुधि तन की, नखशिख तू गिरधारी।
'हरिचन्द' जग विदित भई यह, प्रेम प्रतीति तिहारी।।"

गोपियाँ कृष्ण से होली खेलतीं हैं। जमुना-तट पर राधा-कृष्ण का होली खेलना भी संयोग शृङ्गार का ही परिचय देता है।

भक्ति-भावना :- भारतेन्दु जी कृष्ण-भक्त कवि थे। उनकी कविता में सच्चे भक्त की दीनता और विनयशीलता सर्वत्र दृष्टिगत होती है। वे सदा कृष्ण के रूप में रमे रहना चाहते हैं और उनकी वंशी की ध्वनि सुनते रहना चाहते हैं :-

"बोल्यौ करै नूपुर स्रौननि के निकट सदा
पद तल माहिं मन मेरो कर्यो करै।
बाज्यो करै बंसी-धुनि पूरि रोम-रोम,
मुख मन मुसुकानि मंद मनहिं कर्यो करै।।"

पुष्टिमार्ग के अनुयायी भारतेन्दु जी ने भगवत् कृपा को ही सब कुछ मानकर कहा है :-

"हम तो मोल लिये या घर के,
दास-दास श्रीबल्लभ-कुल के, चाकर राधावर के।"

उन्होंने गोपी भाव से कृष्ण की उपासना की है। वे अपने का कृष्ण के मुख-चन्द्र की चकोरी मानते रहे हैं :-

"एरे ब्रजचन्द तेरे मुख की चकोरी हौं मैं
एरे घनश्याम तेरे रूप की हूँ चातकी।।"

ब्रज के अनुरागवश वे क़ामना करते हैं :-

"ब्रज के लता पता मोहिं कीजै।।"

राष्ट्रभक्ति और राजभक्ति :- भारत दुर्दशा, नीलदेवी आदि में भारतेन्दु जी के देश-प्रेम का अच्छा परिचय मिलता है। इन कृतियों में उन्होंने राष्ट्र के प्राचीन गौरव का कथन करते हुए उसकी

वर्तमान स्थिति पर शोक प्रकट किया है। 'भारत के भुज बल जग रच्छित' बतला कर उन्होंने उसकी वर्तमान स्थिति पर चिन्ता करते हुए व्यंगपूर्ण ढंग पर अँग्रेजों की नीति का भण्डाफोड़ किया है:-

"भीतर भीतर सब रस चूसै
बाहर से तन, मन, धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि साजन नहिं अँग्रेज"

देश की उन्नति के लिए उन्होंने 'करुणानिधि केशव' को सम्बोधन देकर कहा है :-

"कहाँ करुनानिधि केशव सोये
जागत नैकु न जदपि बहुत विधि भारतवासी रोये।"

भारत की रक्षा के लिए वे अर्जुन, भीम आदि योद्धाओं को प्राप्त करना चाहते हैं और व्याकुल होकर कह उठते हैं :-

"कित अरजुन कित भीम, कित करन, नकुल, सहदेव।"

भारतीयों को जगाते हुए उन्होंने कहा है :-

"जागो जागो रे भाई
सोवत निसि बैस गँवाई, जागो जागो रे भाई
निसि को कौन कहै, दिन बीत्यो कालराति चलि आई
....
अबहूँ चेति पकरि राखो किन जो कछु बची बड़ाई
फिर पछिताए कछु नहिं है हैं रहिजैहो मुँह बाई।।"

समाज-सुधार और कुरीति-निवारण :- हास्य-व्यंग के द्वारा भारतेन्दु जी ने भारतीय समाज के बीच स्थित कुरीतियों का उच्छेदन करने का प्रयत्न किया। आलस्य भाव से ग्रस्त, मदिरा पेयी और अन्धविश्वासी भारतीयों का परिचय 'भारत-दुर्दशा' में देकर उन्होंने उनकी भर्त्सना की है। विधवा-विवाह, बाल-विवाह, छूआछूत आदि के सम्बन्ध में उन्होंने अपनी भावना का कथन किया है। बेकारी-समस्या पर विचार करते हुए उन्होंने कहा :-

"तीन बुलाए तेरह आवैं, निज निज विपदा रोय सुनावैं,
आँखौ फूटे भरा न पेट, क्यों सखि सज्जन ! नहिं ग्रेजुएट।"

पढ़ी-लिखी औरतों का अँग्रेजी रंग में रँगकर घूमना समाज के लिए हितकर नहीं हो सकता। उनके इस आडम्बर पर एक व्यंग देखिए :-

"लिखाय नाहीं देत्यो। पढ़ाय नाहीं देत्यो, सैंया फिरंगिन बनाय नाहीं देत्यो"। इसमें छिपा हुआ व्यंग अद्भुत प्रभाव डालता है। 'अन्धेर नगरी' में इस प्रकार के व्यंग अत्यधिक हैं और उनके माध्यम से समाज-सुधार की बातें खुलकर की गयीं हैं। सम्पादक, पुलिस, महाजन, सरकारी कर्मचारी आदि से संबन्धित व्यंग देखिए :-

'चूरन अमले सब जो खावैं, दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।

चूरन सभी महाजन खाते, जिससे जमा हजम कर जाते।।
चूरन खाते एडिटर जात, जिनके पेट पचै नहिं बात।
चूरन पुलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।।'

प्रकृति-वर्णन :- भारतेन्दु जी ने वस्तु-वर्णन और प्रकृति-वर्णन में भी अद्वितीय सफलता प्राप्त की है। गंगा का रूप-वर्णन करते हुए उनके पवित्र जल का सुन्दर चित्र उन्होंने प्रस्तुत किया है :-

"नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक सी सोहत,
बिच-बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति।"

जमुना-छवि-वर्णन में भी जमुना का वर्णन आलम्बन रूप में ही किया गया है।

प्रकृति को उद्दीपन रूप में भी भारतेन्दु जी ने देखा है। एक सखि चन्दा को उदित हुआ देखकर कहती है :-

"देखि सखी चन्दा उदय भयो,
कबहूँ प्रगट लखात, कबहूँ बदरी की ओट भयो।
करत प्रकाश कबहूँ कुंजन में, छन-छन छिप-छिप जाय,
मनु प्यारी मुख-चन्द देखि कै घूँघट करत लजाय।।"

प्रकृति सापेक्ष और निरपेक्ष दोनों ही रूपों में भारतेन्दु की कविताओं में चित्रित है। प्रकृति का अलंकार रूप में भी कथन उन्होंने किया है। यमुना की महिमा के कथन में अलंकार का ही प्राधान्य दीख पड़ता है :-

"कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत,
कै ब्रज-तिय-गन-वदन-कमल की झलकत झाईं।।"

प्रकृति-वर्णन के बीच ही ऋतु-वर्णन, होली-वर्णन आदि की ओर भी भारतेन्दु जी ने ध्यान दिया था।

कला पक्ष :- कविता-रचना के लिए भारतेन्दु बाबू ने ब्रजभाषा का ही समर्थन किया। उनकी कुछ कविताएँ खड़ीबोली में भी हैं, किन्तु अधिकांश ब्रजभाषा में ही लिखी गयीं हैं। ब्रजभाषा की क्लिष्टता को हटाकर उन्होंने उसे जन-बोधगम्य बनाया है। उनकी खड़ीबोली में अन्य भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु ये शब्द हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल बना लिए गए हैं। उसमें मुहावरों-लोकोक्तियों का भी प्रयोग मिलता है। गद्य में खड़ीबोली को प्रधानता मिली है, किन्तु पद्य में ब्रजभाषा को ही अधिक महत्त्व मिला है।

भारतेन्दु जी ने कवित्त, सवैया, छप्पय, दोहा, सोरठा आदि परम्परा-प्रचलित छन्दों का तो प्रयोग किया ही, साथ ही लोक में प्रचलित छन्दों-लावनी, कजली- आदि का भी उपयोग किया। हिन्दुओं की स्थिति पर विचार करते हुए कजली छन्द में उन्होंने कहा --

"टूटै सोमनाथ कै मंदिर कोऊ लागै न गोहार।
दौरो दौरो हिन्दू हो सब गौरा करै पुकार।।"

इन पंक्तियों में 'कजरी' छन्द का ही प्रयोग है। इसी प्रकार 'लावनी' 'ठुमरी' आदि को भी उन्होंने भावाभिव्यक्ति के लिए स्वीकार किया है।

उन्होंने गजल की भी रचना की हैं।

रस की दृष्टि से उनके काव्यों में लगभग सभी रसों का कथन है। भक्तिपूर्ण कविताओं में यदि शान्त और शृङ्गार रस का प्रयोग हुआ है तो सामाजिक कविताओं में हास्य, करुण आदि रसों का, किन्तु भारतेन्दुजी मुख्यतः शृङ्गार और भक्ति रस के ही कवि थे।

उनकी कविताओं में अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उपमा, रूपक, सन्देह, उत्प्रेक्षा आदि उनके प्रिय अलंकार रहे हैं। इनका उदाहरण देखिए :-

उपमा-- 'नव उज्ज्वल जलधार हार हीरक-सी सोहत'।

रूपक-- 'सखी मेरे नयना भये चकोर
अनुदित निरखत श्याम-चन्द्रमा सुन्दर नन्दकिशोर।"

सन्देह-- 'कै पिय-पद-उपमान जानि यहि निज उर धारत।"
कै मुख करि बहु भृङ्गन-मिस अस्तुति उच्चारत।।"

उत्प्रेक्षा-- "धोवत सुन्दरि वदन करन अति ही छवि पावत
वारिज नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत।"

भारतेन्दु जी की कविताओं की मार्मिकता और रसमयता ने उन्हें सर्वप्रिय बना दिया। उन्होंने अपने प्रगतिशील विचारों से देश-सेवा का कार्य किया और भाषा तथा साहित्य को समृद्ध बनाया। निश्चित ही वे एक असाधारण प्रतिभा और व्यक्तित्व से पूर्ण साहित्यकार थे। भाषा और भाव दोनों की ही दृष्टि से वे आधुनिक काल के साहित्य के जन्मदाता माने जाते हैं। आज का साहित्यिक-जगत उनके सम्मुख नत-मस्तक है।



अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

जन्म-संवत् :-- १६२२ वि०　　　　　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- २००४ वि०

जीवन-वृत्त :- आजमगढ़ जिला में स्थित निजामाबाद में संवत् १६२२ वि० में 'हरिऔध' जी का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम भोलासिंह था। जाति के सनाढ्य ब्राह्मण होते हुए भी ये सिक्ख धर्म के मानने वाले थे। 'हरिऔध' नाम इन्हें इनके सिक्ख गुरु बाबा सुमेरसिंह ने ही दिया। अयोध्यासिंह का पूर्ववर्ती शब्द 'अयोध्या', हरिऔध का परवर्ती शब्द 'औध' बना और 'सिंह' को 'हरि' रूप देकर 'औध' के पूर्व लगाने की क्रिया संपादित हुई। इस प्रकार उनका 'अयोध्यासिंह' नाम 'हरिऔध' रूप में बदल गया। सात वर्ष की अवस्था में उन्होंने मिडिल स्कूल में प्रवेश लिया। सं० १६३५ में मिडिल पास कर वे काशी स्थित क्वींस कालेज में अध्ययन के लिए प्रविष्ट हुए। परिस्थितियोंवश उन्हें विद्यालय छोड़ देना पड़ा। घर पर ही रहकर उन्होंने फारसी, उर्दू और संस्कृत का अध्ययन किया। सं० १६४१ में वे निजामाबाद तहसीली स्कूल में अध्यापक हो गये। सं० १६४६ में वे कानूनगो के पद पर नियुक्त हुए। सं० १६८० में उन्होंने काशी विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग में अध्यापन किया। संवत् २००४ वि० में आजमगढ़ में ही उनका गोलोकवास हो गया।

रचनाएँ :- हरिऔध जी की रचनाएँ अनूदित और मौलिक दो भागों में विभक्त हैं। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, समालोचना आदि ग्रन्थों का भी प्रणयन किया। उनके काव्य-ग्रन्थों में 'प्रिय-प्रवास' और 'बैदेही-बनवास' को प्रबन्ध-काव्य के रूप में विशेष ख्याति मिली है। स्फुट कविता-संग्रहों से सम्बन्धित उनके ग्रन्थ हैं :- चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, कर्मवीर, ग्राम-गीत, रसिक-रहस्य, उद्बोधन, बोलचाल, पद्य-प्रसून, रस-कलस, कल्पलता, ऋतु कुमार, प्रेम पुष्पोपहार, प्रेम प्रपंच , प्रेमाम्बु-प्रवाह, प्रेमाम्बुवारधि, धरांगजा आदि।

साहित्य-सेवा :- हरिऔध जी ने कविता को स्वछन्द प्रवाह से युक्त बनाया। उनकी कविताओं ने ही खड़ी-बोली को काव्य-भाषा के रूप में परिष्कृत किया। 'प्रियप्रवास' खड़ीबोली का सर्वोत्तम महाकाव्य है। इस कृति में संस्कृत छंद-वृत्तों को स्वीकृति देकर हरिऔध जी ने हिन्दी में संस्कृत-वृत्त के छन्दों को प्रतिष्ठित किया।

द्विवेदी-मण्डल में होने के कारण हरिऔध जी की भावना सुधारवादी थी। उनके काव्यों में हरिजनोद्धार, हिन्दू-जागृति, हिन्दू-मुस्लिम एकता आदि आदर्श भी व्यक्त हुए हैं। किसी 'वाद' के चक्कर में वे कभी नहीं रहे। उनकी स्वाभाविक सहृदयता के कारण उनके काव्यों में जीवन-रहस्य का उद्घाटन अपने आप ही हो गया है। आर्य संस्कृति में निष्ठा होने के कारण वे चार आश्रमों को मान्यता देते थे। निष्काम-सेवा को ही वे आदर्श मानते थे।

आरम्भ में हरिऔध जी की रचनाएँ ब्रजभाषा में ही लिखीं गयीं थीं। ब्रजभाषा में ही वे कृष्ण विषयक कविता लिखा करते थे; किन्तु बाद में वे खड़ी बोली की ओर झुके; 'प्रिय प्रवास' में उन्होंने राधा के रमणीरूप को भुलाकर उन्हें धर्म-सेविका, लोक-सेविका रूप में देखा। उन्होंने नायिका-भेद का क्रम भी बदल दिया। उन्होंने देश, जाति, परिवार और पति के प्रेम के आधार पर नायिकाओं के विभिन्न रूपों का वर्णन किया। प्रिय-प्रवास में कवि ने कृष्ण को भी रसिक रूप में न चित्रित कर एक त्यागी पुरुष के रूप में ही चित्रित किया है।

रस-कलस, चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, बोलचाल, पारिजात, वैदेही-वनवास आदि लिखकर हरिऔध जी ने हिन्दी साहित्य की श्री-वृद्धि की है। 'प्रियप्रवास' लिखकर उन्होंने कवियों को एक नयी दिशा दी है।

प्रकृति-चित्रण :- प्रकृति की नैसर्गिक छटा का चित्रण हरिऔध जी ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। प्रिय्र-प्रवास तो ऐसे वर्णनों से भरा पड़ा है। श्रीकृष्ण का प्रकृति के प्रति प्रेम जताते हुए कहा गया है :-

"मुकुन्द आते जब थे आराम में
प्रफुल्ल हो तो करते विहार थे।
विलोकते थे सुविलास बारि का
कलिन्दजा के कल-कूल पै खड़े
समोद बैठे गिरि सानु पै कभी
अनेक थे सुन्दर दृश्य देखते
बने महा उत्सुक वे कभी छटा
विलोकते निर्झर नीर की रहे।"

प्रिय-प्रवास की रचना का आरंभ ही प्रकृति के वर्णन से हुआ है। 'दिवस का अवसान समीप था, गगन था कुछ लोहित हो चला' की पृष्ठभूमि में ही सम्पूर्ण काव्य रचा गया है।

सापेक्ष प्रकृति का वर्णन भी प्रिय-प्रवास में हुआ है। तृतीय सर्ग में माँ यशोदा की विकलता देख प्रकृति भी रो पड़ती है :-

"विकलता लख के ब्रज देवि की
रजनी भी करती अनुताप थी
निपट नीरब ही मिस ओस के,
नयन से गिरता बहु वारि था।"

सूर्योदय को देख राधा अनुभव करती हैं कि मानो 'सकल ब्रजधरा' को फूँक देने के लिए नभ 'आग का गोला' उगल रहा है।

प्रकृति को चेतन मानकर भी उसका कथन हरिऔध जी ने किया है। राधा ने हवा को 'बहन' का सम्बोधन देकर उससे दूतत्त्व कराया है। प्रकृति की सहायता से उन्होंने रहस्यवादी अभिव्यक्ति भी की है। 'कौन रँगरेज रँगता है इन फूलों को' में कवि की रहस्यवादी भावना का ही परिचय मिलता है।

काव्यकला :- हरिऔध जी ने भी पूर्वकालिक कवियों की तरह अपने काव्यों में नारी के शारीरिक विकास का वर्णन किया है। 'स्वकीया' का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा है-- "पीन भये उर-भाव मनोहर, केहरि-सी कटि खीन भई है।" परकीया का वर्णन करते हुए भी उन्होंने पूर्ववर्ती प्रभाव का परिचय दिया है :-

"चहूँ ओर चरचा चबाइन चलायो अति
पायन परी है खरी बेरी लोक-लाज की।"

रस की दृष्टि से हरिऔध जी ने विविध रसों का प्रयोग किया है, किन्तु मुख्य रस हैं- करुण, विप्रलम्भ, वात्सल्य और शांत। प्रिय-प्रवास में कृष्ण और राधा के त्याग तथा लोक-सेवा के भाव को

व्यक्त कर उन्होंने शान्त रस की धारा बहा दी है।

प्रिय-प्रवास, प्रवास-विप्रलम्भ से पुष्ट काव्य है। कृष्ण के प्रवास ने गोपी-कृष्ण तथा कृष्ण-राधा के बीच विरह-भाव उत्पन्न किया है। आरम्भ में तो गोपियों को तथा राधा को कृष्ण के मिलन की आशा रहती है, किन्तु बाद में यह आशा समाप्त हो जाती है और करुण रस का स्थायी भाव शोक ही उनमें दिखायी पड़ने लगता है। इसीलिए आरम्भ में प्रवास-विप्रलम्भ और बाद में करुण-विप्रलम्भ। शोकाकुल राधा यमुना की धारा से कहतीं हैं :-

> *"विधिवश यदि तेरी धार में आ गिरूँ मैं*
> *मम तन ब्रज की ही मेदिनी में मिलाना*
> *उस पर अनुकूला हो बड़ी मंजुता से*
> *कल कुसुम अनूठी श्यामता के उगाना"*

इस भाव में बड़ी सात्विकता है। पवन के द्वारा राधा ने कृष्ण तक संदेश भेजा है। उनकी इस मनःस्थिति में विप्रलम्भ भाव का ही पोषण हुआ है, किन्तु हरिऔध जी ने विप्रलम्भ के कथन में भी मर्यादा का ध्यान रखा है। वियोगिनी राधा को तारे गिनते और करवट बदलते हुए न दिखाकर उन्होंने उन्हें लोक-सेवा में लीन दिखाया है।

माँ यशोदा के आन्तरिक भावों के विश्लेषण में वात्सल्य भाव का सुन्दर चित्र प्रस्तुत है। प्रातः ही बालक कृष्ण को मथुरा जाना है। इस चिन्ता में कृष्ण के पास बैठी वे रो रही हैं। बार-बार सुत के मुख-कन्ज को वे देखती हैं :-

> *"पट हटा सुत के मुख-कन्ज*
> *विकचता जब थीं अवलोकती*
> *विवश-सी तब थीं फिर देखतीं*
> *सरलता, मृदुता, सुकुमारता"*

कृष्ण के चले जाने के बाद माँ यशोदा नित्य देवताओं को मनाती और ज्योतिषियों से पूछतीं थीं कि उनका पुत्र कब लौटेगा :-

> *"प्रतिदिन कितने ही देवता थीं मनातीं*
> *बहु यजन करातीं विप्र के वृन्द से थीं।*
> *नित घर पर नाना ज्योतिषी थीं बुलाती*
> *निज प्रिय-सुत आना पूछने को यशोदा।।"*

कृष्ण के पास से अकेले ही जब नन्द लौट आते हैं तो यशोदा निराश होकर मूर्च्छित हो उठतीं हैं और संज्ञा आने पर पूछतीं हैं :-

> *"प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है ?*
> *दुख जलनिधि डूबी का सहारा कहाँ है ?"*

उनकी कृतियों में अलंकारों का प्रयोग बड़े स्वाभाविक ढंग से हुआ है तथा अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, यमक आदि विविध अलंकार भाव के आवेश में स्वयं ही उनकी कविता में आ गए हैं। ऐसे कुछ अलंकारों को देखिए :-

अनुप्रास-- "कमल लोचन क्या कल आ गये
पलट क्या कु-कपाल क्रिया गई।"

उपमा-- "नव-प्रभा-परमोज्ज्वल-लीक-सी
गतिवती-कुटिला-फणिनी समा।"

रूपक -- "ब्रजधरा एक बार इन्हीं दिनों
पतित थी दुख-वारिधि में हुई,
पर उसे अवलम्बन था मिला
ब्रज-विभूषण के भुज-पोत का।"

उत्प्रेक्षा-- "लस रहीं लहरें रस-मूल थी
सब सरोवर के कल-अङ्क में
प्रकृति के कर थे लिखते मनो
कल-कथा कमनीय ललामता।"

यमक -- "नित वह कलपाता है मुझे काल हो क्यों
जिस बिन कल पाते हैं नहीं प्राण मेरे"

इनके अतिरिक्त काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का भी प्रयोग हरिऔध जी ने किया है। यदि प्रिय-प्रवास में संस्कृतनिष्ठ भाषा का और संस्कृत के द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है तो 'चोखे चौपदों' में अत्यन्त सरल और ठेठ मुहावरेदार भाषा का तथा उर्दू के 'फाइलालून मफाइलुन फेलन' के कैंडे के छन्दों का व्यवहार हुआ है। उनकी भाषा और छन्द का नमूना देखिए :-

संस्कृत बहुल सामासिक भाषा और संस्कृत छन्द :-

"सद्वस्त्रा सदलंकृता गुणयुता सर्वत्र सम्मानिता
रोगी-वृद्ध-जनोपकार-निरता सच्छास्त्रचिन्तापरा"

ठेठ मुहावरेदार भाषा और उर्दू कैंडे के छन्द :-

"आँख उनकी राह में देवें बिछा,
प्यार वाली आँख से उनको लखें।
आँख जिससे जाति की ऊँची हुई,
आँख पर क्या आँख में उनको रखें।।"

गणेश-वन्दना आदि के लिए उन्होंने कवित्त शैली को स्वीकार किया है।

भाषा और शैली की दृष्टि से अरिऔध जी को द्विगुणात्मक कला का कवि कहा गया है। वे इस दृष्टि से दो शीर्ष बिन्दुओं को मिलाते रहे हैं। एक ओर उन्होंने संस्कृत के छन्दों को स्वीकार किया है, दूसरी ओर उर्दू कैंडे के छन्द लिखे हैं। उनकी आरम्भिक कविता व्रजभाषा में है तो परवर्ती कविता खड़ीबोली में। प्रिय-प्रवास में यदि संस्कृत-निष्ठ सामासिक पदावली का व्यवहार है तो 'चोखे-चौपदे' में 'ठेठ मुहावरेदार भाषा का।' उनकी इस कला पर ही मुग्ध होकर निराला ने उन्हें हिन्दी का सार्वभौम कवि कहा था।



जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

जन्म-संवत् :-- १६२३ वि०　　　　　　　　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- १६८६ वि०

जीवन-वृत्त :- भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी संवत् १६२३ को काशी के अग्रवाल वैश्य परिवार में रत्नाकर जी का जन्म हुआ। उनके पिता पुरुषोत्तम दास फारसी के उत्कृष्ट विद्वान थे। उनके पूर्वज पंजाब स्थित पानीपत के निवासी थे। मुगलों के पतन के बाद वे लखनऊ आकर रहने लगे। उनके परदादा सेठ तुलाराम जी लखनऊ के सुप्रसिद्ध रईस थे। सेठ तुलाराम ही बाद में काशी आकर बस गये। पूर्वजों के रक्त में मान-मर्यादा की जो भावना थी वह रत्नाकर जी में भी उसी प्रकार बनी रही। पुरुषोत्तम दास के साथ 'रत्नाकर' भी भारतेन्दु जी के यहाँ जाया करते थे। वहाँ की साहित्यिक गोष्ठियों ने उनके हृदय पर बड़ा प्रभाव उत्पन्न किया। इस प्रभाववश वे कविता-प्रेमी हो गये और 'जकी' नाम से उन्होंने फारसी में कविताएं लिखीं। फारसी उनकी बी०ए० कक्षा का विषय था। उनके उस्ताद थे मिर्जा मुहम्मद हसन फ़ायज़।

संवत् १६५७ में वे अवागढ़ राज के कोषाध्यक्ष नियुक्त हुए। संवत् १६५६ में वे अयोध्या-नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी हुए। इस समय तक वे ब्रजभाषा में अच्छी कविता लिखने लगे थे। सं० १६७६ से उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति को निखार प्राप्त हुआ। इस समय तक खड़ीबोली में रचनाएँ आरम्भ हो गयीं थीं किन्तु रत्नाकर जी अब भी ब्रजभाषा में ही लिखते रहे। उन्होंने खड़ीबोली के पक्षपातियों को हेय दृष्टि से देखा और 'बनावटी साहित्यकार' नाम से उनकी भर्त्सना करते हुए एक कविता लिखी। जीवन के अन्तिम समग में वे जलवायु-परिवर्तन के लिए हरिद्वार चले गये। वहीं १६८६ वि० में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके 'गंगावतरण' पुस्तक पर अयोध्या की रानी ने उन्हें पुरस्कृत किया था। एक हजार रुपये के इस पुरस्कार को उन्होंने नागरी प्रचारिणी सभा को दे दिया। हिन्दुस्तानी एकेडमी से भी उन्हें इस पुस्तक पर पाँच सौ रुपये का पुरस्कार मिला था। 'बिहारी-सतसई' का सम्पादन भी रत्नाकर जी ने बड़ी कुशलता से किया। सूर-सागर के सम्पादन में भी उनका बड़ा हाथ रहा। इन कृतियों से उनके सम्पादनकला और समालोचक-बुद्धि का परिचय मिलता है।

काव्य-रचनाएँ :- उनकी रचनाएँ दो श्रेणियों में विभक्त हैं -- (१) प्रबन्ध-काव्यात्मक प्रवृत्ति पूर्ण रचनाएँ (२) मुक्तक वृत्तिपूर्ण रचनाएँ। प्रबन्ध-काव्य के रूप में उनकी तीन पुस्तकेंआयीं :- हरिश्चन्द्र, गंगावतरण, उद्धवशतक। मुक्तक रचनाओं की संख्या ६ हैं :- हिंडोला, साहित्य रत्नाकर, घनाक्षरीतिलक रत्नाकर, शृंगार लहरी, गंगाविष्णु लहरी, रत्नाष्टक, वीराष्टक, कल-काशी और समालोचनादर्श।

इन मौलिक रचनाओं के अतिरिक्त उन्होंने 'हम्मीर हठ', कृपाराम कृत 'हित तरंगिनी', दूलह कवि कृत 'कंठाभरण' और 'बिहारी रत्नाकर' का सम्पादन भी किया।

निर्गुण का खंडन :- रत्नाकरजी कृत उद्धव-शतक में भ्रमरगीत की परंपरा का निर्वाह हुआ है। इन भ्रमरगीतों में सगुणोपासना और भगवत्प्रेम की अनन्यता का प्रतिपादन है तथा योग और ब्रह्मवाद का खण्डन है। निर्गुणब्रह्म का खण्डन करने में उन्होंने कहीं-कहीं नन्ददास के समान तर्क-पद्धति का भी आश्रय लिया है। तर्कपूर्ण पद्धति पर गोपियाँ कहतीं हैं :-

"मान्यौ हम कान्ह ब्रह्म एक ही कह्यौ जो तुम,
तौहूँ हमैं भावती न भावना अन्यारी की।
जैहें बनि-बिगरि न वारिधिता वारिधि की,
बूँदता बिलैहैं बूँद बिवस विचारी की।।"

उनकी भोली उक्तियाँ देखिए :-

"ब्रह्म मिलिबै तै कहा मिलबै बतावौ हमैं,
ताकौ फल जब लौं मिलै ना नन्दलाला हूँ ।"

निर्गुण के खण्डन और सगुण के मण्डन के लिए प्रयुक्त नन्ददास के भ्रमर-गीतों में तर्क की प्रधानता है, सूरदास के भ्रमर-गीतों में भावना की गहराई है और रत्नाकर के भ्रमर-गीतों में दोनों का संयोग है। सूरदास की गोपियों में यदि भोलापन है, नन्ददास की गोपियों में यदि तार्किकता है तो रत्नाकर की गोपियों में चंचलता और चपलता है। चंचलता और चपलता के आवेग में निकली हुई उनकी उक्ति देखिए :-

'चेरी हैं न ऊधौ ! काहू ब्रह्म कै बबा की हम
सूधौ कहे देति हम कान्ह की कमेरी हैं।"

भाव-पक्ष :- भाव-पक्ष की दृष्टि से रत्नाकर की कविताओं में पौराणिक आख्यानों को अधिक महत्त्व मिला हैं। सत्य हरिश्चन्द्र, गंगावतरण, उद्धव-शतक आदि रचनाओं में भक्ति-भाव को बड़े सरस एवं आलंकारिक पद्धति पर व्यक्त किया गया है। इसीलिए तो यह कहा जाता है कि रत्नाकर जी ने भक्ति-काल की आत्मा को रीतिकाल के कलेवर में रखकर अभिव्यक्त किया है। उद्धव-शतक हिन्दी साहित्य की एक अद्भुत कृति है। इसमें कवि ने श्रीकृष्ण को भी गोपियों के विरह में दुखी दिखाया है। अबतक के कृष्ण-भक्त कवियों ने गोपियों को ही विरह-दुख से दुखी दिखलाया था। घनानन्द ने--

"हौ मनमोहन मोहे कहू पै ना
बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम'

जैसी पंक्तियों में कृष्ण को 'मोहे कहू पै न' ही कहा है, किन्तु कवि रत्नाकर ने कृष्ण को भी गोपी-विरह में दुखी दिखलाया है। ब्रज की बात चलते ही कृष्ण के नेत्र में अश्रुसलिल प्रवाहित हो उठता है :-

"सील सनी सुरुचि सुबात चलै पूरब की,
औरै ओप उमगी दृगानि मिदुराने तैं।
कहै रत्नाकर अचानक चमक उठी,
उर घनश्याम कैं अधीर अकुलाने तैं।।"

कृष्ण को भी विरह-दुख में दुखी दिखाकर रत्नाकर ने कृष्णकाव्य में एक नया अध्याय जोड़ा है।

शृङ्गार-भावना :- शृङ्गार रस को रसराज कहा गया है। मधुर भाव की भक्ति में भी आराध्य के दाम्पत्य और प्रणय भावों का कथन करने में शृङ्गार रस का ही प्रयोग होता है। रत्नाकर जी के गंगावतरण और उद्धव शतक में इस रस की पुष्टि अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुई है। शृङ्गार के दो भेदों-संयोग और वियोग-में से रत्नाकर जी ने वियोग शृङ्गार-मूलक काव्य की ही रचना की है। संयोग

का चित्र स्वर्ग से उतरती हुई गंगा के प्रसंग में प्रस्तुत किया गया है। शंकर को देखकर गंगा के हृदय का 'रति' स्थायी भाव जग जाता है और संचारियों के संयोग से शृङ्गार की अद्भुत छटा दिखायी देने लगती है :-

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अङ्ग में,
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग में।
....
प्रकटत सोई अनुभाव भाव औरै सुखकारी,
है थाई उत्साह भयौ रति कौ संचारी।
....
विचरनि लागी गंग जटा-गहर-बन-बीथिनि,
लहति सम्भु-सामीप्य, परम सुख दिननि निसीथनि।'

संयोग शृङ्गार की भावना जहाँ भी आयी है, उसका कथन बड़े कौशल से रत्नाकर जी ने किया है। वियोग-शृङ्गार की भावनाओं से तो 'उद्धव-शतक' भरा पड़ा है। वियोग के ताप में गोपियाँ और कृष्ण दोनों ही जलते रहते हैं। व्रज की बात चलते ही कृष्ण रो पड़ते हैं :-

''सील सनी सुरुचि सुबात चलै पूरब की,
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं।''

उन्हें 'जमुना कछारनि की रंग रस राराने की' स्मृति आने लगती है और उनका गला भर आता है तथा उनकी पुतलियों से प्रेम चू पड़ता है। वे थोड़ा-बहुत 'बैननि सौं' कहते हैं, अनेक भावों को 'नैननि सौं' कहते हैं और जो भाव शेष रह जाते हैं उन्हें 'हिंचकीन सौं' कह देते हैं।

''नैकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सों।
रही सही सोऊ कह दीन हिंचकीन सों।।''

गोपियों में भी विरह की तन्मयता कम नहीं है। ऊधव के आने का संदेश पाकर गोपियाँ उत्सुकतावश बाबा नन्द के द्वार पर दौड़ी आती हैं। सबका एक ही प्रश्न होता है- 'हमको लिख्यो है कहा।' वे विरह के आवेश में ऊधव को फटकारतीं हैं, नन्द की भर्त्सना करतीं हैं और अंत में अवश होकर कह बैठती है :-

''सहिहैं तिहारे कहै साँसति सबै पै बसि,
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगो।।''

कृष्ण और गोपियों की विरह-वेदना में वियोग-शृङ्गार का जो पोषण हुआ है, उसके कारण 'उद्धव-शतक' हिन्दी-साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान का अधिकारी हो गया है।

कला-पक्ष :- रत्नाकर जी को रस-सिद्ध कवि माना जाता है। विविध रसों में रचना कर उन्होंने अपनी भावुकता और अभिव्यक्ति की क्षमता का परिचय दिया है। शृङ्गार रस के दोनों पक्षों-संयोग और वियोग-का कथन उनकी कृतियों में हुआ है। अन्य रसों की भी पुष्टि उन्होंने की है। कुछ रसों में सिद्ध उनकी सफलता देखिए :-

रौद्र और वीर रस :-

"सिंव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे।
बाढ़ी गंग उमंग-भंग पर उर अभिलाषे।।
....
तमकि ताकि भुज-दण्ड चण्ड फरकत चित चोपे।
महि दबाइ दुहुँ पाँय कछुक अंतर सौं रोपे।।
....
बल विक्रम पौरुष अपार दरसत अंग-अंग तैं।
वीर, रौद्र दोउ रस उदार झलकत रंग-रंग तैं।।"

भयानक रस :-

"भरके भानु तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके,
हरके वाहन रुकत नैकु नहिं बिधि हरि हर के।
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय थर के,
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके।।"

करुण रस--

"अंचल फारि लपेटि मृतक फूँकन ल्याई है,
हा! हा! एती दूरि बिना चादर आई है।
दीन्हों कफनहि फारि लखऊ सब अंग सुकत है,
हाय चक्रवर्ती को सुत बिन कफन फुकत है।"

हास्य रस :-

"सीता असगुन कौं कटाई नाक एक बेरि,
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है।
....
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ,
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है।"

भाषा की दृष्टि से रत्नाकर जी शुद्ध ब्रजभाषा के कवि थे। उनपर बिहारी, पद्माकर, सेनापति आदि कवियों का प्रभाव था। उनकी भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का सुन्दर प्रयोग है। 'लाइ लाइ पाती छाती कबलौं सिरैंहै हाय', 'छेदि छेदि छाती छलनी कै बैन बाननि सौं' जैसे प्रयोगों में उनकी भाषा का लोकोक्ति-समन्वित रूप देखने को मिलता है। उनकी भाषा में चित्रात्मकता का विशेष गुण पाया जाता है। चित्रविधान की क्रिया देखिए :-

"उझकि उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै,
पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि सबै लगीं।
हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा,
हमको लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं।

कलापक्ष की दृष्टि से अलंकारों पर विचार करना भी आवश्यक हो जाता है।रत्नाकर जी की ...नें में अनुप्रास, यमक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, रूपक आदि का सुन्दर प्रयोग हुआ है। इन अलंकारों का

उदाहरण देखिए :-

अनुप्रास-- 'सील सनी सुरुचि सुबात चलै पूरब की
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं।'

यमक-- "बारन कितेक तुम्हें बारन कितेक करैं,
बारन उबारन है, बारन बनौ नहीं।"

उत्प्रेक्षा-- "मखराखन को रंग पाय नरपति हरियाने,
मानो सूखत सालि-खेत पर घन घहराने।'

श्लेष-- "सील सनी सुरुचि सुबात चलै पूरब की,
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तै।"

रूपक-- "चलत न चार्‌यो भाँति कोटिनि बिचार्‌यौ तऊ,
दाबि दाबि हार्‌यौ पै न हार्‌यो टसकत है।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली,
चाह-चिमटी हूँ सों न खैंचो खसकत है।"

सन्देह, उदाहरण आदि विविध अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग रत्नाकर जी की कृतियों में मिलता है। उक्ति-वैचित्र्य तो उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है ही।

कलापक्ष और भावपक्ष का जैसा सुन्दर संतुलन कवि रत्नाकर की रचनाओं में हुआ है उसके आधार पर उन्हें ब्रजभाषा का, आधुनिक-काल का, सर्वश्रेष्ठ कवि कहा जा सकता है।



राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

जन्म-संवत् :-- १६४३ वि०

मृत्यु-संवत् :-- २०२१ वि०

जीवन-वृत्त :- भगवद्भक्त, हिन्दी-काव्य-प्रेमी वैश्य परिवार में मैथिलीशरण गुप्त का जन्म संवत् १६४३ वि० में हुआ। उनके पिता सेठ रामचरण मर्यादा पुरुषोत्तम राम के बड़े भक्त थे। गुप्त जी की जन्मभूमि चिरगाँव जिला झाँसी है। गुप्त जी की शिक्षा-दीक्षा घर पर ही हुई। उन्होंने १५-१६ वर्ष की वय में ही कविता करना आरम्भ कर दिया था। प्रारम्भ में उनकी कविताएं कलकत्ता से निकलने वाली वैश्यों की जातीय पत्रिका 'वैश्योपकारक' में प्रकाशित होती रहीं। विद्यालय में अंग्रेजी के माध्यम से इन्होंने नवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद घर पर ही शिक्षा और अध्ययन का कार्य चलता रहा। एक बार इन्होंने अपने पिता की पुस्तिका में एक छप्पय लिख दिया। उसे पढ़कर उनके पिता बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें श्रेष्ट कवि होने का आशीर्वाद दिया। उनकी 'हे भक्त' शीर्षक कविता से प्रभावित होकर महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उन्हें अपना शिष्य बनाया। द्विवेदी जी की देख-रेख में गुप्त जी का कविता लिखने का क्रम चलता रहा और इन कविताओं का प्रकाशन 'सरस्वती' में होता रहा। गुप्त जी स्वभाव से बड़े सरल प्रकृति के व्यक्ति थे। राष्ट्रीय भाव उनके जीवन और उनकी कविताओं में भरा पड़ा है। असहयोग आन्दोलन में उन्होंने जेल-यात्रा भी की थी। 'भारत-भारती' की रचना कर गुप्त जी ने राष्ट्रकवि का पद प्राप्त किया। सन् १६४८ में आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें आनरेरी डी० लिट० की उपाधि दी। राष्ट्रपति द्वारा आपको राज्य-परिषद का सदस्य मनोनीत किया गया। 'साकेत' नामक पुस्तक पर गुप्त जी को 'मंगला-प्रसाद पारितोषिक' मिला था। १२ दिसम्बर, १६६४ ई० को इस यशस्वी कवि का निधन हो गया। उनकी रचनाएँ हमारा मार्ग-दर्शन करती रहेंगी।

रचनाएँ :- गुप्त जी की रचनाएँ दो प्रकार की हैं-(१) मौलिक (२) अनूदित। उनकी मौलिक पुस्तकें हैं :- 'रंग में भंग', 'भारत-भारती', 'जयद्रथ बध', 'पंचवटी', 'पद्य-प्रबन्ध', 'शकुन्तला', 'पत्रावली', 'वैतालिक', 'किसान', 'स्वदेश-संगीत', 'गुरुकुल', 'हिन्दू', 'शक्ति', 'सौरन्ध्री', 'वक-संहार', 'वन-वैभव', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'सिद्धराज', 'नहुष', 'मौर्य-विजय', 'मंगल-घट', 'मेघनाद बध', 'हिडिम्बा', 'अंजलि और अर्ध्य', 'प्रदक्षिणा', 'काबा-कर्बला', 'कुणालगीत', 'अर्जन और विसर्जन', 'अजित' आदि। 'जयभारत' गुप्त जी का सुन्दरतम महाकाव्य माना जाता है। इन पुस्तकों में जयद्रथ- वध, भारत भारती, सिद्धराज, साकेत, यशोधरा और पंचवटी को विशेष ख्याति मिली है।

अनूदित पुस्तकों में कुछ काव्य-ग्रन्थ हैं और कुछ नाटक। विरहिनी-व्रजांगना, वीरांगना, मेघनाद बध, प्लासी युद्ध, उमर खय्याम की मधुशाला आदि अनूदित काव्य-ग्रन्थ हैं। स्वप्न-वासवदत्ता, पृथ्वी-पुत्र, चन्द्रहास, अनघ, तिलोत्तमा आदि नाटक तथा पद्य-रूपक के अनुवाद हैं।

कथावस्तु की दृष्टि से गुप्त जी की कविताओं को ६ कोटियों में बाँटा जा सकता है--

(१) राष्ट्रीय-- भारत भारती, हिन्दू, किसान, वैतालिक, स्वदेश-संगीत, मंगल घट, जयभारत आदि।

(२) ऐतिहासिक घटनापूर्ण-- गुरुकुल, सिद्धराज, कुणाल, काबा-कर्बला, रंग में भंग, पृथ्वी, अजित आदि।

(३) महाभारत सम्बन्धी-- जयद्रथ-वध, वक-संहार, सौरंध्री, द्वापर, हिडिम्बा आदि।

(४) राम-काव्य सम्बन्धी-- पंचवटी, साकेत।

(५) पौराणिक-- नहुष, शकुन्तला, चन्द्रहास।

(६) बौद्ध शिक्षापूर्ण-- अनघ, यशोधरा।

भक्ति-भावना :- वैष्णव परिवार में उत्पन्न होने के कारण गुप्त जी भी राम के भक्त हुए। राम जैसे चरित्र-नायक पर लिखने के लिए जो भी बैठेगा वह कवि हो जायेगा, ऐसा गुप्त जी का विश्वास था :-

"राम तुम्हारा चरित् स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज् सम्भाव्य है।।"

इन पंक्तियों में उनका यह विश्वास ही ध्वनित है। वे राम को कृष्ण से भिन्न नहीं मानते थे, किन्तु धनुष-बाण से युक्त मूर्ति ही उन्हें अधिक पसन्द थी :-

'धनुर्वाण या वेणु लो श्याम रूप के संग।
मुझपर चढ़ने से रहा राम! दूसरा रंग।।'

इसमें राम और कृष्ण दोनों की ही भक्ति प्रतिपादित है। राम और कृष्ण में भेद न मानकर ही गुप्त जी ने कृष्ण-काव्यों में भी मंगलाचरण के रूप में राम की ही वन्दना की है। 'यशोधरा' काव्य में भी मंगलाचरण में राम को ही सम्बोधन करते हुए कहा गया है :-

"राम तुम्हारे इसी धाम में
नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ
इसी देश में हमें जन्म दो
लो, प्रणाम हे नीरज-नाभ।"

राम की भक्ति करने पर भी भक्ति के क्षेत्र में गुप्त जी उदारवादी दृष्टि रखते थे। उन्होंने 'द्वापर' में कृष्ण के गुणों का कथन किया है, 'अनघ' और 'यशोधरा' में गौतम बुद्ध का गुणगान किया है तथा 'काबा और कर्बला' में हसन और हुसैन का त्याग दिखलाया है। राम का गुणगान करते समय सामयिक परिस्थिति पर भी गुप्त जी ने बराबर ध्यान दिया है। उनके राम मानवीय अधिक हैं। वे इस धरती पर सेवाभाव से अवतरित हुए हैं :-

'सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।।"

इस पद में राम के मुख से अवतार के आदर्श को स्पष्ट किया गया है। मर्यादावादी राम की उपासना के क्षेत्र में गुप्त जी की दृष्टि तुलसीदास जी से भिन्न रही है। गुप्त जी ने सूर्पणखा से अधिक सहानुभूति दिखलाई हैं। साकेत में सीता कोल-भील आदि को शिक्षा देती हैं। उनकी भक्ति-भावना भी गाँधीवादी प्रभाव से पूर्ण है। इसीलिए उनके राम और सीता वर्तमान युग के गाँधीवादी विचारों को ही व्यक्त करते हैं। राम के बनवास के समयप्रजा सामने लेटकर सत्याग्रहियों की तरह कहती हैं :-

"जाओ यदि जा सको रौंद हमको यहाँ।
यों कह पथ में लेट गये बहु जन वहाँ।।"

राष्ट्रीय और सामाजिक भावना :- मैथिलीशरण गुप्त जी राष्ट्रीय भावना के कवि थे। भारत-भारती उनकी प्रथम राष्ट्रीय-भावपूर्ण पुस्तक है। इसमें उन्होंने भारत के प्राचीन वैभव की गाथा कहकर उसकी वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ और भविष्य के लिए आशा व्यक्त की है। 'हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी' में उनकी इस भावना का ही कथन है। उनकी अन्य कृतियों में भी उनका राष्ट्रीय-भाव व्यक्त है। हिन्दू-मुस्लिम एकता, अछूतोद्धार, विधवा-विवाह आदि से सम्बन्धित कविताओं को लिखकर गुप्त जी ने समाज-सुधार का कार्य किया है। अछूतोद्धार पर उनकी भावना देखिए :-

''इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी ।
इनमें भी मन और भाव है किन्तु नहीं वैसी वाणी।।''

वे राजनीतिक विचारों का भी परिचय अपनी पुस्तकों के माध्यम से देते रहे हैं। 'बक संहार' में उन्होंने 'प्रजातन्त्र' पर विचार करते हुए कहा है :-

''राजा प्रजा का पात्र है, वह एक प्रतिनिधि मात्र है।
यदि वह प्रजापालक नहीं तो त्याज्य है।।
हम दूसरा राजा चुनें जो सब तरह सबकी सुने।
कारण प्रजा का ही असल में राज्य है.''

गुप्त जी की राष्ट्रीयता संकुचित नहीं थी। उसकी परिणति मानवता और अन्तर्राष्ट्रीयता में हुई है। ''वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे'' में उनकी यह दृष्टि स्पष्ट है।

नारी-भावना :- मैथिलीशरण गुप्त के हृदय में नारी के प्रति श्रद्धा का भाव बराबर बना रहा। साकेत की उर्मिला देवी की उपेक्षा उन्हें असह्य थी। उन्होंने उस त्याग की मूर्ति को नायिका मानकर 'साकेत' की रचना की। उसमें उन्होंने नारी के दो रूपों- रमणी और पत्नी- को प्रदर्शित किया। उर्मिला के सुहाग-बिन्दु के समक्ष कामदेव नहीं टिक सका, किन्तु नारी का माता-रूप उर्मिला देवी के चित्रण में नहीं आ सकता था, अतः गुप्त जी ने गौतम-पत्नी यशोधरा पर काव्य लिखकर नारी को पूर्ण रूप में प्रस्तुत किया :-

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।''

इस पद में नारी का त्याग मूर्तिमान है। उन्होंने नारी को प्रेरणा की मूर्ति माना। उर्मिला के त्याग से ही लक्ष्मण की तपस्या सफल हुई और यशोधरा के त्याग से ही गौतम का तप सिद्ध हुआ, अन्यथा अप्सरा-विघ्न व्याप्त हो जाता और वे असफल रहते। नारी की इस प्रेरणा-दायिनी और त्यागमयी शक्ति को ही गुप्त जी ने अपनी श्रद्धा अर्पित की है। तभी तो उन्होंने यशोधरा को पति के लिए रोती और पुत्र के लिए गाती हुई दिखाया है। यशोधरा के मान की रक्षा क लिए गौतम को स्वयं उसके पास आना पड़ा है।

प्रकृति वर्णन :- कवियों ने अपने काव्य में प्रकृति को विभिन्न रूपों में स्थान दिया है। गुप्त जी के काव्य में प्रकृति आलंबन रूप में, उद्दीपन रूप में, अलंकार प्रदर्शन के लिए तथा नीति-कथन के लिए आयी है। पंचवटी में प्रकृति का आलम्बन-रूप देखिए :-

"चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रहीं हैं जल थल में।
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है, अवनि और अम्बर तल में।।"

उद्दीपन रूप में प्रकृति का वर्णन गुप्त जी कृत 'साकेत' और 'यशोधरा' में बहुत अधिक हुआ है। चातकी की बोल पर यशोधरा को 'बलि जाना' पड़ता है। ठंडी श्वाँसें उसे शिशिर-सी कष्टकर बनती हैं। शरदातप उसे गौतम के तप के विकास की सूचना देता है। "सखि बसंत से कहाँ गये वे, मैं उष्मा सी यहाँ रही" में प्रकृति का अलंकार रूप में कथन हुआ है। 'माना ये खिलते फूल अभी झड़ते हैं.......... पर क्या यूँही ये टूट-टूट पड़ते हैं' और 'मैं विफल तभी जब बीज रहित हो जाऊँ' जैसी पंक्तियों में उपदेशात्मक वृत्ति का दर्शन होता है।

काव्य-कला :- काव्य-कला की दृष्टि से विचार करने पर गुप्तजी की कृतियों में सभी रसों का समावेश मिलता है, किन्तु वात्सल्य और विप्रलम्भ के कथन में उन्हें विशेष सफलता मिली है। 'साकेत' के करुण-रस का भी अच्छा परिपाक हुआ है। 'यशोधरा' में राहुल के साथ गोपा का खेलना, राहुल के प्रति उसका ममत्व वात्सल्य की अद्भुत सृष्टि करता है। वह राहुल के दाँतों में अपना दूध जमा देखती है और राहुल के लिए अपने अश्रु-बिन्दुओं को भी पोछ लेती है। विप्रलम्भ श्रृङ्गार के रूप में उर्मिला और यशोधरा का वियोग-वर्णन अद्भुत है। यशोधरा के विरह में विरह की दस दशाओं में से मरण को छोड़ शेष सबका ही चित्रण हुआ है। उन्माद में कभी-कभी गोपा गौतम के साधुवेश का चित्र बनाने लगती है। स्मरण मे उसे रोहिणी के तीर की बातें याद आने लगतीं हैं। विरह-वर्णन की प्राचीन प्रणाली का अनुसरण कर गुप्त जी ने शकुन, स्वप्न, दर्शन आदि की भी योजना की है। प्राचीन परिपाटी के ही आधार पर विरह-वर्णन में गुप्त जी ने पक्षियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है तथा षट्ऋतु-वर्णन भी किया है।

शैली की दृष्टि से गुप्त जी की कविताओं में प्रबन्धात्मक, गीतात्मक, उपदेशात्मक आदि शैलियों का यथास्थान उचित प्रयोग हुआ है। 'झंकार' गीति शैली का काव्य है। 'साकेत' की प्रबन्धात्मकता सराहनीय है। 'अनघ' में गीति-नाट्य शैली का दर्शन होता है। यशोधरा में कहीं गीत-शैली का प्रयोग है, कहीं उपदेशात्मक शैली का और कहीं कथात्मक तथा नाटकीय शैली का। 'यशोधरा' में गद्य-पद्य, कहानी-नाटक-कविता आदि का मिश्रित रूप होने के कारण चम्पू शैली की पुष्टि हुई है। उनकी आरम्भिक कविताओं में संस्कृतगर्भित पदावली का प्रयोग होने के कारण नीरसता बनी हुई थी। बाद की कुछ कृतियों में सरसता का दर्शन हुआ। उनकी कृतियों में लाक्षणिकता और प्रतीकात्मकता का गुण वर्तमान है। संवादों के कथन और चरित्र-चित्रण में गुप्त जी अद्वितीय थे।

छन्दों की दृष्टि से उन्होंने विभिन्न तुकान्त, अतुकांत छन्दों का प्रयोग किया है। सिद्धराज अतुकान्त छन्दों में लिखा गया एक खण्डकाव्य है। 'गीत' पद्धति पर भी उनकी बहुत सी रचनाएँ मिलतीं हैं। किन्तु उनका प्रिय छन्द है-गीतिका और हरिगीतिका। जयद्रथ-वध, भारत-भारती आदि में इन्हीं छन्दों का प्रयोग हुआ है। तुकान्त छन्दों के लिखने में गुप्त जी तुक की खोज में कभी-कभी भद्दे प्रयोग भी कर गये हैं। 'स्नेह जलाता दीया बत्ती' के साथ 'राई राई रत्ती रत्ती' और इसी प्रकार के अन्य तुकों का प्रयोग कुछ ऐसा ही है। जहाँ तुकों का आग्रह अधिक नहीं है, वहाँ काव्य-सौन्दर्य बड़े उत्कृष्ट रूप में प्रकट हुआ है।

गुप्त जी की रचनाओं में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग है। कुछ अलंकारों का उदाहरण देखिए :-

उपमा-- "कुटिल अलक वाले की आकृति है क्या भोली भोली।
मृग-से दृग हैं, किन्तु अनी-सी तीक्ष्ण दृष्टि अनमोली।।"

श्लेष और रूपक-- "सखि नील-नभस्सर से उतरा यह हंस अहा तरता तरता।
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं, कर डाल रहा डरता डरता।।"

यहाँ 'नील-नभस्सर' और 'तारक-मौक्तिक' में रूपक तथा 'हंस और कर' में श्लेष अलंकार है।

उदाहरण-- "आ शत्रुघ्न-समीप रुकी लक्ष्मण की रानी।
प्रकट हुई ज्यों कार्तिकेय के निकट भवानी।।"

भ्रान्ति और तदगुण-- "नाक का मोती अधर की कान्ति से,
बीज दाड़िम का समझकर भ्रान्ति से।"

मुद्रा तथा श्लेष-- "करुणे क्यों रोती है तू ? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई।
मेरी विभूति है जो उसको भवभूति कहे क्यों कोई।।"

गुप्त जी की कविताओं में अन्य अलंकारों का भी समावेश बड़े ही सुन्दर रूप में हुआ है।

भाषा की दृष्टि से गुप्त जी शुद्ध, परिष्कृत खड़ीबोली के कवि थे। खड़ीबोली को कविता की भाषा बनाने में गुप्त जी का सबसे अधिक हाथ रहा है। उनकी भाषा में संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। प्रान्तीय शब्दों जैसे 'धड़ाम' 'ढलमल' आदि का भी प्रयोग उनकी भाषा में मिलता है। कहीं कहीं लोकोक्तियाँ भी प्रयुक्त हुई हैं, जैसे :- 'तूही एक खिवैया, मेरी पड़ी भँवर में नैया' या 'दिन बारह वर्षों में घूरे के भीं सुने गये हैं फिरते।' आदि।

भारतीय विचार-धारा के पोषक कवि गुप्त जी आधुनिक काल के कवियों में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता के भाव भरे पड़े हैं।



माखनलाल चतुर्वेदी (एक भारतीय आत्मा)

जन्म-संवत् :-- १६४५ वि० मृत्यु-संवत् :-- २०२५ वि०

जीवन-वृत्त :- माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म संवत् १६४५ वि० में मध्यप्रदेशान्तर्गत होशंगाबाद जिले के वावई नामक ग्राम में हुआ। उनके पिता नन्दलाल चतुर्वेदी वैष्णव भक्त थे। बाल्यावस्था में ही उन्होंने तुकवन्दी आरम्भ कर दी थी। 'रसिक-मित्र' नामक पत्र में आपकी पहली कविता प्रकाशित हुई। इस कविता की भाषा ब्रजबोली थी। संपादक के रूप में उन्होंने पहले 'प्रभा' का और बाद में 'प्रताप' तथा 'कर्मवरी' का सम्पादन किया तथा नाटककार के रूप में 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक की रचना की। चतुर्वेदी जी की कविताओं में पिता की वैष्णवी-भक्ति के प्रभाववश भक्ति का स्वर भी सुनायी पड़ता है किन्तु युग के प्रभाववश वे राष्ट्रीय विचारधारा के ही कवि थे। अतः उनकी कविता में राष्ट्रीय भावों की ही अधिक अभिव्यक्ति हुई है। अपने राष्ट्र-प्रेम के कारण अंग्रेजी शासनकाल में कई बार उन्हें जेल-यात्रा भी करनी पड़ी थी। कवि-रूप में अपना उपनाम ही उन्होंने 'एक भारतीय आत्मा' रखा। मध्य-प्रदेश के असहयोग आन्दोलन में उनका प्रमुख हाथ था। सम्मेलन में उन्हें उनकी साहित्य-सेवा पर साहित्यवाचस्पति की उपाधि दी। उन्होंने सम्मेलन का सभापतित्व भी किया। देव-पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त हुआ। वे सफल वक्ता और कुशल लेखक थे। गद्य और पद्य दोनों ही विधा में उनकी लेखनी का प्रवाह देखने को मिला हैं। भाषा पर उनका सराहनीय अधिकार था।

रचनाएँ :- उन्होंने कहानी, नाटक, निबन्ध और कविता की पुस्तकों का प्रणयन कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। 'कृष्णार्जुन युद्ध' नाटक की पुस्तक है। 'साहित्य-देवता' भावुकता और व्यंग्य से पूर्ण गद्य-काव्यमय निबन्धों का संग्रह है। उनकी कहानियों का संग्रह 'कला का अनुवाद' नाम से प्रकाशित है। उनकी कविताओं के संग्रह हैं- 'हिम किरीटिनी', 'हिम-तरंगिनी', 'समर्पण', 'युगाचरण', 'माता', 'आत्मदीक्षा' आदि। उनकी इन कविताओं में प्रणय, देशप्रेम और प्रकृति-चित्रों का सुन्दर रूप देखने को मिलता है। 'हिम किरीटिनी' देश-प्रेम सम्बन्धी रचनाओं का अत्यन्त सुन्दर संग्रह है।

वर्ण्य-वस्तु :- चतुर्वेदी जी की कृतियों का मुख्य विषय राष्ट्रीयता है, किन्तु उनकी कविताओं में छायावादी स्वर भी कुछ कम मुखरित नहीं हुआ है। 'मैं आ गई' शीर्षक कविता में कवि का छायावादी स्वर स्पष्ट है :-

"नाद की प्यालियों मोद की ले सुरा,
गीत के तार-तारों उठी छा गई।
प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी,
बोल बोली सलोने कि मैं आ गई।।
नेह के नाथ क्या नृत्य के रंग में,
भावना की रवानी लुटाने चले।
साँस के पास आ हास के देश छा,
याद को झूलने में झुलाने चले।।"

इन पंक्तियों में प्रयुक्त रूपक, कल्पना की अतिशयता और प्रतीकात्मकता कवि की छायावादी वृत्ति तथा

सौन्दर्य-भावना का ही परिचायक है। कवि की 'आँसू' शीर्षक कविता में भी उसका छायावादी स्वर ही मुखरित है। इसी छायावादी ध्वनि के बीच अन्त की कुछ पंक्तियों में राष्ट्रीयता की गूँज भी सुनायी पड़ती है। जिन नयनों से जीवन धन को देखा जा चुका हो उससे किसी और वस्तु को न देखने की कामना ने ही मानो नेत्रों में आँसू-रूप जल भर दिया है। इस कोमल कल्पना को व्यक्त करता हुआ कवि कह उठता है :-

"जिन नयनों से जीवनधन देखा उनसे आसानी से--
और न दीखे, अतः भर दिया उन्हें हृदय के पानी से।"

नेत्रों को सीपी और अश्रुकणों को गरम-गरम मोती के रूप में देखना भी उसकी इसी वृत्ति का सूचक है।

कवि की हार्दिकता और मार्मिकता की व्यंजना बड़ी मस्ती के साथ उसके पदों में हुई है। चाह की मस्त घड़ियों की याद में कवि का मन प्रश्न कर उठता है :-

"कौन सी हैं मस्त घड़ियाँ चाह की?
हृदय की पगडण्डियों की राह की,
दाह की ऐसी कनक कुन्दन बने,
मौन की मनुहार की है आह की।"

यह छायावादी अनुभूति तीव्र होकर आध्यात्मोन्मुखी हो उठती है। प्रेमानुभूति की तीव्रता में वे अपने प्रिय की छवि में अनोखापन का अनुभव करते हैं। वे समझ नहीं पाते हैं कि वे उसे कौन-सी संज्ञा प्रदान करें। अन्त में उसीसे पूछ बैठते हैं :-

"अजब रूप धर कर आए हो, छवि कह दूँ या नाम कहूँ।
रमण कहूँ या रमणी कह दूँ, रमा कहूँ या राम कहूँ।।"

'भारतीय आत्मा' माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने की प्रेरणा दी है। वे राष्ट्रहित में विपत्तियों का आलिंगन करने में भी गौरव का अनुभव करते थे। 'अमर-राष्ट्र' शीर्षक कविता में उन्होंने बलिदान का संकल्प लिया। वे राष्ट्र की नींव का पहला पत्थर बनना चाहते रहे :-

"मैं पहला पत्थर मन्दिर का अनजाना पथ जान रहा हूँ।
गड़ूँ नींव में अपने कन्धों पर मन्दिर अनुमान रहा हूँ।"

उनकी बोली और उनका नारा था :- "अमर राष्ट्र, उदण्डराष्ट्र और उन्मुक्तराष्ट्र"। वे स्वयं को बलि-पंथ का अंगारा और जीवन-ज्वाल जगानेवाला मानते थे। उन्होंने शूली का पथ ही सीखा और सुविधा को वे सदा बचाते रहे।

बलि-पंथियों को रव के फूल-फूल चलने का निमन्त्रण देते हुए उन्होंने ब्रह्माण्ड हथेली पर उछालने की प्रेरणा दी। उन्होंने कोकिल की काकली सुनने की अपेक्षा काग का कर्तव्य-राग सुनने की शिक्षा दी। कर्तव्य-मार्ग की कठिनाई को ही आनन्द मानकर स्वीकार करना चाहिए, इस मत को पुष्ट करते हुए बलि-पंथियों से वे कहते हैं :-

"मत व्यर्थ पुकारे शूल शूल, कह फूल-फूल सह फूल-फूल।"

'रसवन्ती' शीर्षक कविता में कवि 'हिये की सलोनी मनोदेवता' अर्थात् भारतमाता का आह्वान करता हुआ बलिदान से प्राप्त होनेवाली भावना का कथन करता है :-

"शीश की सीढ़ियाँ शीश दे दे बने,
शीश ले ले सजें क्रान्ति की थालियाँ।
दीप से दीप की कोटि प्राणों बनी,
भूमि देखे जगी आज दीवालियाँ।।"

'भारतीय आत्मा' ने राष्ट्र को ही अपना देवता माना है। स्वतन्त्रता देवी को ही उन्होंने अपनी आराध्या स्वीकार किया है। 'एक फूल की चाह' में कवि की कामना का दर्शन होता है। फूल के प्रतीक के माध्यम से मौन-त्याग की भावना देखिए :-

"चाह नहीं है सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में विंध प्यारी को ललचाऊँ।।
....
मुझे तोड़ कर हे बनमाली, उस पथ में तू देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावें वीर अनेक।।"

क्रान्ति की उपासना करने के कारण वे क्रान्तिकारियों से बलिदान की इच्छा रखते थे, उनकी रक्षा के लिए किसी प्रकार के तर्क और पैरवी की नहीं। लाल किले में जब आजादहिन्द फौज के वीरों पर मुकदमा चलाया गया तब नेहरू जी जैसे महान लोगों को गाउन पहनकर पैरवी के लिए जाता देख, कवि का मन निराशा और खीझ से भर उठा। खीझे हुए स्वर में उसने कहा :-

"जब तक प्रश्न-चिह्न बनती हों सूली की असहाय पुकारें।
जब तक प्राण बचा रखने को हम पशु कोटि कोटि तन धारें।
वक्तव्यों भाषणों, बयानों, गाउनों बनी गर्व की भाषा।
जब तक लाल किले में मरने वालों की लख रही तमाशा।।"

और फिर उसने देखा कि माँ की बेबस स्थिति को प्रहरी हिमांचल देख रहा है। उसने इसी प्रसङ्ग में साम्राज्यवादी-च्यांग, सुकर्ण आदि के नाश की कथा कहकर भारतीय युवकों को-अज्ञान हठीले भारत के मधुमय विकसित पागलपन को-चेतावनी दी। उसने नेताओं को हिंसामयी क्रान्ति के लिए प्रेरित करते हुए कहा :-

"श्यामल रंगों की नदियों में लाल रंग वह आये तो क्या ?
कुछ करोड़ कायर गणना का जीवन-गढ़ ढह जाये तो क्या?
तौल तौल कर त्याग कर रहा, 'क्या पाया' सो याद कर रहा!
नये नये बन्धन स्वीकृत कर, तू भारत आज़ाद कर रहा !

चतुर्वेदी जी ने लघु जीवों में ही चेतना का दर्शन किया। विलासियों की उपेक्षा और निर्धन, त्याग-पूर्ण व्यक्तियों की सराहना ही उनके द्वारा सुनने को मिली। वे स्पष्टतः कहते हैं :-

"लघु लघु प्राणों की बस्ती में मैं तो प्राण देखता आया।
और प्राण-हीनों को रुचि से रगड़ सदैव फेंकता आया।।"

इन निर्धनों की वीरता से ही नवजीवन का संस्कार होगा. यह कवि का विश्वास था। 'वीर-पूजा' में वीरों के लिए कामना करता हुआ कवि कह उठता है :-

"पा प्यारा अमरत्व अमर आनन्द अभय पा
विश्व करे अभिमान, वीर्य-बल-पूर्ण विजय पा

जागृति जीवन ज्योति जोर से हो तू दमके
परम कार्य का रूप बने, बसुधा में चमके।"

वे वीर के ही कन्धे पर जगत-जीवन की आशा को चढ़ता हुआ देखना चाहते थे।

कला-पक्ष :- भाषा की दृष्टि से खड़ीबोली में ही चतुर्वेदी जी ने रचनाएँ कीं हैं। आरम्भ की कुछ रचनाओं में ब्रजभाषा का प्रयोग अवश्य हुआ है, किन्तु परवर्ती सभी रचनाएँ जिनके आधार पर उन्हें कवि के रूप में ख्याति मिली है, खड़ीबोली में लिखी गयीं हैं। शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास की उनकी पद्धति उर्दू की अभिव्यक्ति वाली पद्धति के समान है। कविता की इस पद्धति से तात्कालिक प्रभाव की गहरी सृष्टि होती है। प्रभावोत्पादकता की तीव्रता के लिए ही उन्होंने अन्य भाषाओं के शब्द भी स्वीकार किए हैं। 'भूखों मरने से अच्छा क्या न था उगड़ कर खुद ही मर जाना' तथा 'बूढ़े सपने नन्हें हाथों से दफना दें' जैसी पंक्तियों में 'खुद' और 'दफना देना' का प्रयोग इसी प्रकार का है। भाषा की लाक्षणिकता भी स्तुत्य है। नवयुवकों के लिए 'मधुमय विकसित पागलपन' का प्रयोग तथा दूरदर्शिता के लिए 'सूझ की सीढ़ियाँ' का प्रयोग भाषा की लाक्षणिकता का ही परिचायक है। उनकी भाषा में एक ओर उर्दू तथा अन्य विदेशी शब्दों का व्यावहारिक प्रयोग है तो दूसरी ओर संस्कृत के तत्सम शब्दों का स्वाभाविक उपयोग है। उनकी संस्कृत-बहुल भाषा का स्वरूप देखिए :-

"पा प्यारा अमरत्व अमर आनन्द अभय पा।
विश्व करे अभिमान, वीर्य-बल पूर्ण विजय पा।।"

उनकी भाषा में मुहावरों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। 'फिर वह पापड़ नहीं बेलने, फिर वह माला पड़े न जपनी' की मुहावरेदानी द्रष्टव्य है। उन्होंने भाव के अनुसार छन्द में भी परिवर्तन किया है। भाषा के प्रवाह और छन्द की उपयुक्तता ने उनकी कविताओं को अत्यन्त सरस और सुन्दर बना दिया है। भावावेश में न जाने कितने अलंकार स्वतः ही उनकी कविताओं में आ गए हैं। इन अलंकारों में से कुछ का स्वरूप देखिए :-

अनुप्रास-- "कागों का सुन कर्त्तव्य राग,
कोकिल-काकलि को भूल भूल।"

उत्प्रेक्षा-- "जिन नयनों से जीवन-धन देखा उनसे आसानी से-
और न दीखे, अतः भर दिया, उन्हें हृदय के पानी से।"

रूपक-- "प्राण के बाग में प्रीति की पंखिनी,
कूक उठी सबेरे कि मैं आ गई"

संदेह-- अथवा कई मास का ग्रीष्म रहा घनों को उमड़ाता-
उन्हें योग-वायु आदर से, दौड़ पड़ा द्रुत बरसाता।

उपमा और मूर्त विधान-- "चट्टाने चिंघाड़ें हँस हँस, सागर गरजे मस्ताना सा,
प्रलय राग अपना भी उसमें, गूँथ चले ताना-बाना सा।"

उनकी रचनाओं में यमक, उदाहरण आदि अन्य अलंकारो का भी बड़ा स्वाभाविक प्रयोग मिलता है।

भाव और कला दोनों ही दृष्टि से विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय भावों की गूँज उत्पन्न करनेवाले कवियों में चतुर्वेदी जी का स्वर बड़ा शक्तिशाली, आकर्षक और प्रेरणा-वर्द्धक रहा है। राष्ट्रीय-कवियों के बीच उनका विशिष्ट स्थान मान्य है। राष्ट्रीय-भावना के इस यशस्वी कवि का ८० वर्ष की आयु में ३० जनवरी, १९६८ ई० को निधन हो गया। साहित्य-प्रेमियों ने अश्रुपूरित नेत्र से अपने प्रिय कवि को अंतिम विदायी दी, पर उनकी कविताएँ सदैव सबके मन पर छायी रहेंगी; इसमें संदेह नहीं।

❖ ❖ ❖

जयशंकर प्रसाद

जन्म-संवत् :-- १६४६ वि०   मृत्यु-संवत् :-- १६६४ वि०

जीवन-वृत्त :- काशी स्थित गोवर्धन सराय नामक मुहल्ले के सुँघनी साहू के घर में संवत् १६४६ वि० में हिन्दी साहित्य के यशस्वी कलाकार जयशंकर प्रसाद ने जन्म लिया। बारह वर्ष की आयु में प्रसाद जी पितृविहीन हो गये। पिता की मृत्यु के तीन वर्ष बाद ही माता भी दिवंगत हो गयीं। अब आपके ऊपर आपके ज्येष्ठ भ्राता की ही छाया रह गयी। माता की मृत्यु के दो वर्ष बाद ही भ्राता भी चल बसे। परिवार का सारा भार प्रसाद जी पर ही आ गया। इन आघातों से उनका भावुक हृदय जर्जरित होता गया। वैवाहिक जीवन में भी आपको दो बार पत्नी-वियोग झेलना पड़ा। आनन्दवादी दर्शन को माननेवाले, हँसमुख, स्वस्थ और दृढ़ माँश-पेशियों से युक्त शरीर के कवि प्रसाद पर इन सब दुखों का इतना बड़ा आघात लगा कि वे भी अधिक दिन तक जीवित न रह सके। राज-यक्ष्मा से पीड़ित होकर ४८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने भी इस संसार से नाता तोड़ लिया।

बाल्यावस्था में पितामह की दानशीलता, धार्मिकता तथा साहित्यिकता का प्रभाव प्रसाद जी पर अत्यधिक पड़ा था। विद्यालय में केवल सातवीं कक्षा तक की शिक्षा प्राप्त करने पर भी प्रसाद जी ने घर पर ही संस्कृत, अँग्रेजी, हिन्दी आदि भाषाओं में पांडित्य प्राप्त किया और दर्शन, इतिहास आदि विषयों में वे निष्णात हो गये। उनकी मृत्यु सम्पूर्ण हिन्दी-जगत की महान क्षति थी। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उनकी मृत्यु पर शोक प्रकट करते हुए कहा :-

"जयशंकर कहते कहते ही अब भी काशी आयेंगे।
किन्तु 'प्रसाद' न विश्वनाथ का मूर्तिमान हम पायेंगे।।
तात, भस्म भी तेरे तन की हिन्दी की विभूति होगी।
पर हम जो हँसते आते थे, रोते रोते जायेंगे।।"

रचनाएँ :- प्रसाद जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होंने काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास और निवन्ध सभी विधाओं को पुष्ट किया। काव्य के क्षेत्र में उन्होंने ब्रजभाषा में **'चित्राधार'** की रचना की। खड़ीवोली के उनके काव्य-ग्रन्थ हैं :- प्रेम-राज्य, कानन-कुंसुम, प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, आँसू, झरना, लहर और कामायनी। इन कृतियों में 'आँसू' और 'कामायनी' हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

प्रसाद की काव्य-कला का विकास :- आरम्भ में प्रसाद जी ने कविताओं की रचना ब्रजभाषा में की। उनकी इन कविताओं का संग्रह 'चित्राधार' नाम से प्रकाशित है। इसके पश्चात् उन्होंने क्षेत्र परिवर्तन किया। खड़ीबोली की उनकी प्रारम्भिक कविताएँ कानन कुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय तथा प्रेम पथिक में प्रकाशित हैं। 'झरना' काव्य में उनका वह छायावादी रूप देखने को मिला

जिसका विकास उनकी परवर्ती रचनाओं में मिलता है। इसके आधार पर ही वे छायावाद के प्रवर्तक कहे जाते हैं। 'आँसू' में उनके छायावादी रूप को उत्कर्ष प्राप्त हुआ। प्रेम-विरह का यह काव्य हिन्दी-साहित्य में अनुपम स्थान का अधिकारी है। 'लहर' में उन्होंने 'आनन्दवादी' दर्शन के साथ ही रहस्यवाद को भी पुष्ट किया है। 'कामायनी' प्रसाद जी का सर्वोत्तम काव्य-ग्रन्थ है। पौराणिक आख्यान पर आधारित इस महाकाव्य में प्रसाद जी ने इच्छा, ज्ञान और क्रिया के समन्वय तथा बुद्धि और हृदय के संतुलन पर विशेष बल दिया है।

प्रसाद और छायावाद :- प्रसाद जी छायावादी कवि थे। उनकी पहली कृति 'चित्राधार' की कुछ कविताओं में ही 'जिज्ञासा' का दर्शन होने लगा था। इसी जिज्ञासा को लेकर 'प्रेम-पथिक' की रचना हुई। 'झरना' में जिज्ञासा-भाव की वृद्धि हुई है। 'आँसू' में उसकी अन्तिम परिणति है। इसमें कवि ने अपने अभाव को पहचाना है और सुख-दुख दोनों पुलिनों को छूने को ही उसकी चेतना-तरंगिनी लहरा उठी है। कामायनी में मिलन और विरह के अतिरिक्त अन्य मनोभावों का भी कथन है।

छायावाद की दूसरी विशेषता है- 'वेदना की स्वानुभूति'। 'आँसू' काव्य में प्रसाद जी की वेदना का सुन्दर कथन हुआ है। वेदना की अनुभूति से पीड़ा घनीभूत होकर छायी हुई थी, दुर्दिन में वही पीड़ा आँसू बन कर बरस पड़ी। हाहाकार स्वरों में वेदना का गर्जन सुनाई पड़ने लगा।

"जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई।
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।।"

प्रसाद जी की वेदना सम्बन्धी अनुभूति बड़ी तीव्र थी। उन्होंने छायावादियों की तरह अपनी वेदनाओं का कथन किया तथा अपनी असफलताओं की कहानी सुनाने का उपक्रम किया। 'रो-रो कर सिसक-सिसक कर कहता मैं करुण कहानी' जैसी पंक्तियों में अपनी स्थिति का परिचय उन्होंने दिया है। कामायनी में भी मनु द्वारा उनकी असफलता की स्वीकृति कराकर उन्होंने इसी उद्देश्य की सिद्धि की है।

प्रसाद जी की कविताओं में छायावादियों के समान अमूर्त को मूर्त रूप देने की क्रिया भी संपादित हुई है। प्रकृति को मूर्त रूप देते हुए वे कहते हैं :-

"बीती विभावरी जाग री। अंबर पनघट में डुबो रही ताराघट ऊषा नागरी।"

'आँसू' में 'लोल लहरें' कल-कल ध्वनि से बातें करती दिखायी पड़तीं हैं। 'कामायनी' के आशा सर्ग में धरा को बधू का रूप दिया ा है और उसे सेज-सिन्धु पर मान किये बैठी-सी दिखाया गया है। अपनी इस मूर्त-विधायिनी-शक्ति से प्रसाद जी ने प्रकृति को भी मानव-रूप और मानव-सम्बन्ध प्रदान किया है। मूर्त-विधान की यह शक्ति अनुपम है।

छायावादियों की भाँति प्रसाद जी ने भी छन्द-बन्धन को तोड़ा है और नये छन्दों की उद्भावना की है। बँगला के 'पयार' और 'त्रिपदी' छन्दों को तथा अंग्रेजी के 'सानेट' को हिन्दी में उतार कर उन्होंने अपनी नवीनता-प्रिय प्रवृत्ति का परिचय दिया है। छन्द-बन्धन को तोड़कर उन्होंने 'प्रलय की छाया' की रचना की। मधुर, इन्द्रजाल, कुहुक आदि शब्दों का प्रयोग कर उन्होंने सामन्ती वैभव का पुनः दर्शन कराया है। अपने इन प्रयोगों में वे आधुनिक युग के छायावादियों से कहीं आगे थे।

रहस्यवाद और प्रसाद जी :- प्रकृति के सम्बन्ध में उठने वाली कवि प्रसाद की जिज्ञासा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी और अन्ततः वह ईश्वरोन्मुखी हो उठी। उस रहस्यमय के प्रति उनकी जिज्ञासा का परिचय मनु की जिज्ञासाओं में स्पष्ट है। 'हे अनन्त ! रमणीय ! कौन तुम यह मैं कैसे

कह सकता' जैसी पंक्तियों में उस अनन्त ब्रह्म के प्रति उठने वाले कुतूहल का ही आभास मिलता है। सृष्टि-कर्ता मनु को वह 'विराट' सृष्टि के निर्माण के लिए हेम घोलता-सा अनुभूत होने लगता है। उस अनन्त शक्ति के सम्बन्ध में उठने वाले ये विचार कवि प्रसाद की रहस्य-भावना का ही परिचय देते हैं।

राष्ट्रीयता और मानवता :- राष्ट्र और देश के प्रति समर्पित कवि 'प्रसाद' ने अपनी देश-भक्ति सम्बन्धी भावनाओं को विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त किया। नाटकों में विभिन्न पात्रों के मुख से पदों का गान कराकर उन्होंने देश-भक्ति सम्बन्धी भावों को प्रकाशित किया है। चन्द्रगुप्त नाटक में कार्नेलिया के मुख से भारत-स्तवन कराकर उन्होंने भारत के मधुमय रूप को ही भारतीयों के समक्ष रखा है :-

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।"

इन पंक्तियों में भारत के प्रति कवि का आकर्षण और भक्ति-भाव ही लक्षित है। अलका द्वारा गाये गये प्रयाण-गीत की पंक्ति तो आज भी राष्ट्र-भक्ति में झूमते हुए राष्ट्र-भक्तों के मुख से सुनी जाती है :-

"हिमाद्रि तुङ्ग शृङ्ग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।।"

मानवतावादी विचारधारा के कवि प्रसाद ने मानवता को पीड़ित करने वाले युद्धों के विरोध में अपना स्वर गुञ्जित किया था। 'अशोक की चिन्ता' में उनके इन्हीं भावों का दर्शन होता है। वे विजय-पराजय का कुढंग छोड़कर प्राणी को सुख देना ही अभीष्ट मानते थे। कामायनी में 'इड़ा' भी जन-संहार का विरोध ही करती है :-

"क्यों इतना आतंक ठहर जा ओ गर्वीले।
जीने दे सबको फिर तू भी सुख से जी ले।।"

मनोवैज्ञानिकता का समावेश :- 'प्रसाद' जी ने मनोवैज्ञानिक पद्धति पर मन के विभिन्न भावों का आकलन किया है। 'प्रलय की छाया' शीर्षक कविता में कला का जैसा मनोवैज्ञानिक चित्र 'प्रसाद' जी ने उपस्थित किया है अन्यत्र दुर्लभ है। कामायनी के प्रत्येक सर्ग किसी मनोभाव पर ही आश्रित हैं। चिन्ता को 'अभाव की चपल बालिका' और 'ललाट की खल रेखा' कहकर सम्बोधित करना; आशा को 'जय-लक्ष्मी' का विशेषण देना और लज्जा को 'अधरों पर उँगली धरे हुए', दिखाकर 'रति की प्रतिकृति' और 'कानों की लाली' कहना उनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन का परिचायक है।

दार्शनिक भाव :- प्रसाद जी का विश्वास नियतिवादी दर्शन पर था। वे नियतिवाद पर आस्था रखने के कारण ही आनन्दवादी थे और यह मानते थे कि संसार में कोई भी घटना समाज की दृष्टि से लाभकारी प्रभाव ही उत्पन्न करती है। वे 'शाक्त' मतावलम्बी होने के कारण 'समरसता' में विश्वास रखते थे। 'आँसू' में मिलन-विरह, सुख-दुख आदि में समन्वय कर उन्होंने 'समरसता' के सिद्धान्त का ही प्रतिपादन किया है।

"मानव-जीवन वेदी पर परिणय हो विरह मिलन का।
सुख दुख दोनों नाचेंगे, हो खेल आँख का मन का।।"

जैसी पंक्तियों में 'समरसता' की ही ध्वनि है। कामायनी के 'आनन्द' सर्ग में भी इसी समरसता का प्रतिपादन किया गया है। 'श्रद्धा' और इड़ा' का मनु के परिवार में प्रवेश हृदय और बुद्धि का ही समन्वय है।

नियतिवादी दर्शन में आस्था रखने वाले 'प्रसाद' ने 'नियति' शब्द को भी शैव-दर्शन से ही लिया है। 'नियति चलाती कर्म-चक्र है', यह मान कर ही वे किसी भी कार्य के करने में भय नहीं मानते थे। 'आँसू' में नियति का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है :-

"नचती है नियति नटी-सी, कन्दुक क्रीड़ा सी करती।
इस व्यथित विश्व आँगन में अपना अतृप्त मन भरती।"

कामायनी में भी 'मनु' स्वीकार करते हैं कि--

"नियति खेल देखूँ न, सुनो अब इसका अन्य उपाय नहीं।"

इसी नियति पर विश्वास होने के कारण वे हर परिस्थिति में निश्चिन्त रहते थे। जो होना है होगा ही, फिर चिन्ता क्यों ?

प्रकृति-चित्रण :- प्रसाद जी ने प्रकृति के मधुर और भयानक दोनों ही रूपों का चित्रण किया है :-

"मधु बरसती बिधु किरण है काँपती सुकुमार
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु भार।"

इन पंक्तियों में प्रकृति का मधुर रूप चित्रित है। उसके भयंकर रूप का कथन करते हुए उन्होंने कहा है--

"पञ्चभूत का भैरव मिश्रण, शम्पाओं के सकल निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों कोमल प्रात।।"
....
धँसती धरा धधकती ज्वाला ज्वालामुखियों के निःश्वास।

प्रसाद जी ने प्रकृति का मूर्त-विधान भी किया है :-

'सिन्धु-सेज पर धरा-वधू अब तनिक सं चित बैठी-सी' में धरा को वधू का रूप प्रदान किया गया है। प्रकृति का प्रयोग अलंकार रूप में भी उनकी कविताओं में मिलता है :-

"चलो पवन की तरह, रुकावट है कहाँ' में पवन का उपमा के रूप में ही कथन हुआ है। वातावरण प्रस्तुत करने के लिए भी उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है :-

"उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।।"

प्रकृति को प्रतीक रूप में तथा उद्दीपन रूप में भी प्रसाद जी ने स्वीकार किया है। आँसू में एक स्थान पर उन्होंने कहा है:- 'निर्झर सा झिर झिर करता , माधवी कुञ्ज छाया में।' यहाँ 'माधवी कुञ्ज' प्रिय का प्रतीक है और 'छाया' सानिध्य का। इसी प्रकार उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्र उपस्थित करते हुए वे कहते हैं :-

'शीतल समीर आता है, कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ, बरसा आँसू की धारा।।"

प्रेम-भावना :- प्रसाद प्रेम-भाव के कवि थे। 'प्रेम पथिक' में उनकी प्रेम-भावना का कथन हुआ है। वे प्रेम को एक 'यज्ञ' मानते हैं और मानते हैं कि इस यज्ञ में स्वार्थ-भाव का हवन देना होता है :-

'प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा'। वे अपने प्रेमी को अपने से दूर नहीं रखना चाहते :-

"जिसे चाह तू उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर।
मिला रहे मन से मन, छाती छाती से भरपूर।।"

तथा *"पुतली बनकर रहें चमकते प्रियतम! हम दृग में तेरे"*

इन पंक्तियों में उनकी इसी भावना का दर्शन होता है। प्रिय के एक चुम्बन पर वे सारा उपालम्भ छोड़ सकते हैं। दर्शन-जन्य प्रेम में ही उनका विश्वास था :-

"मधुराका मुसक्याती थी पहले जब देखा तुमको
परिचित से जाने कबके तुम लगे उसी क्षण हमको ।।"

उन्हें संयोग और वियोग दोनों का ही अनुभव था। उनके काव्य में दोनों के ही चित्र हैं। संयोग के 'परिरम्भ' की याद वियोग में और भी पीड़ा देती है। 'आँसू' संयोग की स्मृति में लिखा गया विरह-काव्य ही है। उसमें विरह के संचारियों-मोह, स्मृति, ग्लानि-का कथन है। इसी प्रसंग में कवि ने 'मुख कमल समीप सजे' हुए 'दो किसलय दल पुरइन के' देखे और नख-शिख वर्णन भी प्रस्तुत किया। प्रेम के क्षेत्र में वासना को उन्होंने कोई महत्व नहीं दिया। कामायनी के मनु में जब वासना आई तो "अन्तरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल सी" और मनु के अतिचार से भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस कथा से वासना का विरोध सूचित किया गया है।

काव्य-कला :- प्रसाद जी की कविताओं पर उर्दू और फारसी का भी प्रभाव था। इसी प्रभाववश उन्होंने आकाश की उपमा के लिए 'चषक' की कल्पना की है। उर्दू के 'जोशे बयान' पद्धति पर 'लहर' की भाषा का प्रवाह है :-

"काली आँखों का अन्धकार जब हो जाला है आरपार।
मद पिये अचेतन कलाकार, उन्मीलित करता क्षितिज पार।।"

उनकी भाषा में लाक्षणिकता को विशेष महत्त्व प्राप्त है। 'वेदना असीम गरजती' जैसे प्रयोगों में गरजती का अर्थ अपनी लाक्षणिकता के कारण 'तीव्रता' का ही बोध कराता है। 'बाँधा था विधु को किसने इन काली जंजीरों से' जैसे प्रयोगों में विधु का अर्थ 'मुख' साध्यावसाना लक्षणा से ही सम्भव हुआ है।

उनकी भाषा में चित्रात्मकता और शब्द-ध्वनि भी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। एक उदाहरण देखिए :-

"नील परिधान बीच सुकुमार।
खुल रहा मृदुल अधखिला अंग।।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल।
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।।"

उनकी भाषा में प्रसाद गुण का आधिक्य है।

जैसी पंक्तियों में 'समरसता' की ही ध्वनि है। कामायनी के 'आनन्द' सर्ग में भी इसी समरसता का प्रतिपादन किया गया है। 'श्रद्धा' और इड़ा' का मनु के परिवार में प्रवेश हृदय और बुद्धि का ही समन्वय है।

नियतिवादी दर्शन में आस्था रखने वाले 'प्रसाद' ने 'नियति' शब्द को भी शैव-दर्शन से ही लिया है। 'नियति चलाती कर्म-चक्र है', यह मान कर ही वे किसी भी कार्य के करने में भय नहीं मानते थे। 'आँसू' में नियति का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है :-

"नचती है नियति नटी-सी, कन्दुक क्रीड़ा सी करती।
इस व्यथित विश्व आँगन में अपना अतृप्त मन भरती।"

कामायनी में भी 'मनु' स्वीकार करते हैं कि--

"नियति खेल देखूँ न, सुनो अब इसका अन्य उपाय नहीं।"

इसी नियति पर विश्वास होने के कारण वे हर परिस्थिति में निश्चिन्त रहते थे। जो होना है होगा ही, फिर चिन्ता क्यों ?

प्रकृति-चित्रण :- प्रसाद जी ने प्रकृति के मधुर और भयानक दोनों ही रूपों का चित्रण किया है :-

"मधु बरसती बिधु किरण है काँपती सुकुमार
पवन में है पुलक मंथर, चल रहा मधु भार।"

इन पंक्तियों में प्रकृति का मधुर रूप चित्रित है। उसके भयंकर रूप का कथन करते हुए उन्होंने कहा है--

"पञ्चभूत का भैरव मिश्रण, शम्पाओं के सकल निपात।
उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों कोमल प्रात।।"

....

धँसती धरा धधकती ज्वाला ज्वालामुखियों के निःश्वास।

प्रसाद जी ने प्रकृति का मूर्त-विधान भी किया है :-

'सिन्धु-सेज पर धरा-बधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी' में धरा को बधू का रूप प्रदान किया गया है। प्रकृति का प्रयोग अलंकार रूप में भी उनकी कविताओं में मिलता है :-

"चलो पवन की तरह, रुकावट है कहाँ" में पवन का उपमा के रूप में ही कथन हुआ है। वातावरण प्रस्तुत करने के लिए भी उन्होंने प्रकृति का चित्रण किया है :-

"उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी सी उदित हुई।
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई।।"

प्रकृति को प्रतीक रूप में तथा उद्दीपन रूप में भी प्रसाद जी ने स्वीकार किया है। आँसू में एक स्थान पर उन्होंने कहा है:- 'निर्झर सा झिर झिर करता , माधवी कुञ्ज छाया में।' यहाँ 'माधवी कुञ्ज' प्रिय का प्रतीक है और 'छाया' सानिध्य का। इसी प्रकार उद्दीपन के रूप में प्रकृति का चित्र उपस्थित करते हुए वे कहते हैं :-

'शीतल समीर आता है, कर पावन परस तुम्हारा।
मैं सिहर उठा करता हूँ, बरसा आँसू की धारा।।"

प्रेम-भावना :- प्रसाद प्रेम-भाव के कवि थे। 'प्रेम पथिक' में उनकी प्रेम-भावना का कथन हुआ है। वे प्रेम को एक 'यज्ञ' मानते हैं और मानते हैं कि इस यज्ञ में स्वार्थ-भाव का हवन देना होता है :-

'प्रेम-यज्ञ में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा'। वे अपने प्रेमी को अपने से दूर नहीं रखना चाहते :-

"जिसे चाह तू उसे न कर आँखों से कुछ भी दूर।
मिला रहे मन से मन, छाती छाती से भरपूर।।"

तथा *"पुतली बनकर रहें चमकते प्रियतम! हम दृग में तेरे"*

इन पंक्तियों में उनकी इसी भावना का दर्शन होता है। प्रिय के एक चुम्बन पर वे सारा उपालम्भ छोड़ सकते हैं। दर्शन-जन्य प्रेम में ही उनका विश्वास था :-

"मधुराका मुसक्याती थी पहले जब देखा तुमको
परिचित से जाने कबके तुम लगे उसी क्षण हमको ।।"

उन्हें संयोग और वियोग दोनों का ही अनुभव था। उनके काव्य में दोनों के ही चित्र हैं। संयोग के 'परिरम्भ' की याद वियोग में और भी पीड़ा देती है। 'आँसू' संयोग की स्मृति में लिखा गया विरह-काव्य ही है। उसमें विरह के संचारियों-मोह, स्मृति, ग्लानि-का कथन है। इसी प्रसंग में कवि ने 'मुख कमल समीप सजे' हुए 'दो किसलय दल पुरइन के' देखे और नख-शिख वर्णन भी प्रस्तुत किया। प्रेम के क्षेत्र में वासना को उन्होंने कोई महत्व नहीं दिया। कामायनी के मनु में जब वासना आई तो "अन्तरिक्ष में हुआ रुद्र हुंकार भयानक हलचल सी" और मनु के अतिचार से भयंकर स्थिति उत्पन्न हो गयी। इस कथा से वासना का विरोध सूचित किया गया है।

काव्य-कला :- प्रसाद जी की कविताओं पर उर्दू और फारसी का भी प्रभाव था। इसी प्रभाववश उन्होंने आकाश की उपमा के लिए 'चषक' की कल्पना की है। उर्दू के 'जोशे बयान' पद्धति पर 'लहर' की भाषा का प्रवाह है :-

"काली आँखों का अन्धकार जब हो जाता है आरपार।
मद पिये अचेतन कलाकार, उन्मीलित करता क्षितिज पार।।"

उनकी भाषा में लाक्षणिकता को विशेष महत्त्व प्राप्त है। 'वेदना असीम गरजती' जैसे प्रयोगों में गरजती का अर्थ अपनी लाक्षणिकता के कारण 'तीव्रता' का ही बोध कराता है। 'बाँधा था बिधु को किसने इन काली जंजीरों से' जैसे प्रयोगों में बिधु का अर्थ 'मुख' साध्यावसाना लक्षणा से ही सम्भव हुआ है।

उनकी भाषा में चित्रात्मकता और शब्द-ध्वनि भी प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। एक उदाहरण देखिए :-

"नील परिधान बीच सुकुमार।
खुल रहा मृदुल अधखिला अंग।।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल।
मेघ-वन बीच गुलाबी रंग।।"

उनकी भाषा में प्रसाद गुण का आधिक्य है।

रस की दृष्टि से प्रसाद जी मुख्यतः शृङ्गार रस के कवि थे; किन्तु करुण, वीर, वात्सल्य आदि का भी सुन्दर परिचय उन्होंने विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से दिया है।

अलंकारो का सुन्दर, स्वाभाविक प्रयोग प्रसाद जी की कविताओं की विशेषता है। उनके प्रमुख अलंकार हैं :- विरोधाभास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लेष आदि। इनके कुछ प्रयोग देखिए :-

विरोधाभास-- 'शीतल ज्वाला जलती है, ईंधन होता दृग जल का'

रूपक-- 'इस हृदय-कमल का घिरना अलि-अलकों की उलझन में'

उपमा-- 'क्यों व्यथित व्योम-गंगा-सी छिटका कर दोनों छोरें।
कल्पना-तरंगिनि मेरी लेती है मृदुल हिलोरें।।'

श्लेष-- 'वे सुमन नोचते फिरते करते जानी अनजानी'

विशेषण-विपर्यय-- 'हिंसक हुँकारों से नतमस्तक आज हुआ कलिंग'

जयशंकर प्रसाद जी की काव्य-कला और उनके भाव-पक्ष पर विचार करने के बाद मानना पड़ता है कि उनका कविरूप बड़ा ही ओजस्वी था। उन्होंने कल्पना और विचार का समन्वय कर अपने दार्शनिक सिद्धान्तों से हमें पथ दिखलाया है। उनकी कृतियों के कारण हिन्दी-साहित्य गौरवान्वित हुआ है। आधुनिक युग के कवियों में उनका स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।



गोपालशरण सिंह

जन्म-संवत् :-- १६४८ वि०　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- २०१७ वि०

जीवन-वृत्त :- रीवाँ राज्यान्तर्गत नयी गढ़ी नामक स्थान में संवत् १६४८ की पौष शुक्ल प्रतिपदा को सेंगर वंशीय क्षत्रिय परिवार में गोपालशरण सिंह का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम ठाकुर जगत बहादुर सिंह था। वे बड़े ही उदार और संस्कृत के विद्वान थे। पिता की देखरेख में ही गोपालशरण सिंह की शिक्षा हिन्दी माध्यम से आरम्भ हुई। कुछ काल बाद वे संस्कृत-अध्ययन की ओर झुके। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् विद्यालय का अध्ययन बन्द हो गया, किन्तु मेधावी होने के कारण स्वाध्याय से उन्होंने पर्याप्त ज्ञान अर्जित कर लिया।

सन् १६११ में ही उन्होंने कविता-लेखन आरम्भ कर दिया था। पहले वे ब्रजभाषा में ही अपना भाव प्रगट करते थे। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से सन् १६१२ से वे खड़ीबोली में कविता लिखने लगे। सरस्वती के मौन साधक, ग्राम्य-जीवन के सफल चित्रकार और सौजन्य की मूर्ति गोपालशरण सिंह ने मुक्तक और प्रबन्ध दोनों ही प्रकार के काव्यों की रचना की। अनेक मार्मिक विषयों का चयनकर उन्होंने खड़ीबोली कविता का लेखन किया।

कोमल भावनाओं से युक्त मानव-जीवन से सम्बन्धित प्रेमपूर्ण कविताओं के लेखक और द्विवेदी युग के प्रतिनिधि कवि गोपालशरण सिंह का निधन प्रयाग मे २ अक्टूबर सन् १६६० को हो गया। हमारे बीच आज वे नहीं हैं, पर उनकी कीर्ति उनकी कृतियों के रूप में सदा सुरक्षित रहेगी।

रचनाएँ :- **मुक्तक काव्य-संग्रह--** माधवी, सागरिका, विश्वगीत, प्रेमांजलि, मानवी, ग्रामिका, ज्योतिष्मती। **प्रबन्धात्मक कृति--** जगदालोक।

इन रचनाओं में 'माधवी' ब्रजभाषा की कविताओं का संकलन है। 'जगदालोक' पर कवि को पारितोषिक भी मिला था। २० सर्गों के इस काव्य में कवि ने गाँधी जी के जीवन की मुख्य घटनाओं का चित्रण किया है। उसमें गाँधी जी के समय की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का कथन हुआ है। राष्ट्र-प्रेम और सेवाभाव की प्रतिष्ठा ही इस कृति का प्रतिपाद्य है।

वर्ण्य-विषय :- ठा० गोपालशरण सिंह की कविताओं में प्रेम और भक्ति की प्रधानता है। यह प्रेम कहीं ईश्वरोन्मुख है और कहीं विश्व के प्रति है; किन्तु अधिकांशत: उनकी कविताओं में देश-प्रेम का वर्णन मिलता है। उनकी आरम्भिक कृति 'माधवी' में संगृहीत रचनाओं में यह भाव पूर्ण रूप से भरा दीखता है। इस संकलन में उन्होंने ईश्वर के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की है। 'वह छवि' शीर्षक खड़ीबोली की कविता में भी उस ईश्वर की अनुपम छवि का अंकन है :-

''तेजधारियों में है कृशानु का भी नाम बड़ा,
किन्तु भानु सबसे महान तेजवान है।
मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान,
फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है।

यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके
किन्तु उरू छवि सा न कोई छविमान है।"

'दर्शन' शीर्षक कविता में भी उसी 'विराट' की सत्ता को स्वीकार करता हुआ कवि कहता है:-

"तुम क्या छिप सकते हो मन में ?
ललित लता के मृदु अंचल में,
विकसित मृदु प्रसून के दल में,
प्रतिबिम्बित हिमकण के जल में
तुम्हें देखता हूँ सतत--
पिक कूजित कुसुमित कानन में।।"

कवि का सौन्दर्य-प्रिय मन प्रकृति के प्रति सदा उत्सुक रहा है। 'सागरिका' नामक काव्य-संग्रह मं प्रकृति-सौन्दर्य का भरपूर दर्शन होता है :-

"सुन्दरता का रूप सरल है
झाँक रही हैं तरु से कलियाँ
मँडराती हैं मधुपावलियाँ
सर में. हैं फिर रही मछलियाँ
आकर्षित कर रहा चित्त को
अनलंकृत अमल कमल है।"

इस कविता में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण है। अलंकार-कथन तथा वातावरण-चित्रण के रूप में भी कवि ने प्रकृति-चित्रों को उपस्थित किया है। युद्ध-प्रिय बर्बर मानव के स्वार्थ और विश्व-विरोधी भाव पर वे क्षुब्ध हो उठते हैं और प्रकृति को भी मानव की इस दुवृत्ति के परिणामस्वरूप क्षुब्ध दिखाते हुए कहते हैं :-

"अविरत बहता तीव्र पवन है
विश्व-सरोवर के शतदल पर
उपल वृष्टि होती पल-पल है
पशु बल कितना हुआ प्रबल है।।"

सामाजिक दृष्टि से वे 'सुख शान्तिमय संसार' की कामना करते थे। उन्होंने प्रेमाञ्जलि की कविताओं में पराधीनता पर खेद और स्वाधीनता पर अनुराग प्रगट किया है। 'मानवी' शीर्षक संग्रह की कविताएँ भी सुधारवादी दृष्टिकोण से लिखित हैं। वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि समस्याओं पर बड़े ही सरल शैली में उन्होंने विचार व्यक्त किये हैं। वृद्ध-विवाह पर किया गया व्यंग-पूर्ण आक्षेप देखिए :-

"कुसुम-कली वानर के कर में है मलीन म्रियमाण।
मृदु लतिका प्रेमालिंगन, करता है पाषाण।।"

'कुसुम-कली' से नवयौवना और 'वानर' तथा 'पापाण' से शीतल-रक्त वृद्ध पुरुष का ही परिचय मिलता है।

कवि की कृति 'ग्रामिका' में उसका ग्राम-प्रेम व्यंजित है। इस प्रसंग में प्रगतिशील भाव भी प्रकट हुए हैं। कृषक, कृषक-पत्नी और वन-श्री का अत्यन्त सुन्दर रूप इस संग्रह की कविताओं में देखने को मिलता है।

कला-पक्ष :- भाषा की दृष्टि से ठा० गोपालशरण सिंह की कविता प्रमुखतः खड़ीबोली में ही लिखी गयी है, किन्तु 'माधवी' संग्रह की कविताओं की भाषा ब्रज-बोली है। खड़ीबोली की रचनाओं में नित्य की व्याबहारिक पदावली का ही व्यवहार हुआ है। संस्कृत के तत्सम किन्तु बोधगम्य शब्दों का प्रयोग ठाकुर साहब ने किया है। उनकी भाषा प्रान्तीय शब्दों के प्रयोग से सर्वथा अछूता है। प्रसाद गुण से पूर्ण उनकी भाषा में ब्रजभाषा-सा माधुर्य और लालित्य पाया जाता है।

छन्द की दृष्टि से ठाकुर साहब ने प्राचीन एवं नवीन दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। प्राचीन छन्दों में घनाक्षरी छन्द उन्हें बहुत प्रिय था। इस छन्द में उनकी कविता देखिए :-

"सुखद सजीली शस्य श्यामला, यहाँ की भूमि
श्याम के ही रंग में रँगी है प्रेम- भाव से।
रज भी पुनीत हुई उनके चरण छू के,
शीश पर उसको चढ़ाते भक्ति-भाव से।।
पाप-पंज-नाशी उर-कमल विकासी हुआ,
यमुना-सलिल बस उसके प्रभाव से।
कर दिया पूरा उसे वर वृन्दावन ने ही,
थी कमी मेदनी में स्वर्ग के प्रभाव से।।"

आधुनिक छन्दों की कविताएँ भी उन्होंने लिखीं हैं। उसका उदाहरण देना अनावश्यक है। खड़ीबोली में घनाक्षरी लिखकर ठाकुर-साहब ने नयी दिशा दी। अलंकार की दृष्टि से उनकी कृतियों में विविध अलंकारों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। कुछ अलंकारों का स्वरूप देखिए :-

अनुप्रास--	*"सुखद सजीली शस्य श्यामला यहाँ की भूमि।*
यमक--	*"हैं फूल फूल जाते मधु में, सुरभित मलयानिल बहती है।"*
उपमा--	*"मोर-सा मनोहर न कोई खग रूपवान"*
रूपक--	*विश्व-सरोवर के शतदल पर उपल वृष्टि होती है पल-पल।*
प्रतीक पूर्ण प्रयोग--	*"कुसुम-कली बानर के कर में है मलीन म्रियमाण।"*

भारतीय-भावों से युक्त, सहज सौन्दर्यपूर्ण कविता के कर्ता ठाकुर गोपालशरण सिंह ने अपनी कविता के द्वारा नवीन चेतना का संचार किया है। राष्ट्र-प्रेम की नयी ज्योति जगाकर उन्होंने अपने पाठकों में नये भाव भरे हैं।



सुमित्रानन्दन पंत

जन्म-संवत् :-- १९५७ वि०　　　　　　　　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- २०३४ वि०

जीवन-वृत्त :- सुमित्रानन्दन पंत का जन्म संवत् १९५७ वि० में अल्मोड़ा स्थित कौशानी नामक ग्राम में हुआ। जन्म के कुछ घण्टे बाद ही उनकी माँ सरस्वती देवी दिवंगत हो गयीं। इनके पिता का नाम गंगादत्त पंत था। अपने चार भाइयों में पंत जी सबसे छोटे थे। उनका नाम गोंसाई दत्त पंत था, बाद में उन्होंने अपना नाम सुमित्रानन्दन पंत रख लिया। उनकी शिक्षा काशी स्थित जयनारायण स्कूल में हुई। वहाँ से स्कूल लीविंग परीक्षा पास करने के बाद कवि पंत ने म्योर कालेज प्रयाग में एफ०ए० की कक्षा में प्रवेश लिया। प्रथम वर्ष उत्तीर्ण होने के पश्चात् उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया और संस्कृत तथा बँगला का अध्ययन करने लगे। रवि बाबू से वे प्रभावित थे। वे संगीत के प्रेमी थे। उन्होंने 'रूपाभ' का सम्पादन किया। प्रयाग रेडियो-स्टेशन के उच्च पदाधिकारी के रूप में भी उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की। उन्हें कपड़ों और बाल का बड़ा शौक था। उनपर रवि बाबू के अतिरिक्त पाश्चात्य स्वच्छन्द-धारा के कवियों शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनिसन का भी गहरा प्रभाव था। संस्कृत कवियों में कालिदास से वे अत्यधिक प्रभावित रहे। विवेकानन्द, गाँधी, मार्क्स और अरविन्द के दर्शन का उनपर गहरा प्रभाव पड़ा। इन्हीं प्रभावों के कारण उनकी काव्य-प्रवृत्ति में भी परिवर्तन होता रहा।

रचनाएँ :- सुमित्रानन्दन पंत ने गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में रचनाएँ कीं। उन्होंने काव्य-ग्रन्थों के अतिरिक्त कहानी, निबन्ध. नाटक आदि का भी प्रणयन किया। उनके प्रमुख काव्य-ग्रन्थ हैं :- वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुञ्जन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा, युगपथ, अणिमा, कला और बूढ़ा चाँद, खादी के फूल, लोकायतन और चिदम्बरा।

'कला और बूढ़ा चाँद' पर पंत जी को साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। उन्हें 'लोकायतन' पर सोवियत पुरस्कार मिला और 'चिदम्बरा' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

प्रतिभा का विकास :- बालक पंत पर अल्मोड़ा की प्राकृतिक सुषमा का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी आरम्भिक रचनाओं में यह प्रभाव स्पष्ट है। इसीलिए उनकी आरम्भिक कविताएँ प्रकृति से सम्बन्धित थीं। 'वीणा' से 'पल्लव' तक की उनकी कविताओं में प्रकृति का चित्रण ही अधिक हुआ है। प्रकृति के प्रति उनकी जिज्ञासा इन कविताओं में सर्वत्र स्पष्ट है। अपनी जिज्ञासा के कारण उन्होंने कभी विहग से पूछा है कि प्रथम रश्मि को आने का सन्देशा उसे कैसे प्राप्त हुआ और कभी कौतूहल से वे कह उठे हैं :-

"उस फैली हरियाली में, कौन अकेली खेल रही माँ।
वह अपनी वयवाली में सजा हृदय की थाली में।।"

अपनी इस अवस्था में वे प्रकृति से इतने अधिक आकृष्ट थे कि वे उससे माया तोड़कर किसी रमणी के बाल-जाल में अपने लोचन को उलझा सकने में अपने को असमर्थ मानते थे।

स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के उपदेशों से प्रभावित होने पर उनका प्रकृति-सम्बन्धी दृष्टिकोण बदला। उन्हें प्रकृति के पीछे भी परमात्मा की सत्ता का आभास प्राप्त हुआ। उनमें दार्शनिकता जगी। उन्होंने संसार की नश्वरता का अनुभव किया।

"यह मधुऋतु की गुञ्जित डाल।
झुकी थी जो यौवन के भार।।
अकिंचनता में निज तत्काल।
सिहर उठती है जीवन भार।।"

उन्हें 'चपल तड़ित' और 'लहरों' के मिस किसी का आमन्त्रण मिलने लगा। वे 'जगजीवन के कर्णधार' से प्रश्न करने लगे। 'गुञ्जन में कवि पंत का यही स्वर ध्वनित है।

'युगपथ' की कविताओं में पंत जी ने प्रकृति की अपेक्षा मानव पर अधिक ध्यान दिया। भौतिकवादी दर्शन तथा गाँधीवाद ने उन्हें मानव की ओर देखने को बाध्य किया। वे मानव को 'सबसे सुन्दरतम' कहकर और नारी को 'अकेली सुन्दरता कल्याणि' की संज्ञा देकर उसके प्रति नतमस्तक हुए :-

"सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर।
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।।"

युगवाणी में संगृहीत कविताओं पर मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक है। व्यक्तिगत श्रेष्ठता के लिए गाँधीवाद को और सामाजिक कल्याण के लिए मार्क्सवाद या समाजवाद को मान्यता देते हुए उन्होंने कहा :-

"मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद।
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद।।"

ताजमहल पर क्षोभ भरे स्वर में उन्होंने कहा :-

शव को हम दें रूप रंग आदर मानव का।
मानव को हम चित्र बना दें कुत्सित शव का।"

'ग्राम्या' और 'युगवाणी' में मार्क्सवादी स्वर ही सुनायी पड़ता है।

योगिराज अरविन्द के प्रभाव से भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति का समन्वय करते हुए उन्होंने कहा :-

"सामाजिक जीवन से कहीं महत अन्तर्मन।
बृहत् विश्व विश्वास चेतना, गीता किन्तु चिरन्तन।।"

स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा आदि में यही दर्शन प्रतिपादित है।

छायावाद :- छायावादी कवियों की कविताओं में कल्पना की अतिशयता, प्रकृति को मूर्तरूप देने की क्रिया, मूर्तरूप को अमूर्तरूप में प्रकट करने का भाव, चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता आदि का दर्शन होता है। पंत जी की कविताओं में इनका प्रयोग देखिए :-

१- कल्पना की अतिशयता-- "सुरपति के हम ही हैं अनुचर
जगत्प्राण के भी सहचर
मेघदूत की सजल कल्पना
चातक के चिर जीवनधर"

'बादल' शीर्षक इस कविता में बादल सम्बन्धी सभी सम्भव कल्पनाएँ आ गयीं हैं।

२- प्रकृति को मूर्तरूप देने की क्रिया :- 'नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद-हासिनि' का प्रयोग ज्योत्स्ना के लिए या 'कहो कौन हो दमयन्ती-सी तुग तरु के नीचे सोई' का प्रयोग छाया के लिए किया गया है। इन प्रयोगों के माध्यम से पन्त जी के मूर्तविधान-कौशल का पता लगता है।

३- मूर्त कों अमूर्त रूप देना- बादल की तुलना अमूर्त भावों से करते हुए कवि पन्त ने कहा :-

"धीरे धीरे संशय से उठ, फिर अपयश से शीघ्र अछोर।
नभ के उर में उमड़ मोह से; फैल लालसा से निशि भोर।।"

४- प्रकृति का प्रतीक रूप-

"उषा का था उर में आवास।
मुकुल का मुख में मृदुल विकास।।"

यहाँ 'उषा' और 'मुकुल' को प्रतीक के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

५- भाषा की चित्रात्मकता- *"बाँसों का झुरमुट संध्या का झुटपुट।*
चिड़िया चहक रहीं, टी-वी टी-टूट-टुट।।"

इन पंक्तियों से सन्ध्या का चित्र स्पष्ट किया गया है।

६- ध्वन्यात्मकता-- *"चमक झमकमय मन्त्र वशीकर*
छहर घहरमय विष सीकर
स्वर्ग सेतु से इन्द्रधनुष धर
कामरूप घनश्याम अमर।"

इन पंक्तियों में शब्दों की ध्वनि द्रष्टव्य है।

प्रकृति को आलम्बन रूप में भी पंत जी ने देखा है। उन्होंने नारी के रीतिकालीन रमणीरूप को भुलाकर उसे 'अकेली सुन्दरता कल्याणि' कहा है। भाषा, छन्द और प्रतीक-योजना की दृष्टि से पंत जी की कविता में छायावादी तत्त्वों का पूर्णतः समावेश है।

रहस्यवाद :- पंत जी ने रहस्यवाद को भी उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित किया है। ईश्वर के सम्बन्ध में प्रकृति के माध्यम से अपनी जिज्ञासा का कथन करना ही प्राकृतिक रहस्यवाद कहलाता है। 'मौन निमंत्रण' शीर्षक कविता में उनकी इसी भावना का दर्शन होता है।

रहस्यवादी की तरह पंत जी ने परमात्मा से विभिन्न सम्बन्ध स्थापित किये हैं। कहीं उन्होंने उसे माँ का सम्बोधन देते हुए कहा है :-

"जब मैं थी अज्ञात प्रभात, माँ!
तब मैं तेरी इच्छा थी तेरे मानस की जलजात।"

कहीं-कहीं उन्होंने अपने को प्रियतमा के रूप में माना है :-

"तुम मुझे भुला दो मन से, मैं इसे भूल जाऊँगी।
पर वंचित मुझे न रखना अपनी सेवा से पावन।।"

उन्होंने भगवान को कर्णधार की संज्ञा देकर उनसे इस भवसागर से पार लगाने की कामना की है :-

"हे जगजीवन के कर्णधार !
चिर जन्ममरण के आर पार शाश्वत जीवन नौका-विहार।"

रहस्यवादी पंत ने 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' और 'एकोऽहं बहुस्याम' के दर्शन का प्रतिपादन भी किया है। 'एक तारा' शीर्षक कविता में इसी भाव का कथन करते हुए उन्होंने कहा है :-

"जगमग जगमग नभ का आँगन,
लद गया कुन्द कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग दर्शन।"

मानवतावाद और प्रगतिवाद :- पंत जी के मानवतावादी और प्रगतिशील विचारों का कथन युगवाणी और ग्राम्या में अधिक हुआ है। अपनी इन्हीं भावनाओं के आवेश में उन्होंने 'ताजमहल' पर क्षोभ व्यक्त किया है और 'दो चिलबिल' शीर्षक कविता में गरीब किन्तु गदराये हुए शरीर के बालकों का चित्र प्रस्तुत किया है। 'धोबी के नृत्य' और 'मछुहे के नृत्य' में निर्धन वर्ग के प्रति कवि की सहानुभूति स्पष्ट है।

प्रकृति चित्रण :- प्रकृति के दो रूपों-कोमल और परुष- में से कोमल प्रकृति ने कवि पंत को अधिक आकृष्ट किया। परुष प्रकृति-चित्रण का केवल एक पद ही पंत की कविताओं में मिलता है। इसका शीर्षक है 'परिवर्तन'। परिवर्तन में प्रकृति का उग्र रूप ओजपूर्ण शैली में प्रकट किया गया है।

कूर्मांचल के प्राकृतिक वातावरण ने पंत जी में प्रकृति के प्रति जिज्ञासा का भाव जागृत किया था। स्वामी विवेकानन्द के प्रभाव के पूर्व उनका मन प्रकृति की सुन्दरता में ही रमा रहा। यदि कोई उनसे नारी के सौन्दर्य को देखने का आग्रह करता तो वे उसके उत्तर में नारी से ही प्रश्न कर बैठते थे :--

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जग को।"

विवेकानन्द जी के प्रभाव के बाद उन्हें मानव भी सुन्दर लगने लगा किन्तु विहग और सुमन की सुन्दरता का भी आकर्षण वे छोड़ नहीं सके। प्रकृति का चित्र उपस्थित करने में पंत जी बड़े कुशल थे। मूर्तविधान के द्वारा उन्होंने ज्योत्स्ना को 'शारदहासिनी' रूप में, छाया को 'दासी' रूप में और अन्धकार को 'साथी' रूप में देखा है। उन्होंने प्रकृति को प्रतीक रूप में भी स्वीकार किया है। 'उषा' को उल्लास के प्रतीक रूप में, 'मुकुल' को प्रफुल्लता के प्रतीक रूप में तथा चाँदनी को पवित्रता के प्रतीक रूप में स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा है :-

"उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास
चाँदनी का स्वभाव में हास, विचारों में बच्चों की साँस।।"

आलंबन रूप में प्रकृति का चित्र उपस्थित करते हुए पंत जी नें 'हिमाद्रि' शीर्षक कविता का प्रणयन किया। हिमाद्रि का आलम्बन रूप में चित्र उपस्थित करते हुए उन्होंने कहा है :-

"मानदण्ड भू के अखण्ड, हे पुण्य धरा के स्वर्गारोहण।
प्रिय हिमाद्रि तुमको हिमकण से घेरे मेरे जीवन के कण।।"

पंत जी ने प्रकृति का वर्णन प्राकृतिक रहस्यवाद का कथन करने के लिए भी किया है। 'मौन निमंत्रण'

'संध्यातारा' आदि कविताओं में प्राकृतिक रहस्यवाद की ही सिद्धि हुई है।

प्रकृति-चित्रण के क्षेत्र में पंत जी की सफलता को देखकर ही आलोचकों ने उन्हें प्रकृति का चितेरा कवि कहा है।

कला-पक्ष :- पंत जी खड़ीबोली के कवि थे। भाषा पर उनका अद्भुत अधिकार था। उनकी भाषा में चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता, गत्यात्मकता आदि गुणों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण वे अपनी भावनाओं को चित्र रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुए थे :-

'मृदु मंद-मंद मंथर मंथर,
लघु तरणि हंसिनी-सी सुन्दर, तिर रही खोल पालों के पर।"

से 'नौका विहार' का चित्र स्पष्ट हो उठता है। स्वयं गायक होने के कारण उन्होंने संगीत-तत्व की सुरक्षा की दृष्टि से कहीं-कहीं जानबूझकर वैयाकरणिक भूलें भी की हैं। शब्द-निर्माण की अनुपम शक्ति पंत जी को प्राप्त थी। अँग्रेजी शब्दों के आधार पर उन्होंने स्वप्निल, स्वर्णिम, प्रहसित आदि शब्दों का निर्माण कर हिन्दी शब्द-कोश में वृद्धि की। पर्यायवाची शब्दों का विपुल प्रयोग उनकी भाषा में मिलता है।

रस की दृष्टि से पन्त जी ने विभिन्न रसों में कविताएँ लिखीं। रसों के अनुरूप ही छन्दों का चयन भी उन्होंने किया। करुण रस का कथन करने के लिए उन्होंने मालिनी, पीयूष वर्षण, रूपमाला, हरि-गीतिका आदि छन्दों का प्रयोग किया था। शृङ्गार रस के पोषण के लिए उन्होंने राधिका छन्द का व्यवहार किया और वात्सल्य का वर्णन करने के लिए चौपाई और अरिल्ल छन्दों की योजना की। छन्दों में मात्राओं को घटाने और बढ़ाने का भी प्रयोग उनकी कविताओं में मिलता है।

अलंकारों का बड़ा स्वाभाविक कथन पन्त जी की कविताओं में हुआ है। कुछ अलंकारों को देखिए :-

उपमा-- *'कभी चौकड़ी भरते मृग-से भू पर चरण नहीं धरते'*
उल्लेख-- *'सुरपति के हमही हैं अनुचर, जगत्प्रान के भी सहचर*
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवनधर'
श्लेष और रूपक-- *"उदयाचल से बाल हंस फिर उड़ता अम्बर में अवदात"*
विरोधाभास-- *"जिनकी शीतल ज्वाला में जल बनी चेतना मेरी निर्मल'*
यमक-- *"तरणि के ही संग तरल तरंग से,*
तरणि डूबी थी हमारी ताल में'

विशेषण-विपर्यय :- 'तुम भारत के शाश्वत गौरव'। गौरव को विशेषण से विशेष्य बनाया गया है। इनके अतिरिक्त स्मरण, सन्देह आदि अलंकारों का भी स्वाभाविक प्रयोग उनकी कविताओं में मिलता है।

पन्तजी जी की काव्य-कला पर विचार करने के बाद यह कहना पड़ता है कि वर्तमान युग की प्रतिष्ठित बृहद्त्रयी में पन्त जी का अपना स्थान था। २८ दिसम्बर, १६७७ को कवि पंत के निधन का समाचार पाकर हिन्दी-जगत में शोक की लहर दौड़ पड़ी। पंत जी यश की काया में अमर हैं। हिन्दी-साहित्य उनकी रचनाओं के लिए सदैव उनके प्रति आभारी रहेगा।

प्रसाद और पंत

हिन्दी साहित्य में दूसरी बार जो वृहद्त्रयी प्रतिष्ठित हुई उसमें जयशंकर प्रसाद और सुमित्रानन्दन पंत दोनों ही कवियों को स्थान प्राप्त हुआ। प्रसाद जी के काव्य में कल्पना के साथ दार्शनिक भावों का समावेश मिलता है और पंत जी के काव्य में कोमल भावनाओं का दर्शन होता है। दार्शनिकता की ओर दृष्टि होने के कारण मनु को नायक मानकर प्रसाद जी ने कामायनी की रचना की। पंत जी में भावना का वेग अधिक था, इसलिए वे मुक्तकों को ही अधिक महत्त्व दे सके।

प्रसाद और पंत दोनों ही कवियों ने प्रकृति पर अत्यधिक लिखा है। प्रकृति में मानवीय सम्बन्धों का आरोप करते हुए यदि पंत ने छाया को दासी की संज्ञा दी हैं :-

"कौन कौन तुम परिहत वसना,
म्लान मना भू-पतिता सी,
धूलि धूसरित मुक्त कुन्तला,
किसके चरणों की दासी।"

तो प्रसाद जी ने भी उषा को नागरी की संज्ञा देते हुए कहा है :-

"बीती विभावरी जाग री,
अंबर पनघट में डुबो रही, तारा-घट उषा-नागरी।"

प्रकृति सम्बन्धी कविताओं पर विचार करने के बाद यह मानना पड़ता है कि पन्त पहले प्रकृति के कवि थे फिर किसी अन्य भाव के और 'प्रसाद' पहले प्रेम भाव के कवि थे फिर किसी दूसरे भाव के। यही कारण है कि पन्त की कविताएँ आरम्भ में प्रकृति पर लिखी गयीं और प्रसाद की कविताएँ प्रेम पर। पन्त को प्रकृति इतनी अधिक पसंद थी कि उन्होंने उसके सम्मुख नारी-सौन्दर्य को भी कुछ नहीं समझा। उन्हें प्रश्न करना पड़ा :-

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन।।"

प्रसाद प्रेम-भाव के कवि थे, अतः उन्हें अपनी आरम्भिक कृति 'प्रेम-पथिक' में ही प्रेम की शुद्धता का परिचय देना था। उन्होंने माना कि प्रेम के क्षेत्र में स्वार्थ नहीं होना चाहिए। उन्होंने घोषित किया-- 'प्रेम यज्ञ' में स्वार्थ और कामना हवन करना होगा। विविध प्रभाव के कारण जब पन्त मानव की ओर झुके तो उन्हें 'मानव' 'सबसे सुन्दरतम' लगा और उन्होंने नारी को 'अकेली सुन्दरता कल्याणि' कहकर सम्बोधित किया। प्रसाद जी आरम्भ से ही मानव को सुन्दरतम मानते रहे। उनके यहाँ नारी श्रद्धा स्वरूपा थी :-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पदतल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।।"

'विश्वास' को मनुष्य की बहुत बड़ी विशेषता के रूप में प्रसाद ने स्वीकार किया है। पन्त ने भी इस विश्वास को मनुष्य की दिव्य विभूति के रूप में स्वीकार किया है। वे 'मानव का मानव पर प्रत्यय' चाहते थे।

गाँधीवाद के प्रभाव से पन्त ने बापू, भारत माता आदि विषयों पर कविताएँ लिखीं। उन्होंने

'भारत माता' को 'ग्रामवासिनी' के रूप में देखा। प्रसाद जी ने भी भारत का चित्र उपस्थित किया। उन्होंने 'मधुमय देश' भारत की वन्दना की और उसकी प्रशस्ति के गीत गाये।

प्रसाद जी पर शैव और बौद्ध मत का प्रभाव अधिक था। वे शैवमत से प्रभावित होकर ही समरसता, नियतिवाद और आनन्दवाद का कथन करते रहे। पंत पर मुख्यतः मार्क्सवाद, गाँधीवाद और अरविंद के दर्शन का प्रभाव था। इसीलिए 'पन्त' की कविताओं में वर्गभेद को मिटाने का भाव अधिक ओजस्वी स्वर में व्यक्त हुआ। आध्यात्म के क्षेत्र में वे 'एकोऽहं बहुस्याम' के भाव को मानते थे। ब्रह्म की कामना के रूप में जीव की उत्पत्ति हुई। इस तथ्य को वे मान्यता देते थे। उनके इसी भाव का कथन उनकी 'संध्या-तारा' शीर्षक कविता में हुआ है।

प्रसाद और पन्त दोनों ही छायावाद और रहस्यवाद के कवि थे। एक छायावादी की तरह इन दोनों ही कवियों ने अपने प्रणय-विरह, दुख-सुख की कथाओं का नये छन्दों में परिचय दिया। प्रसाद की आँसू कृति और पन्त की आँसू, ग्रन्थि आदि कविताएँ प्रमाण-स्वरूप हैं। छायावादी पद्धति पर ही इन कवियों ने प्रकृति का मानवीकरण किया है। रहस्यवादी कवि की तरह प्रसाद ने मनु के स्वर में पूछा :-

'तृण वीरुध लहलहे हो रहे किसके रस में सिंचे हुए।'

और पन्त ने 'लहरों' के बहाने न जाने किस अज्ञात का निमन्त्रण प्राप्त किया।

प्रसाद जी की अभिव्यक्ति का माध्यम संस्कृतनिष्ठ किन्तु ललित पदावली से युक्त भाषा थी। पन्त जी की भाषा कोमल और लाक्षणिकतापूर्ण रही है। दोनों ने ही प्रतीकों को स्वीकार किया, किन्तु प्रसाद के प्रतीक पन्त की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हैं। निश्चित ही प्रसाद और पन्त हिन्दी साहित्य के गौरव रहे हैं। ये दोनों ही कालजयी साहित्यकार के रूप में सदैव स्मरण किये जाएंगे।



रामनरेश त्रिपाठी

जन्म-संवत् :-- १६४६ वि० मृत्यु-संवत् :-- २०१८ वि०

जीवन-वृत्त :- वैष्णव भक्त रामदत्त त्रिपाठी जौनपुर जिलान्तर्गत कोइरीपुर ग्राम के निवासी थे। फाल्गुन शुक्ल त्रयोदशी को सं० १६४६ वि० में उन्हें एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई और उन्होंने उसका नाम रामनरेश त्रिपाठी रखा। वे जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे। पिता की धार्मिक बुद्धि, गीता, रामायण आदि के निरन्तर पाठ से बालक रामनरेश में भी सद्विचारों का उदय हुआ। उनकी पाठशालागत शिक्षा अधिक न हो सकी। घर पर ही स्वाध्याय से उन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी और उर्दू की शिक्षा प्राप्त की। जीवन के आरम्भ काल में त्रिपाठी जी कलकत्ता चले गये। वहीं उन्होंने एक मिल में नौकरी कर ली। यहीं उन्होंने बँगला का ज्ञान प्राप्त किया। इसके वाद वे मारवाड़ गये और वहाँ जाकर उन्होंने गुजराती भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। इस प्रकार विविध भाषाओं का ज्ञान उन्हें हो गया।

पिता की मृत्यु के बाद सन् १६१५ में वे जौनपुर लौट आए और फिर प्रयाग गये। 'साहित्य भवन प्रयाग' की स्थापना में उनका बड़ा हाथ था। हिन्दी के प्रचार का कार्य उन्होंने कई प्रकार से किया। उन्होंने पुस्तकें लिखीं और समय-समय पर दक्षिण भारत जाकर हिन्दी का प्रचार किया। राजनीतिक विचारधारा की दृष्टि से वे राष्ट्रीय विचार के व्यक्ति थे। 'असहयोग' में भाग लेने के अतिरिक्त 'तिलक स्वराज्य कोष' के लिए अर्थ-संचय आदि का कार्य भी उन्होंने किया। उन्होंने 'प्रेस' की स्थापना की। उससे उनकी कृतियों का प्रकाशन हुआ। अपने अन्तिम दिनों में वे सुलतानपुर (अवध) में रहने लगे थे। पौष शुक्ल एकादशी सं० २०१८ को प्रयाग में उनका स्वर्गवास हो गया।

रचनाएँ :- त्रिपाठी जी की प्रतिभा कई क्षेत्रों में पर्यटन करती रही। उन्होंने कुछ अनुवाद भी किए। उनके द्वारा सम्पादित पुस्तकें हैं :- रहीम, घाघ एवं भड्डरी, सोहर, रामचरित मानस, सुदामा चरित, पर्वती मंगल, भूषण, शिवा-बावनी, कविता कौमुदी (सात भाग), चिन्तामणि आदि। उनकी मौलिक कृतियाँ गद्य और पद्य की विधा में रचित हैं। उन्होंने तीन खण्डकाव्य लिखेः- पथिक, मिलन, स्वप्न। 'मानसी' नामक कृति में उनकी स्फुट कविताएँ संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास, कहानी, आलोचना, बाल-साहित्य, जीवनी आदि का भी लेखन किया। ग्रामगीतों का संग्रह कर उन्होंने हिन्दी साहित्य के एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति की। हिन्दी में वाल-साहित्य की कमी अभी भी खटक रही है। इस कमी को पूर्ण करने के लिए उन्होंने बाल-साहित्य की भी रचना की। साहित्य के सभी अंगों को उन्होंने पुष्ट किया और हिन्दी साहित्य की सेवा की।

भाव-पक्ष :- त्रिपाठी जी द्विवेदी युग के कवि थे। इस युग के प्रभावानुकूल आदर्शवाद उनकी रचनाओं में मिलता है। उन्होंने अपनी कृतियों में त्याग, सेवा और देश-प्रेम की आदर्शमय भावनाओं को महत्त्व दिया है। उन्होंने प्राचीन परम्पराओं के साथ नवीन भावनाओं का मेल स्थापित किया है। उनके खण्डकाव्यों के बीच उनकी देश-प्रेम सम्बन्धी भावनाओं और प्रकृति-चित्रण का अच्छा परिचय मिलता है। 'पथिक' नामक खण्डकाव्य में अपने आदर्शों का कथन करते हुए उन्होंने कहा है :-

"मस्तक ऊँचा हुआ तुम्हारा कभी जाति गौरव से।
अगर नहीं तो देह तुम्हारी तुच्छ अधम है शव से।।"

स्वदेश-प्रेम सम्बन्धी उनकी भावनाएँ उनके स्फुट पदों में भी प्रकट हुई हैं। अपने देश भारतवर्ष के गौरव का कथन करता हुआ कवि कहता है :-

"शोभित है सर्वोच्च मुकुट से, जिसके दिव्य देश का मस्तक।
गूँज रही हैं सकल दिशाएँ जिसके जय गीतों से अब तक।।
....
अतुलनीय जिसके प्रताप का साक्षी है प्रत्यक्ष दिवाकर।
घूमघूमकर देख चुका है जिसकी निर्मल कीर्ति निशाकर।।"

"देश-प्रेम को वे एक ऐसा पुण्य-क्षेत्र मानते हैं जिसमें त्याग, आत्मा का विकास, और मनुष्यता का भाव होता है :-

"देश प्रेम वह पुण्य क्षेत्र है--
अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें
मनुष्यता होती है विकसित"

देश-प्रेम में मनुष्यता की भावना के विकास की बात को स्वीकृति देकर कवि ने राष्ट्रीयता के महत् पक्ष को ही स्वीकृति दी है।

प्रेम चाहे किसी प्रकार का भी क्यों न हो उसमें उत्सर्ग की भावना का होना आवश्यक होता है। त्रिपाठी जी ने प्रेम की परिभाषा देते हुए कहा है :-

"सच्चा प्रेम वही है, जिसकी तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है करो प्रेम पर प्राण निछावर।।"

राष्ट्र के दीन-हीन जनों की ओर भावुक कवि का हृदय द्रवित हुआ। उन्होंने अपने प्रभु को इन्हीं दीन जनों में देखा। उन्हें वह "ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना गिरजे के आस पास में" दिखाई पड़ा। उसका दर्शन तो उन्होंने 'दीन जनों की भूख प्यास में' ही किया।

उन्होंने नवयुवकों में व्याप्त निराशा को दूर किया। मृत्यु की विभीषिका से भयभीत होने वालों को उन्होंने आत्मा की अमरता का सन्देश दिया और मृत्यु को एक सरिता की संज्ञा दी। उन्होंने बताया कि यह शरीर तो एक वस्त्र के समान है जिसे जीवात्मा छोड़ देती है और नवीन वस्त्र के रूप में नयी काया धारण कर लिया करती है :-

"मृत्यु एक सरिता है जिसमें श्रम से कातर जीव नहाकर।
फिर नूतन धारण करता है काया रूपी वस्त्र बहाकर।।"

उन्होंने प्राणों का मोह छोड़कर निशदिन घाम-शीत सहने वाले समाजसेवी युवकों का परिचय दिया तथा युवकों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के योग्य बनाने का यत्न किया। स्वतन्त्र देश के नवयुवकों का परिचय देते हुए उन्होंने कहा है :-

"वे प्राणों का मोह छोड़कर
निश-दिन घाम-शीत सब सहकर

धर्म भाव से प्रेरित होकर,
भू पर सोकर भूखे रहकर
परम सुहृद बनकर समाज की
सेवा में रहते हैं तत्पर
तब नवयुवक स्वतन्त्र देश के
क्या बैठे रहते हैं घर पर।।"

प्रकृति-चित्रण :- त्रिपाठी जी की कृतियों में प्रकृति का स्वाभाविक चित्र देखने को मिलता है। 'पथिक', 'स्वप्न' आदि खण्डकाव्यों में प्राकृतिक-सुषमा का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है। प्रकृति का मूर्तविधान देखिए :-

"था निर्भय कर्तव्य परायण वीर प्रभावित स्वर से।
सिन्धु संतरी गरज रहा था अगणित उर्मि-अधर से।।
चंचल बीचि, मरीचि वसन से सजकर नीले तन को।
होड़ लगी सी उछल रही थी चारु चन्द्र चुम्बन को।।"

वातावरण का चित्र प्रस्तुत करनेवाली प्रकृति का स्वरूप भी द्रष्टव्य है :-

"अर्द्ध निशा में तारागण से प्रतिबिम्बित अति निर्मल जलमय।
नील झील के कलित कूल पर मनोव्यथा का लेकर आश्रय।।
नीरवता में अंतस्थल का मर्म करुण स्वर लहरी में भर।
प्रेम जगाया करता था वह विरही विरह-गीत गा गाकर।।"

उन्होंने प्रकृति का संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत कर अपनी भावुक प्रतिभा का सुन्दर परिचय दिया है।

भक्ति और धर्म का आदर्श :- त्रिपाठी जी की रचनाओं में भक्त-हृदय का स्वर सुनाई पड़ता है। वे अपने प्रभु से ज्ञान, ब्रह्मचर्य और सदाचार प्राप्त करने की कामना करते रहे हैं। भक्तों की तरह उन्होंने भी अपनी मुक्ति का भार अपने प्रभु पर ही छोड़ दिया था। उन्हींकी कृपाकोर की आशा पर वे कह उठे हैं :-

"सर के कपोल के उजाले में दिवस, रात,
केशों के अंधेरे में निकल भागी पास से।
सन्ध्या बालापन की, युवापन की आधी रात,
मैंने काट डाली क्षणभंगुर विलास से।।
श्वेत केश झलके प्रभात की किरन से, तो
आँखें खुलीं काम के कुटिल मन्द हास से।
मेरे करुणानिधि का आसन गरम होगा,
कौन जाने कब होगा मेरे उसास से।।"

उनका अभीष्ट था। सच्चे कर्मयोगी की तरह अपने प्रयत्नों से अपनी कठिनाइयों पर विजय करना ही उनका अभीष्ट था। वे पश्चाताप से मार्ग देखते थे; निष्फलता से निराश न होकर वें संसार को एक परीक्षा-स्थल मानते थे।

सतर्क बनने की शिक्षा लेते थे। 'स्वात्मबलविज्ञ पुरुष' का परिचय देते हुए वे कहते हैं :-

"यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख है प्रश्न कठोर, देखकर होती बुद्धि विकल है।।
किन्तु स्वात्म-बल-विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से।।"

कला-पक्ष :- त्रिपाठी जी की कविता की भाषा शुद्ध खड़ीबोली है। वह प्रसाद गुण पूर्ण, सरल और सरस है। उसमें नित्य प्रति के व्यवहार में आनेवाले शब्दों का ही प्राधान्य है, किन्तु भावानुकूल भाषा के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है। उदात्त भावों के कथन में संस्कृतगर्भित पदावली का व्यवहार है :-

"विघ्न समस्त करें पद-पद पर, मेरे आत्म तेज को जाग्रत।
निष्फलता मुझको अधिकाधिक, करे सचेष्ट सतर्क दृढ़ व्रत।।"

किन्तु प्रसंग बदलने पर उर्दू मिश्रित भाषा का भी व्यवहार हुआ है :-

"मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू,
मैं बाट देखता था तेरी किसी चमन में।
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू,
मैं देखता तुझे था माशूक के रुदन में।।"

भाषा के दोनों ही स्वरूपों के प्रयोग में त्रिपाठी जी को पूर्ण सफलता मिली है।

छन्द की दृष्टि से उन्होंने मुख्यतः हरिगीतिका मात्रिक छन्द को ही स्वीकार किया; किन्तु प्रसंगानुसार उनकी कविताएँ वर्णिक और मात्रिक दोनों ही छन्दों में लिखी गयी हैं। स्वदेश-प्रेम जैसी अधिकांश कविताएँ मात्रिक छन्द में ही रचित हैं। वर्णिक छन्द का प्रयोग देखिए :-

"हृदय निर्मलता, अनुरक्तता,
सरलता सुख शोक-समानता।
अमृषता, सत-शौर्य वदान्यता,
सुहृद के गुण ये कमनीय हैं।।"

उनकी रचनाओं में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकारों का सुन्दर प्रयोग है। इनका उदाहरण देखिए :-

अनुप्रास-- "करे निराशा इस जीवन को,
शान्ति स्वतन्त्र सरल शुचि सुन्दर।"

उपमा-- "वह सनेह की मूर्ति दयामति माता तुल्य मही है।"

रूपक-- "सिन्धु-सन्तरी गरज रहा था अगणित उर्मि-अधर से।"

त्रिपाठी जी ने अपनी कविता के द्वारा देश-प्रेम की पावन भावना भरकर युवकों को उत्साहित किया; कर्म-मार्ग का महत्त्व समझाकर उन्हें कर्तव्यप्रिय बनाया और अपनी विविध श्रेणी की रचनाओं से हिन्दी-साहित्य का कोश भरा। हिन्दी-जगत उनकी साहित्यिक देन के प्रति आभारी है।

❖❖❖

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जन्म-संवत् :-- १९५३ वि०

मृत्यु-संवत् :-- २०१८ वि०

जीवन-वृत्त :- गढ़ाकोला (जिला-उन्नाव) निवासी राम सहाय बंगाल के महिषादल स्टेट में नौकरी करते थे। वहीं संवत् १९५३ में वसन्त-पञ्चमी के दिन सूर्यकान्त का जन्म हुआ। उनकी शिक्षा बँगला भाषा के माध्यम से हुई किन्तु संस्कृत और अंग्रेजी का भी अध्ययन चलता रहा। १४ वर्ष की अवस्था में उनका विवाह मनोहरा देवी से हुआ। पत्नी के हिन्दी-ज्ञान से प्रभावित होकर उन्होंने स्वयं हिन्दी में पांडित्य प्राप्त किया। संवत् १९७३ में उनके पिता का और संवत् १९८० में उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। माता की मृत्यु तो बाल्यावस्था में ही हो चुकी थी। इसी समय उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'जूही की कली' की रचना की। इनकी दो सन्तानें थीं- एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्री सरोज का भी व्याह के एक वर्ष बाद ही स्वर्गवास हो गया। उसकी स्मृति में ही कवि ने 'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता की रचना की। इन सब आघातों का परिणाम यह हुआ कि 'निराला' जी विरक्त-से हो उठे किन्तु उनकी विरक्ति में भी आशा बराबर बनी रही। उनपर भारतीय दर्शन का प्रभाव था। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रोत्साहन से 'निराला' जी ने बैलूर से निकलने वाले 'समन्वय' नामक पत्र का सम्पादन आरम्भ किया। बाद में वे कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' के सहकारी सम्पादक हो गये। उनका परवर्ती जीवन प्रयाग के दारागंज मुहल्ले में व्यतीत हुआ। यहीं १५ अक्टूबर सन् १९६१ (सं० २०१८) को उनका स्वर्गवास हो गया।

निराला जी अपनी बाल्यावस्था में घुड़सवारी, बन्दूक चलाने और कुश्ती लड़ने में रुचि लेते थे। उन्होंने बंगला में रहकर संगीत का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। बाद में उनका स्वास्थ्य कुछ विगड़-सा गया था, उनकी मनःस्थिति भी कुछ अस्यथ्य-सी दीखती थी। निराला जी का व्यक्तित्व बड़ा अक्खड़ किन्तु दयालु और दानी था। उनकी दानशीलता आज के युग में लिए आश्चर्यजनक-सी थी। बेटा कह देने पर एक भीख माँगने वाली बुढ़िया को पर्याप्त रुपया दे देना तथा अन्य ऐसी ही घटनाएं उनके जीवन में घटी थीं।

रचनाएँ :- कवि निराला की रचनाएँ दो भागों में बँटी है :- (१) मौलिक (२) अनूदित। मौलिक रचनाओं के रूप में काव्य, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, रेखाचित्र, जीवनी आदि साहित्य की विभिन्न विध ाओं से सम्बन्धित उनकी कृतियाँ हिन्दी-साहित्य की निधि हैं। उनके काव्य-ग्रन्थ हैं:- अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता,हलाहल, बेला, अणिमा, नये पत्ते, अपरा, अर्चना, आराधना, गीत-गुंज आदि।

उनकी रचनाओं पर स्वामी रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के दार्शनिक विचारों का प्रभाव है। रवि बाबू के प्रभाववश उनमें सौन्दर्य और प्रेम का तथा बंकिम बाबू के व्यंग के प्रभाववश उनकी कविताओं में व्यंग की ध्वनि का समावेश है।।

निराला की दार्शनिकता और रहस्य-भावना :- वेदान्त-दर्शन से प्रभावित होते हुए भी निराला जी भक्ति को सर्वोपरि मानते थे। पञ्चवटी प्रसंग में उन्होंने मुक्ति और भक्ति पर विचार करते

हुए कहा है :- "मुक्ति नहीं चाहता मैं, भक्ति रहे, काफी है।" पञ्चवटी प्रसंग में ही उन्होंने भक्ति, योग, कर्म, ज्ञान का समन्वयात्मक निरूपण भी किया है :-

भक्तियोग-कर्म-ज्ञान एक ही हैं,
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है दूसरा नहीं है कुछ-
द्वैत भाव ही है भ्रम।"

उस विराट ब्रह्म के प्रति छुद्र जीव की आसक्ति को निराला ने रहस्यवादी की तरह स्थान-स्थान पर चित्रित किया है। 'जूही की कली', 'तुम और मैं' आदि कविताओं में जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध ही निरूपित है। विराट का साक्षात होते ही क्षुद्र भी विराट में ही मिल जाता है, इस भाव को व्यक्त करते हुए 'जूही की कली' में उन्होंने कहा है :-

"हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी खिली--
खेल रंग प्यारे संग।"

जीव और ब्रह्म का अनेक कोमल सम्बन्ध है, इस भाव को 'तुम और मैं' शीर्षक कविता के माध्यम से उन्होंने व्यक्त किया है :-

"तुम आशा के मधुमास।
और मैं पिक-कल कूजन गान।।
तुम मदन पञ्च-शर-हस्त।
और मैं हूँ मुग्धा अनजान।।"

इस कविता के माध्यम से 'तुम अखिल सच्चिदानन्द ब्रह्म, मैं मनोमोहनी माया' के भाव को उन्होंने पुष्ट किया है।

अपनी प्रार्थनात्मक कविताओं में निराला जी ने अदृष्य सत्ता के प्रति अपने भावों की व्यंजना की है। 'जीवन खेवन हार' का सम्बोधन उसी अदृष्ट सत्ता के लिए उन्होंने दिया है। उन्होंने जगत में सर्वत्र एक अभेद-भाव का दर्शन किया है। उनकी गीतात्मक कविताओं में यह अभेद-भाव ध्वनित है। उनकी दार्शनिक कविताओं में आत्यात्मिक और प्राकृतिक दोनों ही प्रकार के रहस्यवादों की पुष्टि हुई हैं।

प्रकृति-चित्रण और छायावादी स्वर :- छायावादी कवि निराला ने भी प्रकृति का मानवीकरण किया है। कहीं-कहीं उन्होंने प्रकृति का वस्तुवादी, प्राकृत रूप भी प्रस्तुत किया है।उनके संग्रह 'परिमल' में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलते हैं। उनके प्रकृति-चित्रों में छायावादियों-सी चित्रात्मकता, कल्पना, ध्वन्यात्मकता और मूर्तविधान की क्रिया दिखाई पड़ती है। उनकी 'सन्ध्या सुन्दरी' शीर्षक कविता में इन सभी तत्वों का समावेश है :-

"दिवसावसानं का समय
मेघमय आसमान से

उतर रही सन्ध्या-सुन्दरी
परी-सी धीरे धीरे धीरे।"

'बन-कुसुम की शय्या' में सरोज अंक पर शरत्-शिशिर दोनों बहनों को सोती हुई दिखाकर 'निराला' जी ने प्रकृति का मानवीय चित्र ही प्रस्तुत किया है। 'निराला' के इन प्रकृति चित्रों में छायावाद का स्वरूप भी दिखाई पड़ता है तथा परोक्ष प्रियतम की ओर संकेत भी मिलता है। प्राकृतिक रहस्यवाद के कथन में प्रकृति का चित्र अपने इसी दूसरे रूप में सामने आया है। 'सखि बसन्त आया' शीर्षक कविता में प्रकृति का यही रूप प्रकट है। प्रकृति को स्थूल रूप में चित्रित करते हुए निराला ने सन्ध्या का परिचय दिया है :-

देकर अन्तिम कर
रवि गये अपर पर, श्रमित चरण आये।'

इन पंक्तियों में प्रकृति का आलम्बन रूप में ही कथन है।

निराला की मानवतावादी भावना और उनका प्रगतिवादी स्वर :- निराला के मन की स्वभाविक करुणा ने उपेक्षित, पददलित मानव की ओर देखने को उत्सुक किया। मानव में एक उज्ज्वल आत्मा का दर्शन कर अपनी ओजपूर्ण सशक्त वाणी में निराला ने उपेक्षितों का चित्र प्रस्तुत किया। उनकी कविता का विषय महान ऐश्वर्यशाली व्यक्ति न होकर साधारण व्यक्ति हुआ। उन्होंने भिखारी, कृषक, विधवा आदि पर कविताएं लिखीं। मुक्त-छन्द में और ओजपूर्ण स्वर में 'भिक्षुक' का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा :-

"वह आता
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को।।"

'किसान की नई बहू की आँखे' शीर्षक कविता में किसान के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति देखिए :-

"नहीं जानती जो अपने को खिली हुई--
विश्व-विभव में मिली हुई--
नहीं जानती साम्राज्ञी अपने को
नहीं कर सकी सत्य कभी सपने को।"

'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं में भी प्रगतिशील स्वर ही सुनाई पड़ता है। इन सभी कविताओं में कवि का मानवतावादी दृष्टिकोण उपस्थित है। समाज की उपेक्षिता 'विधवा' पर कवि की सहानुभूति देखिए :-

"वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीपशिखा सी शांत, भाव में लीन,

वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन-
दलित भारत की ही विधवा है।"

'रास्ते के फूल' शीर्षक कविता में भी उन्होंने रूपक के माध्यम से विधवा के जीवन को स्पष्ट किया है।

उन्होंने अपने प्रगतिशील भावों को 'गुलाब' और 'कुकुरमुत्ता' के प्रतीक का माध्यम लेकर अभिव्यक्त किया है। गुलाब शोषक वर्ग का प्रतिनिधि है और कुकुरमुत्ता शोषित वर्ग का। व्यंग के माध्यम से इस भाव का पोषण देखिए :-

"अबे, सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई, खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपिटलिस्ट।"

देश-भक्ति और राष्ट्रीयता :- 'भारति, जय, विजय करे! कनक शस्य-कमल धरे' जैसी सशक्त पंक्तियों में भारती की वन्दना करने वाले कवि ने 'गीतिका' में राष्ट्र और देश सम्बन्धी अनेक पदों का कथन किया है। स्तोत्र-शैली में भारत की वन्दना करते हुए उसने कहा है :-

"वन्दूँ पद सुन्दर तव,
छन्द नवल स्वर-गौरव,
जननि, जनक-जननि-जननि,
जन्मभूमि भाषे!"

भारत की दुर्दशा पर कवि की क्षुब्ध भावना देखिए :-

"दुख-भार भारत तम केवल,
वीर्य-सूर्य के ढके सकल दल,
खोलो उषा-पटल निज कर अयि
छविमयि, दिन-मणिके।"

इसके बाद भारत के सुन्दर भविष्य की कामना 'निराला' जी ने की है। 'भारति, भारत को फिर दो बर-ज्ञान-विपणि-खनि के' जैसी पंक्तियों में उनकी यही कामना ध्वनित है।

निराला की प्रेम-भावना और उनकी कविताओं में नारी-सौन्दर्य :- निराला जी ने लौकिक प्रेम से सम्बन्धित कविताएं वहुत कम ही लिखीं हैं। उनके प्रेम-गीतों में वासना की स्थिति बहुत कम ही है। 'प्रिया के प्रति' और 'उसकी स्मृति' शीर्षक कविताओं में अपनी पत्नी की स्मृति में उन्होंने प्रेम के स्मृति-चित्रों का कथन बड़े मर्यादित रूप में किया है :-

'मन्द पवन के झोकों से लहराते काले बाल

कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के से जाल
वह विचर रही थी मानव की प्रतिमा-सी'

तथा "वह कली सदा को चली गई दुनिया से
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त।"

इन पंक्तियों में प्रेमी हृदय का स्मरण-भाव अपने शुद्ध रूप में प्रगट है। अपनी उस प्रिया से मिलने की कामना जब बलवती हो उठती है तो पुनर्मिलन का चित्र बनाता हुआ कवि कह उठता है :-

"एक बार भी यदि अजान के अंतर से उठ आ जातीं तुम।
एक बार भी प्राणों की तम छाया में आ कह जातीं तुम।।
सत्य हृदय का अपना हाल।
कैसा था अतीत वह, अब यह बीत रहा है कैसा काल।
मैं न कभी कुछ कहता, बस तुम्हें देखता रहता!"

निराला ने नारी का सौन्दर्य-चित्रण भी स्थूल रूप में कम ही किया है। स्थूल रूप में उसका सौन्दर्य चित्रित करते समय भी वे मानसिक तत्त्वों का समावेश करते गये हैं। पंचवटी के 'सूर्पणखा' का सौन्दर्य दिखाते समय इसी प्रकार का प्रयोग हुआ है।

कविता को नारी का सम्बोधन देकर और उसे प्रिया मानकर भी विभिन्न कविताओं का कथन निराला ने किया है।

काव्य-कला :- निराला ने कई प्रकार के छन्दो को स्वीकार किया है। उनकी स्वाभाविक वृत्ति मुक्त-वृत्त छन्दों की ओर रही। 'वह आता दो टूक कलेजे के करता पछताता', 'वह तोड़ती पत्थर' और 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताओं में ओज पूर्ण पद्धति पर मुक्त वृत्त छन्दों में ही प्रवाह उत्पन्न करते हुए उन्होंने भावों की अभिव्यक्ति की है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि निराला ने छन्द-बन्धन कहीं स्वीकार ही नहीं किया। 'गीतिका', 'बेला' और 'अणिमा' की लगभग सभी कविताएं स्वर और लय से युक्त गीत-पद्धति पर लिखी गयीं हैं। इनका गेय-तत्त्व और इनकी नाद-ध्वनि द्रष्टव्य है। उन्होंने कुछ गजलें भी लिखीं हैं :-

"जीवन प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा।
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा।।"

निराला ने भाव और छन्द के अनुरूप भाषा का चयन किया है। यदि गेय पदों की भाषा माधुर्य गुण से पूर्ण है तो अतुक्रान्त पदों की भाषा ओज गुण से युक्त है। यदि 'राम की शक्ति पूजा' की भाषा संस्कृतगर्भित है तो 'कुकुरमुत्ता' की भाषा नित्य प्रति की व्यवहार में आने वाली उर्दू मिश्रित व्यंग प्रधान है। 'नयी कविता' की श्रेणी में परिगणित कविता की भाषा में अंग्रेजी के भी शब्द आये है। उनकी संस्कृतगर्भित पदावली देखिए :-

अनिमेष राम-विश्व जिद् दिव्य शरभंग भाव।
विद्धांग बद्ध कोदंड-मुष्टि खर-रुधिर स्राव।।

रावण प्रहार-दुर्वार-विकल वानर दल बल-
मूर्छित सुग्रीवांगद-भीषण-गवाज-गय-नल।

'कुकुरमुत्ता' की पदावली देखने से भाषा के ऊपर कवि का अधिकार सिद्ध होता है। संस्कृतगर्भित पदावली लिखनेवाला वही कवि कुकुरमुत्ता में लिखता है :-

"अबे सुनबे गुलाब
भूल मत गर पाई, खुशबू रंगोआब।"

इसमें उर्दू का प्रयोग, भाषा की सरलता और व्यंग्य की चोट है। निराला की भाषा में तीखा व्यंग्य प्रचुर मात्रा में मिलता है। 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' आदि में यह व्यंग्य मुखरित है। शब्द-चयन उनकी भाषा का विशेष गुण है।

अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग निराला जी की कविताओं में हुआ है। उपमा, रूपक, मानवीकरण आदि अलंकार निराला की कविताओं में अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रयुक्त हैं। अलंकारों का कुछ प्रयोग देखिए :-

उपमा-- 'वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन।'

रूपक-- तुम आशा के मधुमास और मैं पिक कल कूजन तान
तुम मदन पंच शर-हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान"

मानवीकरण-- "बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफाली के

उदाहरण तथा अनुप्रास-- "अश्रु बह जाते थे
कामिनी के कोरों से
कमल के कोषों से प्रात की ओस ज्यों"

निराला जी की कविताओं के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार करने के बाद यह कहा जा सकता है कि छायावादियों में प्रमुख तथा दार्शनिक, मानवतावादी और प्रगतिशील विचारों के महाकवि निराला ने भाषा, भाव, छन्द और शैली सबमें परिवर्तन कर हिन्दी काव्य-साहित्य को संपुष्ट किया है।



बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

जन्म-संवत् :-- १६५४ वि० मृत्यु-संवत् :-- २०१७ वि०

जीवन-वृत्त :- बालकृण शर्मा 'नवीन' का जन्म संवत् १६५४ वि० में ग्वालियर जिलान्तर्गत उज्जैन के मयाना ग्राम में हुआ। उनके पिता जमुना प्रसाद बल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे और उदयपुर में 'श्रीनाथ द्वारा' नामक स्थान पर रहते थे। कुछ वर्षों तक वहाँ उनके साथ रहने के पश्चात् अध्ययन की भावना से बालक बालकृष्ण को ग्वालियर जाना पड़ा। मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद वे उज्जैन के माधव कालेज में प्रविष्ट हुए और वहीं से १६७३ वि० में उन्होंने मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् गणेश शंकर विद्यार्थी जी से कवि 'नवीन' का परिचय हुआ और कानपूर आकर वे रहने लगे। वे बी०ए० कक्षा में थे तभी असहयोग आन्दोलन छिड़ा। उसमें उन्होंने सक्रिय भाग लिया और अध्ययन छोड़ दिया। यहीं से उनकी देश-सेवा आरम्भ हुई। वे कई बार जेल गये। इसीके साथ ही साहित्यिक सेवा भी चलती रही। ओजस्वी स्वर में उन्होंने राष्ट्रीय कविताओं का गान किया। उनकी कविता में उनका दो रूप देखने को मिलता है। कुछ कविताएं प्रेम की अतृप्ति से सम्बन्धित हैं और कुछ राष्ट्रीय भावनाओं तथा सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं से सम्बन्धित क्रान्तिमूलक भावों से समन्वित हैं। राष्ट्रीयता की ओर उनका झुकाव विद्यार्थी जी के सम्पर्क में आने पर ही हुआ। विद्यार्थी जी के प्रति ऋण स्वीकार करते हुए उन्होंने कहा है :-

'तेरे बरद हस्त छाये हैं अब भी मेरे मस्तक पर'

उनकी हिन्दी-सेवा और राष्ट्र-सेवा के कारण उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से सम्मानित किया गया। उनकी रचना का आरम्भ 'संतू' नामक कहानी से हुआ। 'कुसुम', 'विस्मृता उर्मिला', 'क्वासि', 'अपलक' और 'रश्मि रेखा' उनके काव्य-ग्रन्थ हैं। इन कृतियों में कहीं उनकी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति है तो कहीं राष्ट्रवादी और प्रगतिशील भावनाओं की। 'कुंकुम' राष्ट्रीय विचार धारा की कविताओं का संग्रह है और 'अपलक' तथा 'क्वासी' में प्रेम-भावना का मर्यस्पर्शी कथन है। संवत् २०१७ में 'नवीन' जी का देहावसान हो गया।

वर्ण्य-विषय :- नवीन जी का भावुक हृदय समय-समय पर प्रेम की प्यास का अनुभव करता रहा है। रूप के प्रति आसक्ति-भाव का कथन उन्होंने बड़े ललित ढंग पर किया है। अपनी प्रेमिका से अपने अंधकार पूर्ण जीवन को आलोकित करने की आकांक्षा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है :-

"दीप-रहित जीवन रजनी में, भटक रहा कब से सजनी मैं।
भूल गया हूँ अपनी नगरी, कुहू व्याप्त है सारी डगरी।।
अपनी दीप-शिखा की किरणें जाने को उस पथ की ओर।
जहाँ भ्रान्त-सा ढूँढ रहा हूँ प्रतिमे तव अंचल का छोर।।"

कवि की यह खोज उसकी अतृप्ति की ही परिचायिका है। उनकी कविता 'मेरे मंदिर लोचन प्राण' में भी उनकी प्रणय भावना का ही दर्शन होता है। भावावेश में उर्दू के शब्दों का प्रयोग करता हुआ कवि कह उठता है :-

"गर कभी आ जाय अपने प्राण-धन की याद
तो चढ़ाये व्यर्थ भौंहें, क्यों कहो सैयाद
जब नहीं करते कफस की हम कभी फरियाद
तब उसे क्या, यदि करें हम सजन के गुण-गान"

उर्दू मिश्रित पदावली होते हुए भी प्रणयभाव की तीव्र अभिव्यक्ति ही इन पंक्तियों में हुई है। 'क्वासि' और 'अपलक' की अधिकांश कविताओं में रूप और प्रेम से सम्बन्धित भावनाओं की ही व्यंजना है।

राष्ट्रीय कवि के रूप में उन्होंने अपने विद्रोही-विचारों को पुष्ट किया है। विप्लवकारी की तरह उन्होंने कवि से क्रान्तिकारी भावों की पुष्टि की माँग की है। उनकी इस आकांक्षा का ओजस्वी स्वर सुनिए :-

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आए एक हिलोर उधर से आए।।
प्राणों के लाले पड़ जाएँ, त्राहि त्राहि रव नभ में छाए।
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाए।।"

असहयोग आन्दोलन की असफलता पर कवि का मन निराशा से भर गया। उसके अन्दर वेदना और क्षोभ का भाव भर गया। उसका यह असंतोष उसके 'पराजय-गीत' में मुखरित हुआ। उसे खड्ग की धार कुण्ठित हुई-सी दीख पड़ी और तूणीर खाली-सा दिखाई पड़ा। अपने तीर को लक्ष्य-भ्रष्ट देखकर और अपनी ध्वजा को झुकी हुई देखकर वह निराश भाव से कह उठा :-

"आज खड्ग की धार कुंठिता है खाली तूणीर हुआ।
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ।।
बढ़ती हुई कतार फौज की सहसा अस्त व्यस्त हुई।
त्रस्त हुई भावों की गरिमा, महिमा सब संन्यस्त हुई।।"

सत्याग्रह के प्रति निष्ठा के कारण सत्याग्रहियों के प्रति उनका स्वाभाविक प्रेम था। ऐसे ही सत्याग्रहियों की मुक्ति के अवसर पर कवि ने 'कैदी जीवन' का चित्र देते हुए 'कैदी का स्वागत' शीर्षक कविता का प्रणयन किया। सिकचों के दरम्यान टहलते हुए कैदी की कुरबानी की कथा कहते हुए उसने उसकी रिहाई के अवसर पर उसे गले लिपट जाने का आमन्त्रण दिया है :-

"माँ ने किया पुकार बढ़ा तू चढ़ा हुआ कुरबान।
हमने देखा तुझे टहलते सिकचों के दरम्यान।।
हाथों में थी मूँज कभी बैठा चक्की पर गाते।
कंबल बिछा ओढ़ कंबल दिन बिता दिये मदमाते।।
बहुत दिनों के बिछुड़े प्यारे अंतर हिय से सट जा।
आज रिहाई हुई दौड़ आ मोहन गले लिपट जा।।"

कैदी जीवन की अनुभूति ने कैदी का जैसा सुन्दर चित्र इस पद में उपस्थित किया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

राष्ट्रीय कवियों के स्वर में ही प्रगतिशील कवियों का स्वर भी पहलेपहल सुनाई पड़ा। प्रगतिवाद की पहली सीढ़ी थी क्रान्ति। विप्लव और क्रान्ति ही पहले प्रगतिशील कवियों के विषय बने। नवीन जी कृत **"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ।"** में यही विप्लवकारी स्वर मुखरित हुआ है। भूखे मनुष्य को जूठा पत्तल चाटते देखकर उनका मन मनुष्य की दीन-हीन स्थिति पर रो उठा। भूखे और नंगे मानव के प्रति उनकी गहरी सहानुभूति थी। सर्वहारा, मजदूर और सभी निर्धन प्राणियों के प्रति कवि का मन करुणा से द्रवित था। उनके प्रति उमड़ी हुई करुणा ने उसकी आँख के सामने विषमता का कलंकपूर्ण चित्र उपस्थित किया और वह उस दुनिया में ही आग लगा देने को उत्सुक हो उठा जिसमें इतनी विषमता, इतनी लाचारी और इतनी अकिंचनता भरी हुई है। 'जगपति' पर खीझ व्यक्त करता हुआ वह कह उठा :-

"लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन देखा मैंने नर को।
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ आज आग इस दुनिया भर को।।
यह भी सोचा क्या न टेंटुआ घोटा जाय स्वयं जगपति का।
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।।"

नवीन जी की इन कविताओं को किसी प्रगतिशील कवि की कविताओं के बीच रखकर परखा जा सकता है। इसमें कवि की स्वाभाविक खीझ और दीन-जनों के प्रति उसकी सहानुभूति ही दीख पड़ेगी।

कुछ कविताएँ वर्णनात्मक पद्धति पर भी लिखी गयी हैं। इनमें विचार और विश्लेषण की गहराई देखने को मिलती है। 'रहस्य-उद्‌घाटन' शीर्षक कविता में 'नवीन' जी ने सांसारिक आकर्षण के बीच मनुष्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का ही परिचय दिया है। मानव ने निरलंकृता प्रकृति को नियमों के कंकण पहनाये हैं, उसने अणु-भेदन किया है, किन्तु वह स्वयं असन्तुष्ट है और स्वयं नयी समस्या उत्पन्न करता रहता है। वह कार्य और कारण की शृंखला बनाता है और भूतग्रस्त होने के कारण भौतिकता का उत्क्रमण नहीं कर पाता। मानव के इस स्वरूप का, उसकी भावनाओं का विश्लेषण 'नवीन' जी ने अपनी इस कविता में प्रस्तुत किया है। वर्णनात्मक पद्धति पर विवेचन प्रस्तुत करते हुए उन्होंने कहा है :-

"क्या है स्रोत ज्ञान का? पूछा यों जब मानव ने अपने से,
तो आई ध्वनि की ज्ञान है केवल इन्द्रिय के कँपने से
बोल उठा भौतिक विज्ञानी हैं इन्द्रियाँ ज्ञान की साधन,
इसके बिना कहो कैसे हो मानव का यह ज्ञानाराधन।
मानव ने अपने स्वरूप के सुने तर्कमय ये सब प्रवचन,
किन्तु तत्व-उद्‌घाटन रत जन पा न सका सन्तोष शान्तिधन।।"

'नवीन' जी की इन रचनाओं में उनके विचारों का आधिक्य होने के कारण कल्पना-तत्त्व शिथिल हो उठा है। विश्लेषण की प्रधानता के कारण इन कविताओं में बौद्धिकता अधिक और कवित्त्व कम दिखाई पड़ता है।

उन्होंने मुक्तक कविताओं के अतिरिक्त 'विस्मृता उर्मिला' नामक खण्डकाव्य भी लिखा है। इस कृति में काव्य की उपेक्षिता उर्मिला का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण हुआ है। इस खण्डकाव्य की रचना में भी 'नवीन' जी को पर्याप्त सफलता मिली है, किन्तु मुक्तक में वे विशेष सफल रहे हैं। मुक्तक-रचनाओं में भी राष्ट्रीय तथा प्रगतिशील भावनाओं की कविताएं ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। राष्ट्रीय कविताओं में

'नवीन' जी ने रचनात्मक और निर्माणात्मक भावों को ही पुष्ट किया है। उनकी इन कविताओं से भारत के युवकों को प्रेरणा मिली है। उन्होंने राष्ट्रीय-चेतना को उद्बुद्ध कर सोये हुए भारतीयों को जगाया है।

कला-पक्ष :- भाषा की दृष्टि से 'नवीन' जी की कविताओं की भाषा सरल, सुबोध खड़ी बोली है। भाषा में नित्यप्रति के व्यवहार में आने वाले उर्दू शब्दों का भी खुलकर उन्होंने प्रयोग किया है। उनकी इस प्रकार की भाषा का एक उदाहरण देखिए :-

''माँ ने किया पुकार बढ़ा तू चढ़ा हुआ कुरबान।
हमने देखा तुझे टहलते सिकचो के दरम्यान।।''

इन पंक्तियों में 'कुरबान', 'सिकचों' और 'दरम्यान' का प्रयोग उनकी भाषा सम्बन्धी उदारता का ही परिचायक है। 'बढ़ा तू चढ़ा हुआ कुरबान' जैसे प्रयोग में क्रम की शिथिलता और वाक्य-दोष भी दिखाई पड़ता है, किन्तु यह कवि के तीव्र भावावेश के परिणाम-स्वरूप ही हुआ है। जहाँ विवेचन पक्ष प्रबल है वहाँ भाषा भी संस्कृतगर्भित हो उठी है। 'रहस्य-उद्घाटन' की कुछ पंक्तियों को देखिए :-

''मनुज कर रहा है घोषित यों और, नहीं हूँ भूत संग में !
मैं हूँ सांग उपकरण-संयुत, पर फिर भी हूँ नित अनंग मैं!!
इसी नित्य प्राप्तव्य ध्येय की ओर जा रहा है यह लघु जन !
यह रहस्य-उद्घाटन रत-मन, पंख हीन यह, यह संश्लथ तन।।''

उनकी भाषा भावानुरूप बदलती रही है, इसीलिए उसमें एकरूपता नहीं है।

छन्द की दृष्टि से भी 'नवीन' जी ने भाव के अनुसार नये-नये प्रयोग किये हैं, किन्तु उन्होंने मात्रिक छन्दों का ही उपयोग अधिक किया है। राष्ट्रीय कविताओं में ओजगुण का और प्रेम-मूलक कविताओं में माधुर्य गुण का समावेश कर उन्होंने भावाभिव्यक्ति में विशेष सफलता प्राप्त की है। अलंकारों की दृष्टि से उनकी कविताओं में स्वाभावोक्ति की प्रधानता है। अनुप्रास, रूपक, मूर्तविधान आदि भी प्रसंग के अनुसार प्रयोग में आए हैं, किन्तु उनके प्रयोग के लिए कवि को प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। उनकी कृतियों में कलाकारिता का प्रयास नहीं, हृदयगत भावनाओं की शुद्ध अभिव्यक्ति है।



सुभद्राकुमारी चौहान

जन्म-संवत् :-- १९६१ वि०

मृत्यु-संवत् :-- २००४ वि०

जीवन-वृत्त :- सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म प्रयाग में संवत् १९६१ वि० में हुआ। इनके पिता रामनाथ सिंह एक विद्वान व्यक्ति थे। सुभद्रा जी को दो भाई और तीन बहनें थी। उनका परिवार राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित था। उनके एक भाई रामप्रसाद सिंह ने तो असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर सब इन्सपेक्टर पुलीस के पद से त्यागपत्र भी दे दिया था। सुभद्रा जी ने भी असहयोग आन्दोलन में भाग लिया और अध्ययन छोड़ दिया। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा प्रयाग के क्रास्थवेट कालेज में हुई थी। उनका विवाह खण्डवा-निवासी लक्ष्मण सिंह के साथ हुआ। यहीं उनको काव्य-गुरु के रूप में माखनलाल चतुर्वेदी मिले। उनके प्रभाव में रहकर सुभद्रा जी ने राष्ट्रीय-भाव की कविताएँ लिखीं। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें कई बार जेल-यात्रा भी करनी पड़ी।

उनका जीवन बड़ा सात्विक और साधारण-सा था। बाल्यावस्था में उन्हें डराने के लिए परिवार के लोग 'गोगा आया' कहा करते थे, किन्तु उन्हें कभी 'गोगा' दिखायी नहीं पड़ा। इसलिए उन्हें 'गोगा' और भगवान लगभग एक से लगे और तुकबन्दी के स्वर में उन्होंने कहा :-

"तुम बिन व्याकुल है सब लोगा।
तुम तो हो इस देश के गोगा।।"

उन्हें खादी से प्रेम था और वे पूर्णतः राष्ट्रवादी थीं। स्वतंत्र भारत में उन्हें मध्य-प्रदेश विधान-सभा की सदस्यता प्राप्त हुई। वे साहित्यिकों की एक बिरादरी मानती थीं। इसी भाव से उन्होंने अपनी पुत्री सुधा का व्याह स्वर्गीय मुन्शी प्रेमचन्द्र के पुत्र अमृत राय से किया। उनकी कविता में प्रेम और राष्ट्रीयता के भाव पल्लवित हैं। रमणी हृदय की भावुकता ने यदि उनके काव्य में प्रेम और शृङ्गार का रस भर दिया थां तो राष्ट्रीय भावनाओं ने देश-प्रेम का स्वर।

राष्ट्रीय भाव की कविता लिखने में अग्रणी सुभद्रा जी १२ फरवरी सन् १९४८ ई० को मोटर से यात्रा कर रहीं थीं। उसी समय मोटर-दुर्घटना हुई और उनका स्वर्गवास हो गया।

रचनाएँ :- सुभद्रा जी मुख्यतः कहानी-लेखिका और कवयित्री के रूप में सुख्यात थीं। उनकी रचनाएँ हैं :- मुकुल, बिखरे मोती, उन्मादिनी, त्रिधारा आदि।

भाव-पक्ष :- सुभद्रा जी का नाम लेते ही हमें उनकी राष्ट्रीय कविताएँ स्मरण हो आतीं हैं, किन्तु उन्होंने राष्ट्रीय कविताओं के अतिरिक्त वात्सल्य और प्रेम-भाव की भी कविताएं लिखी हैं। उनकी वीररसपूर्ण कविताओं में 'झाँसी की रानी' को विशेष लोकप्रियता प्राप्त हुई। इस कृति के प्रकाशन के तुरंत बाद ही युवकों ने इसकी पंक्तियों को दुहराना शुरू कर दिया :-

"बुन्देलों हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसीवाली रानी थी।।"

ओजपूर्ण स्वर में वीर-भाव सम्पन्न राष्ट्रीय पदों का कथन कर सुभद्रा जी ने अपने देश के युवकों और युवतियों को नयी प्रेरणा दी। अबलाओं को ललकारती हुई वे कह उठीं :-

"सबल पुरुष यदि भीरु बने
तो हमको दे वरदान सखी
अबलाएं उठ पड़ें देश में
करें युद्ध घमसान सखी।"

'वीरों का हो कैसा बसन्त" में कवयित्री ने भारत के प्राचीन वैभव का स्मरण दिलाया है तथा आज के भारत की स्थिति का कथन किया है। 'झाँसी की रानी' में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के त्याग और वीरता की कथा कहकर भारतीय नारियों को उद्बोधन दिया गया है। सन् ५७ में चमक उठनेवाली तलवार का परिचय देती हुई वे कह उठतीं हैं :-

"सिंहासन हिल उठे राजवन्शों ने भृकुटी तानी थी।
बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी।।
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुख हमने सुनी कहानी थी।।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।"

इन कविताओं का ओज दर्शनीय है।

सुभद्रा जी का मातृत्व वड़ा ममतामय था। अपनी बिटिया की मधुर बोली से भरे हुए वातावरण को वे नन्दन-वन से कम सुन्दर नहीं मानतीं थीं :-

"मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन वन-सी फूल उठी यह छोटी सी कुटिया मेरी।।"

इन पंक्तियों में उनका वात्सल्य देखने को मिलता है। वे माता के हृदय को बड़ा महत्त्व देतीं रही हैं तथा अपनी संतान को अपनी गोदी की शोभा और अपने सुख-सुहाग की लाली मानती थीं। संतान पर लिखी गयी उनकी कविता देखिए :-

"यह मेरी गोदी की शोभा।
सुख सुहाग की है लाली।।
शाही-शान भिखारिन की है।
मनोकामना मतवाली।।"

प्रेम और शृङ्गार के कथन में उनकी अभिव्यक्ति बड़ी सरल और सीधी है। नारी का प्रणय-भाव उनकी प्रेम सम्बन्धी कविताओं में ध्वनित है। सरल और स्पष्ट अभिव्यक्ति होने पर भी मर्यादा का अतिक्रमण उनकी इन कविताओं में नहीं होने पाया है। दाम्पत्य-प्रणय की कहानी अविधा में उन्होंने कह दी है। प्रिय ने गाना सुनकर शाबाशी दी और नारी हृदय अपना प्रेम का अक्षय कोश खोल बैठा। उसकी इस निधि को प्रिय ने चुम्बन देकर प्राप्त किया :-

"मधुर-मधुर मीठे शब्दों में मैंने गाना गाया एक।
वे प्रसन्न हो उठे खुशी से शाबाशी दी मुझे अनेक।।

प्रेमोन्मत्त हो गई, मैंने उन्हें प्रेम निज दिखलाया।
उसी समय बदले में उनसे एक प्रेम-चुम्बन पाया।।"

यौवनागमन का भी बड़ा सुन्दर परिचय उन्होंने दिया है :-

"लाज-भरी आँखें थीं मेरी, न में उमंग रँगीली थी।
तान रसीली थी कानों में चंचल छैल छबीली थी।।"

जयशंकर प्रसाद जी ने प्रेम-पथिक में प्रेम-यज्ञ के बीच कामना को हवन करने की बात कही है। सुभद्रा जी ने भी प्रेम की वेदी पर अपने को समर्पित करने की बात : स्वीकार है। अपने प्रभु के लिए वे पूजा, पुजापा, पुजारिन और दक्षिणा सबकुछ स्वयं ही बन जातीं हैं। उनका यह स्वरूप उनके पूर्ण समर्पण की भावना को ही व्यक्त करता है। अपनी इसी पूर्ण निष्ठा की अभिव्यक्ति उन्होंने अपने इस पद में की है:-

"धूप दीप, नैवेद्य नहीं है, झाँकी का शृङ्गार नहीं।
हाय गले में पहनाने को फूलों का भी हार नहीं।।
पूजा और पुजापा प्रभुवर इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो।।
चरणों पर अर्पित है इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है ठुकरा दो या प्यार करो।।"

कला-पक्ष :- सुभद्रा जी ने मुख्यतः वीर, शृङ्गार और वात्सल्य रस की कविताएँ ही लिखीं हैं। वीर-रस की राष्ट्रीय कविताओं में ओजगुण प्रधान है। वात्सल्य और शृङ्गार भावों के कथन में प्रसाद और माधुर्य गुणों का उन्होंने आश्रय लिया है। उन्होंने वर्ण्यवस्तु को उसके स्वाभाविक रूप में ही प्रस्तुत किया है। उनकी भाषा सरल-सुबोध खड़ीबोली है। उनके द्वारा अभिधामूलक प्रयोग ही अधिक हुआ हैं। शब्द-चयन भावानुरूप ही है। वीर रस का कथन करते समय ओजपूर्ण संस्कृत तत्सम शब्दों को स्वीकार किया गया है, किन्तु अन्य रसों के कथन में नित्य-प्रति के व्यवहार में आनेवाले सरल सुबोध ा शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। अलंकारों के स्वाभाविक कथन में ही उनकी कविता की विशेषता है। अनुप्रास, उपमा और मूर्तविधान की स्वाभाविक स्थिति देखिए :-

अनुप्रास-- "यह मेरी गोदी की शोभा, सुख सुहाग की है लाली।
शाही-शान भिखारिन की है, मनोकामना मतवाली।।"

उपमा-- "मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन बन-सी फूल उठी थी नन्हीं सी कुटिया मेरी।।"

मूर्तविधान-- "बूढ़े भारत में भी आई फिर से नयी जवानी थी।।"

आधुनिक काल की कवयित्रियों में सुभद्रा जी ने विशेष ख्याति अर्जित की। इस युग में वीर रस का कविताएँ तो लगभग शून्य-सी हैं। राष्ट्रीय कवियों ने ही कुछ वीरभावपूर्ण कविताएँ कीं हैं। सुभद्रा जी की कविताएँ भी राष्ट्रीय होने के साथ ही वीररस पूर्ण हैं। उनकी इन कविताओं को देखकर यह कहा जा सकता है कि देश के स्वतन्त्रता-आन्दोलन को प्रतिध्वनित करने वाले राष्ट्रीय-धारा के कवियों में सुभद्रा जी का स्थान प्रमुख है।



महादेवी वर्मा

जन्म-संवत् :-- १९६४ वि०　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- २०४४ वि०

जीवन-वृत्त :- आधुनिक युग की मीरा महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ वि० में उत्तर प्रदेश स्थित फर्रुखाबाद जिला में हुआ। उनके पिता गोविन्द सहाय वर्मा भागलपुर के विद्यालय में प्रधानाचार्य थे। उनकी माता का नाम हेमरानी देवी था। वे आस्तिक वृत्ति की महिला थीं। माता के आदर्शमय चरित्र और नाना के ब्रजभाषा प्रेम ने उन्हें साहित्य की ओर उन्मुख किया। छठवीं कक्षा तक अध्ययन करने के पश्चात् अल्पायु में ही उनका विवाह बरेली निवासी डा० स्वरूपनारायण वर्मा से हो गया। उनकी आरम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई थी और संगीत तथा चित्रकारी में उन्होंने पर्याप्त कुशलता प्राप्त कर ली थी। श्वसुर की मृत्यु के बाद श्वसुर-गृह में रहते हुए ही उन्होंने पुनः अध्ययन आरम्भ किया। संवत् १९७७ की मिडिल की परीक्षा में वे सर्व प्रथम रहीं। संवत् १९८१ में उन्होंने हाईस्कूल की परीक्षा भी प्रथम श्रेणी में ही उत्तीर्ण की। बी०ए० और एम०ए० में भी उन्हें प्रथम श्रेणी ही प्राप्त हुई। एम०ए० में उनका विषय संस्कृत साहित्य था।

महादेवी जी का दाम्पत्य जीवन सुखमय न रह सका। उन्हें अपने इस अभाव की पीड़ा बराबर व्यथित करती रही। इसी पीड़ा की अनुभूति ने उनमें आध्यात्मिक वेदना का स्वर उत्पन्न किया। वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्य हो गयीं। उन्होंने 'चाँद' और 'साहित्यकार' का सम्पादन किया। उनकी 'नीरजा' और 'यामा' शीर्षक पुस्तकों पर उन्हें क्रमशः 'सेक्सेरिया' और 'मंगला प्रसाद' पारितोषिक प्राप्त हुआ। यामा पर उन्हें 'ज्ञानपीठ' पुरस्कार भी मिला था। उन्हें पद्मश्री की उपाधि प्रदान की गयी। सफल रेखाचित्र-लेखिका, चित्रकार और कवयित्री के रूप में उन्होंने कला और साहित्य की सेवा की। ११ सितम्बर, १९८७ ई० को उनका निधन हो गया। उनकी रचनाएँ सदैव हमारा मार्ग-दर्शन करती रहेंगी।।

रचनाएँ :- उनकी कविता की पुस्तकों में नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, दीपशिखा, यामा, संधिनी आदि महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त उनके विभिन्न निबन्धों के संग्रह भी 'अतीत के चलचित्र', 'शृङ्खला की कड़ियाँ' 'स्मृति की रेखाएँ' आदि नामों से प्रकाशित हैं।

रहस्यवादी भावना :- महादेवी वर्मा की रहस्यवादी कविताओं में उस 'असीम' से मिलने की तड़प के साथ ही उससे मिल लेने के काल्पनिक सुख की आकांक्षा भी वर्तमान है। उस 'असीम' के सम्बन्ध में उन्होंने कहा है :-

"जब असीम से हो जायेगा मेरी लघुसीमा का मेल।
देखोगे तुम देव, अमरता खेलेगी मिटने का खेल।।"

रहस्यवादियों को प्रिय के आगमन की सूचना किसी आवरण के माध्यम से प्राप्त होती है। महादेवी जी ने भी अनुभव किया कि उनके प्रियतम को तम के परदे में आना भाता है। उन्होंने उसे 'रजत रश्मियों की छाया में' धूमिल घन-सा आते देखा। रहस्यवादियों की तरह अपने प्रिय को, उस परमेश्वर को, उन्होंने भी स्वप्न में ही देखा और स्वप्न-भंग की स्थिति को अभिशाप समझा :-

"वह सपना बन आता;
जागृति में जाता लौट।"

प्रिय के आगमन पर उसका पदचाप उन्होंने सुना और उससे उन्हें यह अवनी पुलकित होती दिखालाई पड़ी।

"सुन प्रिय की पदचाप, हो गई पुलकित यह अवनी'।

रहस्यानुभूति करनेवालों की दो स्थिति होती है -- (१) तादात्म प्राप्त करने की कामनामय स्थिति और (२) विरह में चिर रहने वाली स्थिति। महादेवी की स्थिति दूसरे प्रकार की थी। वे 'विरह में चिर' रहना चाहतीं थीं। वे जीवन को 'विरह का जलजात' मानती थीं। रहस्यवादियों में पत्र-लेखन की क्रिया भी होती है। कबीर ने 'करंक की लेखनी' बनाकर राम के नाम पत्र लिखा था। महादेवी की रचना में भी पत्र-लेखन का यह कर्म वर्तमान है :-

"कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती।
दृग जल की सितमसि है अक्षय,
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती"

उनकी भावना में आध्यात्म-प्रेम के साथ भौतिक-स्नेह भी मिला रहता है। इसीलिए उनके काव्य में कला-पक्ष की सबलता है।

आत्मा का ब्रह्म के प्रति प्रणय-भाव दिखलाते हुए उन्होंने कहा है :-

"मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है"

उन्होंने अपने ब्रह्म को प्रकृति से सम्बन्धित करके देखा है :-

"रवि शशि तेरे अवतंश लोल
सीमान्त जटित तारक अमोल"

उनके रहस्य भाव पर उपनिषदों के एकात्मवाद का प्रभाव है। इस प्रभाव को व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने को बीन भी और उसकी रागिनी भी कहा है।

वेदना का स्वर :- महादेवी जी मुख्यतः विरह-वेदना की कवयित्री रही हैं। उनमें पीड़ा इतनी अधिक थी कि वे उससे ही अनुराग करने लग गयीं थी। उन्होंने पीड़ा की सीमा का परिचय देते हुए कहा है :-

"है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना"

उन्होंने वियोग से उत्पन्न वेदना को इतना सहा था कि वे संयोग की आकांक्षा भी नहीं रखती थीं। वे 'वियोग पल रोते' हुए काटना चाहती थीं और 'संयोग समय छिप जाना' चाहती थीं। उनकी पीड़ा शाश्वत रही है। उन्हें अपने प्रिय के संयोग सदैव स्मरण रहे हैं। उस अनन्त प्रिय के मिलन के समय प्रिय के हास बिन्दु और अपने अश्रुबिन्दु से भरे हुए फूलों को उन्होंने देखा था। उसकी स्मृति में उन्होंने कहा है :-

"कैसे कहती हो सपना है
अलि उस मूक मिलन की बात ?

भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।"

उनकी वेदना, उनका दुख ऐसे काव्य के रूप में सबके समक्ष आया जो सारे संसार को एक सूत्र मे बाँध रखने की क्षमता रखता है।

छायावादी प्रवृत्ति :- छायावादी कवियों की मुख्य प्रवृत्ति थी प्रकृति में मानवरूपों की अवतारणा। इसके साथ ही चित्रात्मकता, ध्वन्यात्मकता और शब्द-चयन पर उनका विशेष ध्यान था। चित्रात्मकता और मानवीकरण से युक्त महादेवी जी की कविता देखिए :-

*"धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ बसन्त रजनी
तारकमय नव वेणी बन्धन
शीशफूल कर शशि का नूतन
रश्मिवलय सित घन अवगुण्ठन
मुक्ताहल अभिराम बिछादे
चितवन से अपनी
पुलकती आ बसन्त-रजनी।"*

चित्रात्मकता का एक दूसरा स्वरूप देखिए :-

*"स्पन्दनमें चिर निष्पन्द बसा
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा
नयनों में दीपक से जलते
पलकों में निर्झरणी मचली।"*

निश्चय ही महादेवी जी की कविताओं में छायावाद की विभिन्न विशेषताएँ मिलती हैं। नये छन्दों के प्रयोग, आत्म-निवेदन, शब्द-चयन, चित्रात्मकता, मूर्तविधान आदि के आधार पर वे सफल छायावादी कवयित्री थीं।

प्रकृति-चित्रण :- प्रकृति को विभिन्न रूपों में महादेवी जी ने चित्रित किया है। कहीं उन्होंने प्रकृति का अलंकार रूप में कथन कि.. है, कहीं छायावादियों की तरह उन्होंने उसका मूर्तविधान किया है, कहीं उसके माध्यम से रहस्यानुभूति की है और कहीं उसे उपदेश देने के लिए माध्यम बनाया है:-

अलंकार के रूप में :- 'प्रिय ! सांध्य गगन, मेरा जीवन' में जीवन की उपमा के लिए 'सान्ध्य गगन' का प्रयोग किया गया है।

मूर्त-विधान रूप में कथन :-

'धीरे-धीरे उतर क्षितिज से आ बसन्त रजनी'

रहस्यानुभूति के कथनार्थ :-

"मुस्काता संकेत भरा नभ, अलि! क्या प्रिय आने वाले हैं ?"

आलम्बन रूप में तथा परिस्थिति के चित्रण के लिए :-

*"रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली"*

उपदेशात्मक रूप में :-

"गल जाता लघु बीज असंख्यक नश्वर बीज बनाने को।
तजता पल्लव वृन्त पतन के हेतु नये विकसाने को।।"

भाषा-शैली :- आरम्भ में महादेवी जी ने ब्रजभाषा को ही अपने काव्य का माध्यम बनाया। बाद में उन्होंने खड़ीबोली में रचना आरम्भ की। उनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है और उसमें ध्वन्यात्मकता, चित्रात्मकता, मूर्तविधान आदि की अपूर्व शक्ति है तथा लाक्षणिकता है। इसलिए उन्हें 'किरणें चमकती हुई' और 'प्रभात हँसता' हुआ दिखाई पड़ा। भाषा में गेय तत्त्वों की स्थिति ने उनके पदों में राग, लय आदि की सृष्टि कर उन्हें संगीत-सा मधुर बना दिया है। उनकी भाषा में जो स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह मिलता है, उसे देखकर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी उनकी भाषा की सराहना की थी। भाषा में भावानुरूप कोमलता का स्वरूप देखिए :-

"मधुरिमा के मधु के अवतार
सुधा से, सुषमा से, छविमान
आँसुवों में सहमे अभिराम
तारकों से हे मूक अजान
सीख कर मुस्काने की बान
कहाँ आये हो कोमल प्राण"

उनकी कविताओं में 'प्रतीकों' का सुन्दर प्रयोग है। उनके यहाँ 'पावस की रात' कोमलता का प्रतीक बनकर आयी है और 'निदाघों के दिन' में कठोरता की स्थिति है। "दृगों में सोते हैं अज्ञात, निदाघों के दिन, पावस रात" जैसी पंक्तियों में इन प्रतीकों का ही प्रयोग है।

महादेवी जी की कविता में विविध अलंकार स्वतः ही आ गये हैं। विरोधाभास, विशेषण-विपर्यय, अन्योक्ति अर्थात् अप्रस्तुत में प्रस्तुत का कथन, सांग रूपक, दृष्टान्त आदि का सुन्दर प्रयोग उनकी कविता में में मिलता है। इनमें से कुछ का उदाहरण प्रस्तुत है :-

विरोधाभास-- *'शलभ मैं शापमय वर हूँ।'*

विशेषण-विपर्यय-- *"वे सूने से नयन नहीं, जिसमें बनते आँसू मोती,*
वह प्राणों की सेज नहीं जिनमें बेसुध पीड़ा सोती।"

अन्योक्ति-- *"यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो।*
रजत शंख-घड़ियाल स्वर्ण-वीणा स्वर
गए आरती-बेला को शत शत लय से भर,
जब था कल-कण्ठों का मेला
विहँसे उपल तिमिर था खेला
अब मन्दिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को जलने दो।"

सांग-रूपक-- *"तड़ित सुधि में वेदना में करुण पावस रात भी,*
आँक स्वप्नों में दिया तुमने बसन्त प्रभात भी।"

महादेवी जी की कविताओं में व्यक्त विरह-वेदना, रहस्य-भावना तथा उनकी कला का अध्ययन करने के बाद यह कहा जा सकता है कि वे आधुनिक युग की मीरा थीं।

महादेवी और मीरा

आधुनिक युग की कवयित्री महादेवी वर्मा की कविताओं पर विचार करते ही हमारे सामने भक्ति-कालीन मीरा का स्वरूप उभर आता है। एकान्त साधिका और पीड़ा तथा विरह की कवयित्री महादेवी की कविताओं में मीरा की वही पीड़ा देखने को मिलती है जो उन्हें 'गिरिधर के रँग' में रच जाने पर प्राप्त हुई थी। मीरा और महादेवी दोनों ही कवयित्रियों में करुणा का प्राबल्य है और दोनों ही की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है।

रहस्यात्मक प्रवृत्ति के कारण मीरा और महादेवी दोनों नें ही यह माना है कि जीवन और ब्रह्म का मिलन हुआ था और जीव, ब्रह्म से वियुक्त हो आज उसकी पीड़ा का अनुभव कर रहा है। उस मिलन के सम्बन्ध में मीरा कहतीं हैं :-

"पूरब जनम की प्रीति हमारी सजनी,
सो क्यूँ रहै री लुकाय।।"

और महादेवी कहतीं हैं :-

"कैसे कहती हो सपना है
अलि, उस मूक मिलन की बात?
भरे हुए अब तक फूलों में
मेरे आँसू उनके हास।"

महादेवी जी अधिक चिन्तनशील थीं किन्तु मीरा में चिन्तनशीलता न होकर भावुकता अधिक थी। इसलिए महादेवी जी का दार्शनिक पक्ष प्रबल है और मीरा की कविताओं में भक्ति का आवेश है। महादेवी ने किसी साकार रूप पर अपनी अर्चना के फूल नहीं चढ़ाये, किन्तु मीरा ने गिरिधर गोपाल के आगे अपने आप को लुटा दिया। साधना के क्षेत्र में महादेवी ने निराकार को स्वीकार किया और मीरा ने साकार ब्रह्म को स्वीकृति दी। यही कारण है कि महादेवी जी की कविताओं में मीरा की अपेक्षा अधिक अस्पष्टता है।

मीरा और महादेवी दोनों में ही प्रिय की प्रतीक्षा की तन्मयता दिखाई पड़ती है। मीरा प्रिय का पथ देखते-देखते सारी रात बिता देतीं हैं और कह उठतीं हैं :- 'प्रिय को पथ निहारत सिगरी रैण बिहानी हो।" महादेवी में भी यही तन्मयता है :- "पथ देख बिता दी रैन, पिया पहिचानी नहीं।" किन्तु इस तन्मयता की एकरूपता होने पर भी इन दोनों में भेद है। महादेवी केवल विरह-वेदना की साधिका थीं। वे 'विरह में ही चिर' रहना चाहती थीं। मीरा की स्थिति इससे भिन्न थी। वे मिलन की उत्कट इच्छा रखतीं थीं। प्रिय को पत्र लिखने की क्रिया दोनों ने सम्पादित की है। मीरा से पत्र नहीं लिखते बनता क्योंकि कलम के धरते ही उनके कर काँपने लगते हैं और महादेवी की अपनी विवशता है- वे पत्र तो लिखती हैं. किन्तु लिखना चाहती कुछ और हैं और लिख कुछ और जाती हैं। अपनी इन्हीं स्थितियों का कथन इन दोनों ही साधिकाओं ने किया है। मीरा कहतीं हैं :-

"पतियाँ मैं कैसे लिखूँ लिख्यो न जाय
कलम धरत मेरो कर काँपत है
नयनन है झर लाय।"

इसी भाव का परिचय महादेवी के शब्दों में देखिए :-

"कैसे सन्देश प्रिय पहुँचाती
दृग जल की सित मसि है अक्षय
मसि प्याली झरते तारक द्वय
पल-पल में उड़ते पृष्ठों पर
सुधि से लिख साँसों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में,
लिखती हूँ कुछ कुछ लिख जाती।"

भाव-क्षेत्र में पर्याप्त समानता रखने पर भी महादेवी और मीरा दोनों ही एक दूसरे से भिन्न हैं। मीरा ने अपने प्रिय के लिए लोक-लाज का परित्याग कर संन्यासिनी का-सा रूप ले लिया था किन्तु महादेवी में कुछ संकोच-भावना थी, अतः उनमें मीरा के समान तन्मय-स्थिति नहीं आ पाई है। मीरा ने ब्रह्म के समक्ष प्रकृति को कोई महत्त्व नहीं दिया किन्तु महादेवी ने प्रकृति के महत्त्व को पूर्णतः स्वीकार किया है। मीरा और महादेवी के युग में भिन्नता रही है, अतः उनकी विचार-पद्धति और अभिव्यक्ति के माध्यम अर्थात् भाषा में भी भिन्नता है। मीरा का भावना-पक्ष प्रबल है और महादेवी का चिन्तन तथा दार्शनिक पक्ष बलवान है। मीरा की भाषा राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा है और महादेवी की खड़ी बोली। मीरा ने विशुद्ध गीतों का गान किया है, महादेवी की कविता में गीत-तत्त्व तो है किन्तु मीरा-सा नहीं। साहित्यिक दृष्टि से महादेवी की कविता का अधिक ऊँचा स्थान है। इसी अन्तर को देखकर आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि मीरा की काव्य-साधना भक्तिमूलक है और महादेवी की काव्य-साधना कला-मूलक।



हरिवंश राय 'बच्चन'

जन्म-संवत् :-१९६४ वि० **मृत्यु-संवत् :-२०५९ वि०**

जीवन-वृत्त :- हरिवंश राय 'बच्चन' का जन्म २७ नवम्बर सन् १९०७ ई० को प्रयाग के कटरा मुहल्ले में कायस्थ परिवार में हुआ। इनके पिता प्रतापनारायण अपने मधुर स्वभाव के कारण सभी के प्रिय थे। बच्चन जी की शिक्षा प्रयाग और काशी में हुई। अंग्रेजी विषय लेकर उन्होंने स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि मिली। प्रयाग विश्वविद्यालय में वे अंग्रेजी विषय के अध्यापक रहे। आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से भी वे संबद्ध रहे। उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर भारत सरकार ने विदेश मंत्रालय में हिन्दी-विशेषज्ञ के रूप में नियुक्त किया। १९६६ में वे राज्य सभा के सदस्य मनोनित किये गये। उन्हें पद्मभूषण सम्मान प्राप्त था, वे अन्य अनेक महत्वपूर्ण सम्मान पुरस्कार से भी विभूषित थे, यथा-साहित्य अकादमी पुरस्कार सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार, आदि।

बच्चन जी को जीवन के प्रारम्भिक दिनों में अत्यधिक संघर्ष करना पड़ा। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। वे एक अध्यापक के रूप में कार्यरत थे। उनकी पत्नी अस्वस्थ हुई। असाध्य रोग से ग्रस्त पत्नी को वे बचा नहीं सके। उनके दिवंगत होने पर कवि बच्चन को जो आघात लगा, वह स्वाभाविक ही था। निराशा और दुःख ने उन्हें घेर लिया इसी मनः स्थिति में वे काव्य-रचना भी करते रहे। १९४२ में उनका दूसरा विवाह हुआ। उनकी पत्नी तेजी बच्चन के आने के बाद उनके जीवन में बदलाव आया। भाग्योदय हुआ और वे उन्नति के विविध सोपानों पर चढ़ते गये। राज्य सभा के मनोनित सदस्य तथा एक सुविख्यात कवि के रूप में वे प्रतिष्ठित हुए। 'बच्चन' जी ने अपने जीवन की कथा का कथन गद्य में किया है। आत्मकथामूलक उनकी इन पुस्तकों से उनके सम्पूर्ण जीवन का विशद् परिचय मिलता है। इन पुस्तकों के शीर्षक हैं :-

१- क्या भूलूँ क्या याद करूँ।

२- नीड़ का निर्माण फिर।

३- बसेरे से दूर।

४- दशद्वार से सोपान तक।

'बच्चन' जी की इन पुस्तकों में उनके कुशल गद्य-लेखक रूप का दर्शन होता है। अत्यन्त रोचक शैली में उन्होंने अपने जीवन के प्रसंगो को उद्घाटित किया है। खड़ीबोली हिन्दी में लिखी गयी उनकी इन गद्य-रचनाओं की भाषा मर्मस्पर्शी, भावाभिव्यंजना में समर्थ तथा व्यावहारिक है। लेखन शैली की दृष्टि से ये रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं।

उत्तर छायावादी कवियों में बच्चन जी को अत्यधिक ख्याति मिली है। मानवीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति, सरलता तथा मर्मस्पर्शिता उनके काव्य की विशेषताएँ हैं। उन्हें आस्थावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। साहित्य में 'हालावाद' के वे प्रवर्तक माने जाते हैं।

प्रारम्भ में कवि 'बच्चन' पर उमर खैयाम का प्रभाव था। उन्होंने उमर खैयाम की रुबाइयों का अत्यन्त सुन्दर अनुवाद प्रस्तुत किया। इस दर्शन में प्रेम की मस्ती का जो स्वरुप प्रकाशित है, उसे स्वीकार कर कवि 'बच्चन' ने 'मधुशाला' नामक काव्य-कृति की रचना की। इसका प्रभाव युवक-वर्ग पर अत्यधिक रहा। पाठकों और कवि-सम्मेलन के श्रोताओं ने कवि 'बच्चन' को सिर-माथे पर बैठा लिया। कवि बच्चन ने कई काव्य-कृतियाँ दीं। उन्हें हालावादी दर्शन का प्रवर्तक कहा गया तथा नव्य स्वच्छन्दतावादी गीतकार के रूप में गौरव प्राप्त हुआ।

काव्य-कृतियाँ :- तेरा हार; मधुशाला; मधुबाला; मधुकलश; हलाहल; निशा-निमंत्रण; एकांत-संगीत; सतरंगिणी, मिलन यामिनी; आकुल अंतर; प्रणय-पत्रिका; आरती और अंगारे; बंगाल का अकाल आदि।

कविता का स्वरूप :- उमर खैयाम के भोगवादी दर्शन के प्रभाव से युक्त 'बच्चन' जी की 'मधुशाला' शीर्षक काव्य-कृति में प्रेम-भावना, मदमस्त जीवन और भाग्यवाद का समर्थन मिलता है। लाख हाथ-पाँव पटकने से भी कुछ होने का नहीं है, भाग्य में जितनी हाला लिखी है उतनी ही मिलेगी। 'मधुशाला' में कवि ने जीवन की क्षणभंगुरता को प्रकाशित करते हुए आनन्द और मस्ती के साथ इस क्षणभंगुर जीवन को जीने का संदेश दिया है। 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश' आदि की रचनाएँ प्यार और टीस से भरी हुई होने पर भी पलायन का समर्थन नहीं करती हैं, बल्कि इनके माध्यम से कई जीर्ण परंपराओं को कवि ने चुनौती दी है। 'मधुशाला' विभिन्न संप्रदाय के लोगों को एक स्थान पर मिलाती है। उन्होंने मधुशाला, मधुबाला और हाला का प्रयोग प्रतीक के रूप में किया है। विविध संदर्भों में ये प्रतीक निराशा के बीच मस्ती का जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

'हलाहल' में कवि बच्चन का मस्ती भरा स्वर दब-सा गया है और उनकी निराश भावना उभर उठी है। उन्हें सर्वत्र खालीपन की अनुभूति हुई है और सबकुछ अविश्वसनीय-सा लगने लगा है।

उन्हें इतिहास के माध्यम से भी नश्वरता का ही बोध हुआ। सभी पात्र दर्द भोगते दिखाई पड़े। अकबर, नूरजहाँ सभी को इस दर्द ने मथा है। नश्वरता का दर्शन और निराशा तथा पीड़ा का स्वर उनकी निम्नांकित पंक्तियों में प्रकट है :-

"कहाँ है अकबर का वह स्वप्न
किसे कर पत्थर से मज़बूत
किया था भू पर उसने सत्य
यहाँ पर थिर किसकी करतूत।
घूमती नूरमहल थी एक
दिवस बन जिन महलों की नूर
खड़े हैं खंडहर से वे आज
किसी दिन हो जायेंगे घूर।

'बच्चन' की काव्य-कृतियों में 'निशा-निमंत्रण' तथा 'एकान्त संगीत' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कवि के हृदय की पीड़ा का स्वर इन कृतियों की कविताओं में सुनाई पड़ता है। उनके उल्लास का स्वर और शृङ्गार-भाव का दर्शन 'सतरंगिणी' तथा 'मिलनयामिनी' की रचनाओं में मिलता है। 'आकुल-अंतर' और 'प्रणय-पत्रिका' में कवि बच्चन की प्रेमपरक कविताएँ संकलित हैं। कवि ने अपनी प्रेमपरक कविताओं में नारी के प्रति आकर्षण-भाव को स्वीकारा है तथा उसके मांसल सौन्दर्य का चित्रण किया है। प्यारी के अधर रस का पान करने की उनकी अभिलाषा देखिए :-

"तबतक समझूँ कैसे प्यार
अधरों से जबतक न कराये
प्यारी उस मधु रस का पान।"

प्रेमोन्माद के कवि 'बच्चन' ने मधु, प्रिया और अपने को एक साथ रखने की बराबर कामना की, किन्तु

इसके बाद भी कुछ है यह सोचने की विवशता भी उन्हें स्वीकार करनी पड़ी-

'इस पार प्रिये तुम हो मधु है;
उस पार न जाने क्या होगा।"

प्यार और दुलार की कमी से तड़पते कवि-मन ने आकांक्षा व्यक्त की- "इसीलिए खड़ा रहा कि तुम मुझे पुकार लो।" उसकी चाहत थी कि कोई उसे पुकार ले, स्वीकार कर ले और उसे प्यार तथा दुलार दे।

'बच्चन' की कविताओं में प्रणय और निराशा ही नहीं आशा और सृजन का स्वर भी सुनायी पड़ता है। 'सतरंगिणी' संग्रह की 'पथ की पहचान' शीर्षक कविता से एक उदाहरण प्रस्तुत है :-

"पर गये कुछ लोग इस पर
छोड़ पैरों की निशानी,
यह निशानी मूक होकर
भी बहुत कुछ बोलती है,
खोल इसका अर्थ, पंथी
पंथ का अनुमान कर ले।
पूर्व चलने के बटोही,
बाट की पहचान कर ले।।"

इस रचना के माध्यम से कवि ने मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी है।

आशावादी स्वर में कवि बच्चन ने स्वप्न देखने अर्थात् सृजन की कल्पना करने और यथार्थ को स्वीकार करने का संदेश भी दिया है :-

"कौन कहता है कि स्वप्नों
को न आने दें हृदय में,
देखते सब हैं इन्हें
अपनी उमर, अपने समय में,
....
किन्तु जग के पंथ पर यदि
स्वप्न दो तो सत्य दो सौ,
स्वप्न पर ही मुग्ध मत हो,
सत्य का भी ज्ञान कर ले।"

इस प्रकार 'स्वप्न' आदर्श का प्रतीक बनकर आया है और 'सत्य' यथार्थ का। व्यक्ति को यथार्थ की भूमि पर रहकर आदर्श भी गढ़ते रहना चाहिए पर प्रमुख है यथार्थ का बोध, यही संदेश हमें इस कविता के माध्यम से दिया गया है।

कवि 'बच्चन' हालावादी, प्रणयवादी, निराशावादी, व्यक्तिवादी कवि के रूप में अधिक जाने जाते हैं, किन्तु उन्होंने अपनी परवर्ती रचनाओं में समाज को भी स्वीकारा है और तब वे समष्टिवादी हो गये हैं। उनकी रचनाओं में देश और धरती की समस्याओं को स्थान मिला है। सामाजिक समस्याओं को भी उन्होंने स्वीकृति दी है। अपनी रागात्मक प्रतिभा के माध्यम से उन्होंने इनका

प्रभावकारी वर्णन किया है। देश-विभाजन के बाद मिली स्वतंत्रता पर कवि की उक्ति देखिए-

''विदेश की कूटनीति हो गयी सफल
समस्त जाति की न काम दी अकल
सभी न भाँप एक चाल, एक छल
फरक हमें दिखा न फूल, शूल में।
यहीं स्वतंत्रता लता गया लगा।
कि मुल्क ओर-छोर खून से रँगा''

'बंगाल का काल' शीर्षक कविता में तथा परवर्ती अनेक रचनाओं में 'बच्चन' जी ने जनजीवन को प्रतिस्थापित किया है। उन्होंने इन रचनाओं में कुछ नये सन्दर्भों को भी उपस्थित किया है। ये रचनाएँ अधिक चिंतनयुक्त हैं। स्वर्ण-नियंत्रण की योजना को क्रियान्वित करने की आवश्यकता का अनुभव होने पर 'बच्चन' जी ने एक सरल कविता का कथन किया .....

''पिया जाओ लाओ नदिया से सोनमछरी''

लोकधुन पर लिखी गयी इस कविता में प्रिया अपने प्रिय से सोनमछरी लाने का आग्रह करती है। उसे उसका प्रिय समझाता है कि स्वर्ण-लोभ बुरा होता है, सीता ने स्वर्ण-मृग की कामना की और मिला दु:ख अत: सोनमछरी की कामना मत करो, स्वर्ण का लोभ मत करो।

भाषा छन्द और अलंकार :- बच्चन जी ने अपनी रचनाओं में सरल, सहज और आडम्बरमुक्त भाषा का प्रयोग किया है। उनकी भाषा में प्रवाह है, चित्र-विधान की शक्ति है और प्रतीकयोजना है। अपनी बात को सीधे ढंग से कहना उनकी कथन-शैली की विशेषता रही है। भाषा में अभिधा शक्ति का उपयोग करते हुए भी उन्होंने बड़े मार्मिक और रोचक रूप में अपने मन के भाव पाठकों तक प्रेषित किये हैं। उन्होंने गीतमय और लोकधुनयुक्त छंदों में कथ्य को प्रस्तुत किया है। गेय होने के कारण ही उनकी रचनाओं को गीत के रूप में मान्यता प्राप्त है और वे आधुनिक गीतकारों में प्रमुख माने जाते रहें हैं।

'बच्चन' जी की कविताओं में विविध अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए :-

अनुप्रास-- **''है अनिश्चित, कब सुमन, कब कंटकों के शर मिलेंगे।**
रूपक-- **''ये उदय होते, लिए कुछ ध्येय नयनों के निलय में।**
उपमा-- **''घूमती नूरमहल थी एक दिवस बन जिन महलों की नूर।**
खड़े हैं खण्डहर से वे आज किसी दिन हो जाएंगे घूर।।
मानवीकरण-- **रास्ते का एक काँटा, पाँव का दिल चीर देता।**

अलंकारों के स्वाभाविक प्रयोग से उनकी रचनाएँ प्रभावकारी हो उठी हैं।

'बच्चन' जी के कविरूप पर विचार करते हुए डा० मत्स्येन्द्र नाथ शुक्ल ने अपनी पुस्तक 'कविता का आधुनिक परिप्रेक्ष्य' में लिखा है :-

''छायावादी संस्कारों से अलग हटकर बच्चन ने कविता को नितान्त नवीन संदर्भ प्रदान किया है। इनकी रचना-यात्रा में व्यष्टि-समष्टि, सूक्ष्म-स्थूल, सामान्य-विशेष तथा विभिन्न सामाजिक रूपों का सफल चित्रण हुआ है। इसका प्रमुख कारण कवि का अनुभव है जिसे उसने संघर्षपूर्ण जीवन-यात्रा में अर्जित किया है। बच्चन अपने समर्थ कृतित्व के बल पर साहित्येतिहास के स्वतंत्र अध्याय बन चुके हैं।''

इस यशस्वी साहित्यकार का निधन मुंबई स्थित निवास 'प्रतीक्षा' में १८ जनवरी, २००३ ई० को हो गया। बच्चन जी अब हमारे बीच नहीं हैं, पर अपनी रचनाओं के कारण वे सदैव हमारे साथ बने रहेंगें, इसमें संदेह नहीं।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

जन्म-संवत् :-- १६६५ वि०

मृत्यु-संवत् :-- २०३१ वि०

जीवन-वृत्त :- मुंगेर जिला स्थित सिमरिया ग्राम में संवत् १६६५ वि० में रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म हुआ। उन्होंने मोकामाघाट स्थित एच०ई० विद्यालय से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण की। पटना विश्वविद्यालय से उन्होंने सन् १६३२ में बी०ए० (आनर्स) की परीक्षा में सफलता प्राप्त की। हिन्दुस्तानी मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ही उन्होंने कई एक ग्रामीण-गीतों की रचना की थी। मैट्रिकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पूर्व ही वे मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी के काव्यों से प्रभावित हो चुके थे। उनपर माखनलाल चतुर्वेदी और बलिया के राम सिंहासन सहाय 'मधुर' की कविताओं का भी तीव्र प्रभाव था। 'अर्धनारीश्वर' में उन्होंने इन प्रभावों को स्वीकार किया है। 'चक्रवाल' की भूमिका में भी इन कवियों के प्रति उन्होंने आभार व्यक्त किया है। सन् १६२१ में दिनकर जी ने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया था। मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद उनकी पहली कृति 'प्रण-भंग' नाम से प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् उन्होंने रेणुका, हुँकार, रसवन्ती, द्वन्दगीत, सामधेनी, बापू, मगध-महिमा, एकायन, धूप और धुँआ, नीम के पत्ते, नील कुसुम, दिल्ली, वारदोली विजय, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, चक्रवाल आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'मिट्टी की ओर' और 'अर्द्धनारीश्वर' नाम की आलोचना संवन्धी पुस्तकें भी लिखीं। 'संस्कृति के चार अध्याय' शीर्षक उनकी पुस्तक को विशेष ख्याति प्राप्त है। भूमिका के रूप में भी उनकी आलोचनाएँ मिलतीं हैं। बालकोपयोगी साहित्यों की रचना भी उन्होंने की थी।

सन् १६३५ में 'दिनकर' जी ने विहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व किया। उनकी 'हिमालय' कविता पर उन्हें स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ। स्वतन्त्र भारत के कवियों का प्रतिनिधित्व करने के लिए वे विदेश भी गये।

उन्होंने आरम्भ में सब-रजिस्ट्रार के पद पर कार्य किया। इसके पश्चात् वे मुजफ्फरपुर कालेज में आचार्य नियुक्त हुए। राष्ट्रपति ने उन्हें राज्य-सभा का सदस्य मनोनीत किया। राष्ट्रीयभावों के कवि 'दिनकर' ने अपनी प्रतिभा के फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में सम्मान अर्जित किया।

काव्य-कला का विकास :- दिनकर जी की आरम्भिक कविताओं में निराशा थी तथा अहिंसा के प्रति अविश्वास का भाव था। 'रेणुका' और 'द्वन्दगीत' में 'निराशा' का स्वर ही सुनाई पड़ता है। 'रेणुका' में 'हिमालय के प्रति' शीर्षक कविता में अहिंसा-विरोधी भाव पल्लवित है :-

"रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उनको स्वर्ग धीर।
पर फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।।"

'हुँकार' से कवि के राष्ट्रीय-भाव का बोध होता है, किन्तु इसीके बाद शृंगार की प्रधानता से युक्त 'रसवन्ती' की रचना हुई। इसमें जीवनगत और प्रकृतिगत सौन्दर्य के प्रति कवि का आकर्षण व्यक्त है। 'रसवन्ती' के पश्चात् उनकी प्रौढ़ कृति 'कुरुक्षेत्र' साहित्य-जगत के सम्मुख आयी। उसमें बुद्धि और हृदय का समन्वय मिलता है। 'सामधेनी' में समस्या-प्रधान कविताएँ ही संगृहीत हैं।

दिनकर जी पर अनेक महापुरुषों का प्रभाव पड़ा था। युग-पुरुष 'गाँधी' की हत्या देख, उनकी अहिंसा-विरोधी भावना में परिवर्तन हुआ। वे अहिंसा का समर्थन करने को बाध्य हो गये और 'बापू' कृति सामने आयी। इसमें गांधीवाद का समर्थन किया गया है। 'धूप छाँह', 'चक्रवाल' आदि भी उनकी सफल कृतियाँ हैं, किन्तु उनके काव्य-विकास की सूचना 'रेणुका' से 'बापू' तक की कृतियों में ही मिलती हैं।

राष्ट्रीय भावों का कथन :- 'दिनकर' जी की आरम्भिक कृति 'रेणुका' में की राष्ट्रीयता संवर्न्धी भाव पल्लवित हैं। भारत की राजधानी दिल्ली में वैधव्य देखता हुआ कवि कहता है :-

"यमुना कछार पर बैठी विधवा दिल्ली रोती है।"

दिल्ली के इस स्वरूप को दिखाकर कवि ने राष्ट्रीय-जीवन की दीन-दशा का ही कथन किया है। उसकी इसी राष्ट्रीय भावना को 'हुँकार' में बल मिला। 'हुँकार' के द्वारा कवि ने अंग्रेजी राज्य के प्रति विद्रोह का भाव प्रदर्शित किया है और स्वतन्त्रता-प्राप्ति की बलवती इच्छा प्रकट की है। भारत के प्रति अपनी आकांक्षा को 'दिल्ली' शीर्षक कविता में बड़े ओजपूर्ण स्वर में कवि ने व्यक्त किया है। वे दिल्ली को भारत का 'प्रश्न-चिह्न' और भारत के 'बल की पहचान' मानते हैं :-

"प्रश्नचिह्न भारत का, भारत के बल की पहचान।
दिल्ली राजपुरी भारत की, भारत का अपमान।।"

१९२८ में वारदोली-सत्याग्रह के समय दिनकर जी ने राष्ट्र के जवानों को राजहंस तथा गोरे पल्टन को बधिक का रूप देकर सत्याग्रहियों के प्रति श्रद्धा का फूल चढ़ाया है। पूज्य गाँधी जी के उपवास के समय भगवान से उनके कल्याण के लिए प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा है :-

"ईसा चढ़ा क्रास पर फिर से, दैव हाय कल्याण करै।"

लोगों में बलिदान की प्रेरणा भरते हुए उन्होंने कहा :-

"जाग रहे ऋषिराज, आज हम इन तीखे आह्वानों से।
बनता है इतिहास देश का इन भीषण बलिदानों से।।"

प्रगतिवाद का स्वर :- प्रगतिवादी कवि मानव-समाज के बीच उपस्थित वर्ग-भेद को मिटाने का प्रयत्न करता है। इसीलिए उसकी कविता में मजदूर, सर्वहारा, दीन-हीन आदि के प्रति सहानुभूति दिखायी पड़ती है। 'दिनकर' जी की कविताओं में यह स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ता है।

विवश मानव की दीनता की ओर देखते हुए जमींदारों के अनाचार और कृषकों की दीनता का चित्रण दिनकर जी ने बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है :-

"ऋण शोधन के लिये दूध-घी बेच बेच धन जोड़ेंगे।
बूँद बूँद बेचेंगे, अपने लिए नहीं कुछ छोड़ेंगे।।
शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलायेगी।
मैं फाड़ूँगी हृदय, लाज से आँख नहीं रो पायेगी।।"

प्रगतिवाद में नारेबाजी को भी स्थान मिला है। दिनकर जी ने भी इसी स्वर में जारशाही के प्रचारकों को सावधान करते हुए कहा है :-

"दुनियाँ के वीरो ! सावधान,
दुनियाँ के पापी जार सजग।
जाने किस दिन फुफकार उठें,
पददलित काल-सर्पों के फन।।"

पूँजीपतियों पर उनका रोष देखिए :-

"आहें उठीं दीन कृषकों की, मजदूरों की तड़प पुकारें।
आरी गरीबी के लोहू पर, खड़ी हुई तेरी दीवारे।।"

प्रकृति का चित्र :- छायावादियों की तरह दिनकर जी ने भी प्रकृति को मानव के रूप में देखा और प्रकृति के बीच मानव-सम्बन्ध उपस्थित किया। उषा को अभिमानिनी नायिका का रूप प्रदान करते हुए उन्होंने प्रश्न किया है :-

"कञ्चन थाल सजा सौरभ से ओ फूलों की रानी।
अलसायी-सी चली कहो करने किसकी अगवानी।।"

आलम्बन रूप में प्रकृति को चित्रित करते हुए उन्होंने कहा है :-

"व्योम-शर में हो उठा विकसित अरुण आलोक शतदल।
चिर दुखी धरणी विभा में हो रही आनन्द विह्वल।।"

वस्तु-स्थिति का कथन करने के लिए तथा वातावरण प्रस्तुत करने के लिए भी उन्होंने प्रकृति का उपयोग किया है। आर्य-संस्कृति का परिचय देने की दृष्टि से प्रकृति का उपयोग देखिए :-

कितनी द्रुपदा के बाल खुले,
कितनी कलियों का अन्त हुआ।
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ--
कितने दिन ज्वाल बसन्त हुआ।।"

कला-पक्षा :- भाव की सबलता के साथ कलापक्ष ही उत्कृष्टता 'दिनकर' जी के काव्य की विशेषता है। उनकी काव्य-भूमि के पीछे उनके शास्त्रीय ज्ञान का सबल आधार था। भावना के अनुरूप शब्दों का चयन तथा शब्द-निर्माण उनकी अपनी विशेषता रही है। उनकी रचनाओं में छन्दों का प्रयोग भी भावानुरूप ही हुआ है। उनमें कहीं ओजगुण का दर्शन होता है तो कहीं माधुर्य गुण का।

शब्द-चयन करते समय उन्होंने 'अमर-कोश' की भी सहायता ली। 'आलोक धन्वा', 'नाचो हे नटवर' तथा 'हिमांचल' शीर्षक कविताओं में प्रयुक्त शब्दों से उनके शब्द-चयन की प्रवृत्ति का परिचय मिलता है।

उनकी कविताओं में कहीं-कहीं उर्दू के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है , यथा- 'जबाँ बन्द, बहती न आँख, गम खा, शायद आँसू पीते हैं' ।

उनकी भाषा में प्रान्तीय शब्दों के भी प्रयोग मिलते हैं। 'बसन कहाँ ? सूखी रोटी भी मिलती दोनों शाम नहीं' जैसी पंक्ति में 'बसन' का प्रयोग इसी प्रकार का है। कहीं-कहीं उनकी भाषा में लिंगदोष भी मिलता है। रस का स्त्रीलिंग में प्रयोग करते हुए उन्होंने 'फल की रस में बसी' जैसा व्याकरण-विरुद्ध कथन भी किया है।

उनकी कविताओं में विविध अलंकारों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। कुछ अलंकारों की बानगी देखिए :-

अनुप्रास :- "श्रेय वह विज्ञान का वरदान।
हो सुलभ सबको सहज जिसका रुचिर अवदान।।"

उपमा :- "उस जलद सा एक पारावार।
हो भरा जिसमें लबालब किन्तु जो लाचार।।"

रूपक :- "चीरता तम को सँभाले बुद्धि की पतवार"

स्वभावोक्ति :- यह मनुज,
"जिसका गगन में जा रहा है यान।
काँपते जिसके करों को देखकर परमाणु।।"

उनकी कविताओं में लाक्षणिकता, मुहावरेदानी आदि गुणों के साथ ही अलंकारों का मधुर संयोग है। भावावेग में कहीं-कहीं दोष भी आ गये हैं। दुष्क्रमत्व दोष का उदाहरण देखिए :-

भीष्म हो अथवा युधिष्ठिर या कि हों भगवान।
बुद्ध हों कि अशोक, गाँधी हों कि ईशु महान।।"

काव्य-गुणों के मध्य ये दोष अल्प मात्रा में हैं, इसलिए साधारणतः इनका पता भी नहीं चल पाता है।

आज के प्रगतिवादी, राष्ट्रीय चेतना-सम्पन्न, मननशील कवियों में कवि दिनकर अग्रणी रहे हैं। भारतीय इतिहास का ओजपूर्ण चित्र उन्होंने अपनी कविताओं में उपस्थित किया है। सन् १९७४ ई० में इस ओजस्वी कवि का निधन हो गया। कवि 'दिनकर' के निधन का समाचार पाकर उनके पाठकों के मुँह से बरबस ही एक वाक्य निकल पड़ा-- "हिन्दी का दिनकर अस्त हो गया।"



श्यामनारायण पाण्डेय

जन्म-संवत् :-- १९६७ वि०

मृत्यु-संवत् :-- २०४७ वि०

जीवन-वृत्त :- श्रावण कृष्ण पञ्चमी संवत् १९६७ वि० को उत्तरप्रदेश स्थित आजमगढ़ के डुमराँव नामक गाँव में श्यामनारायण पाण्डेय का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम रामाज्ञा पाण्डेय और माता का नाम पातासी देवी था। बाल्यावस्था में ही उनके पिता की मृत्यु हो गयी। आर्थिक कठिनाई आयी किन्तु पाण्डेय जी ने अध्ययन का क्रम टूटने नहीं दिया। हिन्दी-उर्दू मिडिल की परीक्षा तो अपने गाँव से ही उन्होंने उत्तीर्ण की किन्तु बाद में वे काशी आकर रहने लगे। काशी में ही अध्ययन-अध्यापन दोनों चलता रहा। यहीं रहकर महाकवि हरिऔध जी से उन्होंने कविता-रचना की दीक्षा ली। सन् १९३४ ई० में काशी स्थित राजकीय संस्कृत महाविद्यालय से उन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। वहीं से उन्होंने साहित्य में आचार्य की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। वे संस्कृत साहित्य के विद्वान थे।

रचनाएँ :- उनकी रचनाएँ दो रूपों में पाठकों के सामने आयी हैं। उन्होंने कुछ मुक्तक कविताएँ लिखीं हैं और कुछ प्रबन्ध काव्यात्मक। उनकी फुटकल कविताओं का संग्रह 'माधव', 'रिमझिम' और 'आरती' नाम से प्रकाशित है। पौराणिक आख्यानों पर आधारित उनका खण्डकाव्य 'त्रेता के दो वीर' ही बाद में 'तुमुल' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके बाद कवि की ओजस्वी भाव-धारा पुराण की कथाओं को छोड़कर इतिहास की ओर मुड़ पड़ी। राणाप्रताप, पद्मिनी और शिवाजी जैसे ऐतिहासिक पात्रों ने उन्हें प्रभावित किया। उन्होंने वीर रस की दो अमर कृतियाँ साहित्य-जगत को भेंट कीं- 'हल्दीघाटी' और 'जौहर'। इन कृतियों में वीरतापूर्ण भावों और युद्ध की स्थितियों का अत्यन्त सुन्दर चित्रण है। उनके खण्डकाव्यों में 'गोरा वध', 'वशिष्ठ', 'वालिबध' और 'जय हनुमान' को भी ख्याति प्राप्त है। उनके दो महाकाव्यों-- हल्दी-घाटी और जौहर- पर तो उन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए। हल्दी-घाटी पर इन्हें 'देव-पुरस्कार' मिला। 'जौहर' पर नागरी-प्रचारिणी सभा ने उन्हें 'द्विवेदी पदक' देकर सम्मानित किया। खड़ीबोली के बीच वीर रस का इतना सुन्दर वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। वीर रस के इस कवि का निधन सन् १९९० ई० में हो गया, पर उसकी ओजस्वी वाणी आज भी पाठकों को प्रेरणा दे रही है।

वर्ण्य-विषय :- पाण्डेय जी के प्रबन्ध-काव्यों और खण्ड-काव्यों का विषय युद्ध-वीरता है। चाहे 'तुमुल' के पौराणिक कथानक को देखा जाय या हल्दीघाटी और जौहर के ऐतिहासिक कथानकों को, इन सबमें ही युद्ध का ओज दिखायी पड़ता है। वीर-रस पूर्ण हल्दीघाटी में महाराणा प्रताप की वीरता का सुन्दर वर्णन है। ऐतिहासिक तथा पौराणिक घटनाओं को अपनी कल्पना के आधार पर कुछ परिवर्तित करके तथा उसे काव्यमय बनाकर उन्होंने उनका कथन अपनी कृतियों में किया। 'हल्दीघाटी' में राणा प्रताप की पत्नी के चरित्र को उत्कर्ष प्रदान किया गया है।

घटनाओं के कथन और दृश्यों के अंकन में उन्हें बड़ी सफलता मिली है। युद्ध का वर्णन करने में पाण्डेय जी की प्रतिभा ने विशेष चमत्कार दिखाया है। स्वाधीनता और मान की रक्षा करनेवाले वीरों की वीरता और उनकी बर्छियों का कमाल देखिए :-

"योद्धा भालों की नोकों पर, सने खून से जीभ निकाले
निकली आँखों से भय भर-भर, विकल मर रहे थे मतवाले
खून फेंकता मुँह से कोई, आँखें अलग निकल आईं थीं।
वीर बरछियाँ निगल रहीं थीं, जो सौ बार नि. ल आईं थी।।"

गोरा की युद्ध-वीरता देखिए :-

"शुण्ड काट कर तुण्ड उड़ाया, पूँछ काट कर मुण्ड उड़ाया
अपनी खरतर तलवारों से छपछप विकल वितुण्ड उड़ाया"

गोरा जब मरा तो उसकी बोटी-बोटी से स्वाभिमान पर मर मिटने की आवाज निकल रही थी :-

"निकली बोटी-बोटी से ध्वनि, मिटो जवानों, सती-मान पर।
वीर मर मिटो आन-बान पर; वीर, मर मिटो स्वाभिमान पर।।"

इन वर्णनों में चित्र-विधान और नाद-सौन्दर्य की अद्भुत सृष्टि हुई है। घटनाओं के वेग के साथ ध्वनि का संयोग देखिए :-

"वह कड़-कड़-कड़-कड़-कड़क उठी यह भीमनाद से तड़प उठी।
भीषण संगर की आग प्रबल, बैरी सेना में भड़क उठी।।
डग-डग-डग-डग रण के डंके, मारू के साथ मयद बाजे।
टप-टप-टप घोड़े कूद पड़े, कट-कट मतंग के रद बाजे।।"

दो विरोधी दलों के युद्ध का दृश्य देखिए :-

"हाथी सवार हाथी पर थे, बाजी सवार बाजी पर थे
पर उनके शोणितमय मस्तक, अवनी पर मृतराजी पर थे
कर की असि ने आगे बढ़कर, सङ्गर मतङ्ग सिर काट दिया
बाजी वक्ष-स्थल गोभ-गोभ, बरछी ने भूतल पाट दिया"

युद्ध-वर्णन में जिस ओजपूर्ण स्वर को पाण्डेय जी ने प्रस्तुत किया उसके कारण वे आधुनिक काल के वीररस के सर्वप्रमुख कवि माने गये।

प्रकृति-वर्णन :- युद्धों का वर्णन करते समय वातावरण का परिचय देने के लिए पाण्डेय जी ने प्रकृति के चित्र भी प्रस्तुत किये हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति का सापेक्षा और निरपेक्ष दोनों ही रूप देखने को मिलता है। गोरा और बादल के नेतृत्व में खिलजी पर आक्रमण हुआ। इस आक्रमण में सर्वत्र रक्त की विभीषिका देखने को मिली। आक्रमण के पूर्व बसन्त का वर्णन करते समय भी कवि ने शिशिर को बसन्त से पराजित हुआ दिखलाया है और बसन्त की लाल कोपलों को शोणित-स्नात ही देखा है। प्रकृति की यह सापेक्षता दर्शनीय है :-

"छिपा काल की गोदी में, जब हारा शिशिर बसन्त शक्त से
दोनों ऋतुओं के संगर से तरु भी तर हो गये रक्त से
इसीलिए जो पल्लव निकले, शोणित-स्नात लाल ही निकले
या तरु-तरु की डाल-डाल से बनकर ज्वलित ज्वाल ही निकले।।"

वातावरण को चित्रित करने के लिए प्रकृति को निरपेक्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है :-

"उधर मृदुल मधु की दोपहरी गूँज रही थी विहग-गान से।
इधर कहारों की तलवारें निकल रहीं थीं म्यान म्यान से।।"

इन पंक्तिओं में प्रकृति की निरपेक्षता देखने योग्य है। अमरावती पर छायी हुई चाँदनी का वर्णन भी इसी प्रकार का है :-

"गिरि पर थी बिछी रजत चादर, गह्वर के भीतर तम विलास।
कुछ-कुछ करता था तिमिर दूर, जुग-जुग जुगनू का लघु प्रकाश।।"

प्रकृति के ये चित्र कवि की सूक्ष्म दृष्टि और उसके वर्णन-कौशल का ही परिचय देते हैं।

प्रकृति का वर्णन अलंकार रूप में भी पाण्डेय जी ने किया है। इस प्रकार के प्रयोग प्रसंगानुसार कई स्थलों पर हुए हैं। 'जय हनुमान' नामक खण्डकाव्य में सिंहिका द्वारा हनुमान की छाया के पकड़े जाने के बाद उनकी गतिहीनता का परिचय देने के लिए उन्होंने प्रकृति का कथन उदाहरण अलंकार के रूप में ही किया है :-

"उल्टी प्रखर हवा बहने से, नौका की जो गति होती
महुअर के मोहक निनाद से, अहि की जो दुर्गति होती
वही हुई गति हनूमान की, एक हाथ भी बढ़ न सके।"

कला-पक्ष :- भारतीय दृष्टि को मान्यता देने के कारण पाण्डेय जी ने अपने खण्ड-काव्यों में मंगलाचरण, सर्गविधान, प्रकृति-परिचय आदि तत्त्वों को स्वीकार किया है। उनकी स्फुट कविताओं में करुण भावों और देश-प्रेम सम्बन्धी भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। माधव, रिमझिम आदि संग्रहों में इस श्रेणी की उनकी रचनाएँ संगृहीत हैं। खण्डकाव्यों के कथानक या तो पौराणिक हैं या ऐतिहासिक। इन काव्यों में वीर-रस की प्रधानता होने के कारण ओज गुण की प्रमुखता है।

पाण्डेय जी की भाषा में संस्कृत-तत्सम शब्दों का बाहुल्य है :-

"होगा सिद्ध अभीष्ट तुम्हारा, जाओ पथ मंगलमय हो।
रावण-पालित लंका में, हुँकार तुम्हारा निर्भय हो।।"

इन पंक्तियों में संस्कृत-निष्ठ शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। युद्ध-वर्णन में ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग करने के लिए कवि ने कर्कश स्वरों अर्थात् टवर्ग के अक्षरें से युक्त शब्दों का प्रयोग किया है। प्रसंग के अनुसार भाषा में व्यावहारिक उर्दू शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है :-

"समग्र वस्तु राशि को, लपेटती हुई बढ़ी
निशाचरी जमात को, चपेटती हुई बढ़ी"

इन पंक्तियों में प्रयुक्त 'जमात' जैसा शब्द उनकी इस प्रवृत्ति का परिचय देता है। शान, कुर्बान, खून आदि शब्दों का बहुल प्रयोग भी उनकी कृतियों में स्थान-स्थान पर मिलता है। कहीं-कहीं उन्होंने ग्रामीण शब्दों का भी व्यवहार किया है।

उनकी भाषा में चित्र-विधान और नाद-सौन्दर्य का विशेष गुण है। चित्र-विधान के लिए वे जड़ को भी चेतन रूप प्रदान करते थे। वीर के बाम-कर को रिक्त देखकर जड़ दुधारी भी बोल उठती है। उसकी इस बोली का परिचय देते हुए पाण्डेय जी ने कहा है :-

"रिक्त बाम कर देख वीर का विकल हो उठी कठिन दुधारी
बोली अभी निकाल म्यान से, मुझको रहने दे न कुमारी
आज रक्त-सिन्दूर लगा लूँ, आज सुहागिन बन कर घूमूँ
मिल लूँ गले विदा के पहले, सहेलियों के पद कर चूमूँ"

विभिन्न प्रासंगों के अनुसार पाण्डेय जी ने अपने छन्दों में परिवर्तन किये हैं। अधिकांशतः उन्होंने मात्रिक-छन्दों को ही स्वीकार किया हैं। उनकीरचनाओं में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग देखने को मिलता है :-

उपमा-- "अरावली-से अचल सूरमे, जड़ से विलग हुए जाते थे।"

उत्प्रेक्षा-- "परदे उठे सूरमे निकले, मानो निकले सिंह माँद से।"

रूपक-- "क्षण भर में ही घटा-गजों की, गोरा असि-आँधी से फूटी।"

संदेह-- "मर मर समर मतंग गिरे या, नभ के बादल घिरे धरा पर।"
या हिल-हिल भूचाल-वेग से काले पर्वत गिरे धरा पर।।"

अपह्नुति-- "जान पराजय वीर शिशिर के गाँव फूँकना कभी न भूले।"
वही लगी है आग भयंकर, ये पलाश के फूल न फूले।।"

भाव-पक्ष तथा कला-पक्ष की दृष्टि से विचार करने के बाद यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि पाण्डेय जी वीर-रस के श्रेष्ठ कवि के रूप में सदैव ही याद किये जाएंगे।



सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

जन्म-संवत् :-- १६६८ वि० **मृत्यु-संवत् :-- २०४४ वि०**

जीवन-वृत्त :- सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का जन्म ७ मार्च, १६११ ई० को देवरिया (उ०प्र०) जिलान्तर्गत कसिया (कुसीनगर) में हुआ। 'अज्ञेय' उनका उपनाम था। उनके पिता हीरानन्द शास्त्री एक प्रसिद्ध पुरातत्वविद् थे। मूलतः वे पंजाब के कर्तारपुर (जालंधर) के निवासी थे। उनके पूर्वज पौरोहित्य कर्म करते थे, पर यह कार्य उन्हें पसंद नहीं आया। पुरातत्व सम्बन्धी कार्यों में लगे रहने के कारण उन्हें विभिन्न स्थानों पर जाना पड़ता था। वे कसिया भी इसी कार्यवश गये थे। वहीं शिविर में सच्चिदानन्द का जन्म हुआ।

गोत्र-वंश के आधार पर सच्चिदानन्द हीरानन्द ने अपने नाम के साथ वात्स्यायन लिखना आरंभ कर दिया। 'अज्ञेय' उपनाम उन्होंने बाद में धारण किया। यह नाम प्रसिद्ध साहित्यकार जैनेन्द्र जी द्वारा दिया गया था। जैनेन्द्र जी 'जागरण' के संपादक थे। सच्चिदानन्द ने अपनी कुछ कहानियाँ प्रकाशनार्थ भेजी थीं। उनपर उन्होंने अपना नाम नहीं दिया था क्योंकि वे तब दिल्ली के जेल में बंदी-जीवन व्यतीत कर रहे थे। नाम न होने के कारण लेखक के नाम के स्थान पर 'अज्ञेय' लिखकर जैनेन्द्र ने कहानियाँ छापीं। यह 'अज्ञेय' सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन का उपनाम हो गया और वे इस नाम से ही सुविख्यात हो गये।

बाल्यावस्था में 'अज्ञेय' अपने पिता के साथ-साथ विभिन्न स्थानों की यात्रा पर ही रहे, अतः उनकी शिक्षा का व्यवस्थित क्रम नहीं बन पा रहा था। वे घर पर ही अपनी बहन से शिक्षा पा सके। इसके बाद उन्होंने पंजाब में रहकर मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण की और लाहौर के फारमान कालेज से बी-एस०सी० की उपाधि ग्रहण की। वे अंग्रेजी साहित्य से एम०ए० कर रहे थे, तभी क्रान्तिकारियों से उनका संपर्क हुआ। अध्ययन छूट गया और वे राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने लगे। क्रान्तिकारी कार्यक्रमों में सक्रिय रहने के कारण वे बन्दी बनाए गये। इसी समय उन्होंने अपनी कहानियाँ जागरण में प्रकाशनार्थ भेजीं थीं और उनपर लेखक-नाम न होने के कारण वे 'अज्ञेय' हो गये थे।

'अज्ञेय' ने सैनिक (आगरा), बिजली (पटना) और विशाल भारत (कलकत्ता) जैसे पत्रों के संपादक-मण्डल में रहकर पत्रकारिता का अनुभव प्राप्त किया। १६४० से ४२ ई० तक वे आकाशवाणी में कार्यरत रहे तथा १६४२ से ४६ तक उन्होंने सैनिक-जीवन व्यतीत किया। १६४६ में वे 'प्रतीक' के संपादक बने। दिल्ली से निकलनेवाले अंग्रेजी पत्र 'थाट' के साहित्यिक भाग का भी उन्होंने संपादन किया।

'अज्ञेय' ने कई बार विदेश-यात्रा की। १६५५ ई० में वे यूनेस्को गये। इसके पश्चात् एक यात्रावृत्ति पर उन्होंने पूर्वेशिया का भ्रमण किया। कुछ समय बाद वे फिर यूरोप की यात्रा पर गये। वहाँ से लौटने पर उन्होंने 'दिनमान' साप्ताहिक के संपादक-पद पर कार्य किया। उन्हें अमेरिका जाने का अवसर मिला और वापस आने पर वे जोधपुर, विश्वविद्यालय में भाषा-शास्त्र के अध्यक्ष नियुक्त हुए। वे राजस्थान अकादमी के संचालक भी रहे।

साहित्य के प्रति अज्ञेय का बचपन से ही अनुराग रहा। वे कविता, कहानी और निबन्ध लिखा करते थे। रवीन्द्र नाथ टैगौर, मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचन्द्र और जैनेन्द्र से वे प्रभावित थे। साहित्य के

अतिरिक्त अज्ञेय चित्रकला, फोटोग्राफी, बागवानी, मृत्तिका-शिल्प, काष्ठ-शिल्प आदि में विशेष रुचि लेते थे। पर्वतारोहण, देश-भ्रमण जैसे कार्यों में उन्हें आनन्द मिलता था। बहुआयामी प्रतिभा के धनी अज्ञेय ने विविध विधाओं- कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना, नाटक, यात्रा-वृत्तान्त-- में रचनाएँ कीं। ४ अप्रैल, १९८७ ई० को उनका निधन हो गया। मरणोपरान्त उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

रचनाएँ :- {१} कविता- (१) भग्नदूत (२) चिन्ता (३) इत्यलम् (४) हरी घास पर क्षण भर (५) बावरा अहेरी (६) इन्द्रधनु रौंदे हुए (७) अरी ओ करुणा प्रभामय (८) आँगन के पार द्वार (९) सुनहले शैवाल (१०) कितनी नावों में कितनी बार (११) सागर-मुद्रा (१२) क्योंकि मैं उसे जानता हूँ (१३) पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, (१४) पूर्वा आदि।

{२} कहानी-संग्रह - (१) विपथगा (२) परम्परा (३) कोठरी की बात (४) शरणार्थी (५) जयदोल (६) अज्ञेय की कहानियाँ-भाग-१ (७) अज्ञेय की कहानियाँ-भाग-२ (८) अज्ञेय की कहनियाँ-भाग-३।

{३} उपन्यास - (१) शेखर एक जीवन-प्रथम भाग (२) शेखर एक जीवन-द्वितीय भाग (३) नदी के द्वीप (४) अपने-अपने अजनबी।

{४} निबन्ध-संग्रह- त्रिशंकु, आत्मनेपद, आत्मबल, भवन्ती, सबरंग और कुछ राग।

{५} आलोचना- हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य।

{६} नाटक - उत्तर प्रियदर्शी।

{७} यात्रा-वृत्तान्त - (१) अरे यायावर रहेगा याद (२) एक बूँद सहसा उछली।

इनके अतिरिक्त अज्ञेय ने तारसप्तक भाग-१, भाग-२, भाग-३ का संपादन किया। उनके द्वारा संपादित कई अन्य ग्रंथ भी हैं। इन ग्रंथों की भूमिका में उनके समीक्षक रूप का दर्शन होता है।

अज्ञेय की कविता का विकास-क्रम :- 'अज्ञेय' प्रयोगवादी काव्यधारा को प्रतिष्ठित करने वाले सर्वश्रेष्ठ कवि थे। जिस समय उन्होंने काव्य-रचना प्रारंभ की, उस समय छायावादी, प्रगतिवादी, राष्ट्रीय, व्यक्तिवादी, हालावादी काव्य-धाराएं अपना प्रभाव बनाये हुए थीं। 'अज्ञेय' भी छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, राष्ट्रवाद, व्यक्तिवाद से प्रभावित थे। उनकी रचनाओं में इन सबका प्रभाव लक्षित है। युगीन परिस्थितियों के कारण साहित्य-विचारकों ने अनुभव किया कि छायावादी कल्पना की रंगीनी, प्रगतिवादी यथार्थता की शुष्कता और व्यक्तिवादी तथा हालावादी वैयक्तिकता से उबर कर कुछ नये रूप में लेखन करना होगा। साहित्यकारों में प्रयोगशीलता के प्रति आकर्षण दिखायी पड़ने लगा। प्रतीकों और बिम्बों के माध्यम से वृहत् अर्थ को व्यक्त करने की ओर लेखनी मुड़ गयी। इस प्रयोग को अज्ञेय ने देखा। उन्होंने ऐसी कविताओं को प्रयोगवादी काव्य-धारा की कविता के रूप में 'तार-सप्तक' प्रथम भाग में संकलित किया। यह कार्य १९४३ ई० में सम्पन्न हुआ। इसमें सात कवियों-गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचंद्र-जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजा कुमार माथुर, रामविलास शर्मा, तथा 'अज्ञेय' की रचनाएँ संकलित की गयीं। इस प्रकार 'अज्ञेय' प्रयोगवादी काव्य-धारा के प्रवर्तक और कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। इसके बाद १९५१ ई० में 'दूसरा तार सप्तक' और फिर १९५९ में 'तीसरा तार सप्तक' प्रकाशित हुआ। प्रयोगवाद ही अपने परिष्कृत रूप में 'नयी कविता' की संज्ञा पा गया और 'अज्ञेय' को नयी कविता-धारा का प्रमुख कवि माना गया।

प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रचलन से पूर्व १९३३ ई० में 'अज्ञेय' की कविताओं का एक संग्रह

'भग्नदूत' नाम से प्रकाशित हुआ। इस प्रथम संग्रह की कविताएँ भी भाव, विचार, शैली आदि की दृष्टि से नवीनता-समन्वित हैं। इस संग्रह की अधिकांश कविताएं प्रणय-भाव से सम्पन्न हैं। 'असीम प्रणय की तृष्णा', 'कहो कैसे मन को समझा लूँ' आदि कविताएं प्रणयमूलक ही हैं, पर कुछ कविताओं में प्रतीक का भी सुन्दर निर्वाह है, जैसे- 'दीपावली का एक दीप'। इस संग्रह की कुछ कविताएं अन्योक्तिमूलक हैं और कुछ कवि के काव्य संबंधी मान्यताओं को व्यक्त करने वाली। 'कवि', 'भग्नदूत' आदि रचनाओं में अज्ञेय के काव्य संबंधी दृष्टिकोण का ही कथन है।

१९४२ ई० में 'अज्ञेय' का दूसरा काव्य-संकलन 'चिन्ता' प्रकाशित हुआ। इसके दो खण्डों- 'विश्वप्रिया' और 'एकायन' में क्रमशः- पुरुष की प्रेम-कथा तथा नारी के आत्म-समर्पण की कविताएँ प्रस्तुत की गयीं हैं। सन् १९४६ ई० में उनका तीसरा संग्रह 'इन्यलम्' प्रकाशित हुआ। इसे चार खण्डों में विभाजित किया गया है--(१) बंदी का स्वप्न (२) हिय-हारिल (३) वंचना के दुर्ग (४) मिट्टी की ईहा। प्रथम खण्ड की कविताएं कवि के बंदी जीवन, राष्ट्रप्रेम, देश-भक्ति और मुक्ति-आन्दोलन से संबंधित हैं। द्वितीय खण्ड की कविताएं प्रणयमूलक तथा प्रतीकात्मक हैं। तीसरे खण्ड की रचनाएं प्रयोगवादी काव्य-धारा की मान्यताओं के अनुरूप हैं। इनमें व्यंग्य और प्रयोगात्मकता को महत्व प्राप्त है। चौथे खण्ड की रचनाओं में प्रणय, प्रकृति, जीवन-आदर्श आदि को विषय के रूप में स्वीकार किया गया है। इनमें से कुछ कविताएँ 'ऋतु गीत' के रूप में प्रस्तुत की गयीं हैं।

'हरी घास पर क्षण भर' अज्ञेय की चतुर्थ काव्य कृति है। इसका प्रकाशन १९४९ ई० में हुआ। इस संकलन की कविता 'हरी घास पर क्षण भर' एक प्रतीकात्मक कविता है। इसमें 'हरी घास' को स्वतंत्र जीवन के आमंत्रण का प्रतीक माना गया है। इस संकलन की अन्य कविताएं आत्मान्वेषण, प्रणय, प्रकृति आदि से संबंधित हैं। अज्ञेय का पाँचवा काव्य-संग्रह 'बावरा अहेरी' १९५४ ई० में प्रकाशित हुआ। 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है। इस काव्य-संग्रह को प्रतीकमूलक कविताओं का संग्रह कहा जाता है। इस संग्रह की कविताएँ कवि के जवीन-दर्शन, प्रकृति-प्रेम, प्रणय-भाव आदि से संबंधित हैं। इस दृष्टि से 'शरद साँझ के पंछी', 'उषा दर्शन' आदि प्रकृति संबंधी कविताएँ तथा 'संध्या तारा', 'वह नाम' आदि प्रणय संबंधी कविताएँ द्रष्टव्य हैं।

सन् १९५७ ई० में 'इन्द्रधनुष रौंदे हुये ये' नाम से कवि 'अज्ञेय' का छठा काव्य-संग्रह पाठकों के सामने आया। इसका आरंभ कवि ने मंगलाचरण से किया है। इस संग्रह की कुछ कविताएँ आत्म-निवेदन के रूप में हैं, यथा- 'एक दिन जब', 'मैं वहाँ हूँ' आदि। इस संग्रह की कई कविताओं में प्रकृति का मनोरम चित्र उरेखा गया है, जैसे- 'टेसू', 'सूर्यास्त' आदि। कवि ने व्यंग-कविताएँ भी लिखीं हैं। 'साँप', 'रेंक' आदि व्यंग प्रधान कविताओं को भी इस संग्रह में स्थान मिला है। संग्रह की कुछ कविताओं में कविता के शब्दों, अभिव्यंजना आदि पर कवि ने अपना दृष्टिकोण सूचित किया है, यथा 'शब्द', 'सर्जना के क्षण' आदि।

. १९५९ ई० में 'अरी ओ करुणा प्रभामय' तथा १९६१ ई० में 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक संग्रहों का प्रकाशन हुआ। 'अरी ओ करुणा प्रभामय' के चार खण्ड हैं- (१) रोपयित्री, (२) रूप केकी, (३) एक चीड़ का खाका, (४) द्वार-हीन-द्वार। प्रथम खण्ड में नयी कविता तथा नये कवियों की विशेषता का प्रकाशन है। द्वितीय खण्ड में प्रतीकों के आधार पर अनुभूति की आनन्दमयी स्थिति को सूचित किया गया है। तृतीय खण्ड में जापानी कविताओं का अनुवाद है और चतुर्थ खण्ड में प्रतीकात्मक कविताएँ हैं। 'आँगन के पार द्वार' शीर्षक काव्य-संग्रह के भी तीन खण्ड हैं - (१) अन्तः सलिला, (२) चक्रान्त शिला , (३) अगाध्य वीणा। इस संग्रह की कविताओं में कवि का रहस्यवादी स्वर मुखरित है।

कवि अज्ञेय के द्वारा लिखी गयी कविताओं के उपर्युक्त संग्रहों से उनकी विकासशील काव्य-प्रतिभा का परिचय मिलता है। उनकी कविताओं के संग्रह समय-समय पर प्रकाशित होते रहे हैं, किन्तु यह स्पष्ट है कि अज्ञेय की विशिष्ट काव्य-प्रतिभा ने 'नयी कविता धारा' को सतत् ऊर्जा प्रदान की है।

भाव पक्ष :- 'अज्ञेय' की कविताओं में कई प्रकार के भावों का उद्‌घाटन हुआ है। इनमें से कुछ का परिचय प्राप्त कर लेना उपयोगी होगा--

१- प्रणय-भावना :- अज्ञेय ने प्रेम की कसक का अनुभव किया था। वे विरह-जन्य पीड़ा को महत्त्वपूर्ण मानते थे। संयोग और वियोग के विविध चित्र उनके काव्य में देखने को मिलते हैं। संयोग के समय प्रियतम की स्मृति भी मादक बन जाती है :-

"तुम्हारी देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से स्मरण में भी गंध आता है"

वियोग प्रेम का एक आवश्यक पक्ष है, यह मानते हुए वे कहते हैं :-

"प्रेम को चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो कहेगा
विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्या जीता रहेगा ?'

प्रेम की वासनात्मक स्थिति को भी 'अज्ञेय' ने स्वीकारा है और अपनी अवश स्थिति को सूचित करते हुए कहा है :-

"आह मेरा स्वास है उत्तप्त
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
काम है अभिशाप
तुम कहाँ हो नारि"

'नारि' को बुलानेवाला यह कवि भोग का समर्थक है। वह विश्वास रखता है कि -

"वह आयेगी
मेरा ढाँप लेगी अंग
अपनी देह से
अपने स्नेह से"

ऐसी प्रेममयी को न पाने पर कवि निराशा का तो अनुभव करता ही है पर उसका प्रेम भी दूना हो जाता है और वह कह उठता है :-

"विरह के आघात से प्रिय
प्यार दूना हो गया"

२- प्रकृति :- प्रकृति के चित्रांकन में अज्ञेय ने अधिक रुचि ली है। उसे आलंबन, उद्दीपन आदि रूपों में उन्होंने स्वीकार किया है :-

आलंबन रूप में 'बावरा अहेरी' अर्थात् सूर्य का कथन देखिए :-

"भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की

लाल-लाल कलियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ"

उद्दीपन रूप में 'कभी चाँदनी' कवि को सोने नहीं देती है, और कभी रजनी के अवसान का आभास होने लगता है। कवि ने प्रकृति के साथ तादात्म भी स्थापित किया है :-

"मैं सोते के साथ बहता हूँ
पक्षी के साथ गाता हूँ
वृक्षों के कोंपलों के साथ थरथराता हूँ
और उसी अदृश्य क्रम में, भीतर ही भीतर
झरे पत्रों के साथ गलता और जीर्ण होता रहता हूँ
नये प्राण पाता हूँ।

प्रकृति को चेतन रूप में देखकर उसका मानवीकरण करने में अज्ञेय पूरी तरह सफल रहे हैं। दो उदाहरण देखिए :-

(१) "सूनी सी साँझ एक
दबे पाँव मेरे कमरे में आयी थी।"
(२) "यह पगडन्डी
चली लजीली
इधर-उधर अटपटी चाल से नीचे को, यह
वहाँ पहुँच कर घाटी में खिलखिला पड़ी।"

३- राष्ट्रप्रेम :- अज्ञेय ने व्यंग के माध्यम से भारत देश का तथा देशवासियों की मनोवृत्ति का सुंदर चित्र उपस्थित किया है। 'साँप' और 'रेंक' जैसी कविताएँ इसी पक्ष को प्रकाशित करतीं हैं। गाँवों में भारत बसता है, इस तथ्य को उद्घाटित करता हुआ कवि कहता है :-

"इन्हीं तृण-फूस-छप्पर से
ढँके ढुलमुल गँवारू
झोंपड़ों में ही हमारा देश बसता है।
इन्हीं के ढोल-मादल-बाँसुरी के
उमगते सुर से
हमारी साधना का रस सरसता है।।"

४- आर्थिक वैषम्य पर प्रहार :- अज्ञेय ने आर्थिक विषमता और शोषण का जमकर विरोध किया है। इस प्रकार की कविताओं में उनका ओजस्वी स्वर अभिव्यक्त है :-

"तुम जो बड़े-बड़े गद्दों पर ऊँची दूकानों में,
उन्हें कोसते हो जो भूखों मरते हैं खानों में,
तुम, जो रक्त चूस ठठरी को देते हो जल दान,
सुनो तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।"

अज्ञेय ने 'हिरोशिमा' पर बरसाये गये अणुबम की भर्त्सना की है। मानव-निर्मित सूरज (बम का प्रतीक) ने मानव को ही भाप बना दिया अर्थात् मानव का सर्वनाश कर दिया। हिरोशिमा के इस सर्वनाश की छाया आज भी पत्थरों में दिखायी पड़ती है। इस स्थिति का कथन करते हुए वे कहते हैं :-

"छायाएँ तो अभी लिखी हैं,
झुलसे हुए पत्थरों पर
उजड़ी सड़कों की गच पर
मानव का रचा हुआ सूरज
मानव को भाप बनाकर सोख गया
पत्थर पर लिखी हुई यह
जली हुई छाया
मानव की साखी है"

प्रयोगवादी कवि अज्ञेय की कविता में आध्यात्मिकता का स्वर भी सुनायी पड़ता है। उन्होंने परमात्मा को महाशून्य के रूप में तथा आत्मा को नवविवाहिता वधू के रूप में स्वीकार कर दोनों के परिणय का चित्र खींचा है :-

"अरी ओ आत्मा री,
कन्या भोली क्वाँरी
महाशून्य के साथ भाँवरे तेरी रची गयीं।"

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अज्ञेय ने अपनी कविताओं में प्रणय, प्रकृति, नारी, राष्ट्रप्रेम, आर्थिक सोच, मानवता के प्रति प्रेम, आध्यात्म आदि भावों को विशेष महत्त्व दिया है।

कला-पक्ष :- अज्ञेय की कविताओं में लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता, बिम्ब-विधान और उपयुक्त शब्द-योजना का प्रभावकारी रूप देखने को मिलता है। इनके प्रयोग से उनका काव्य गरिमामय हो उठा है। कुछ उदाहरण देखिए :-

(क) लाक्षणिकता :- 'मानव को भाप बनाकर सोख गया" जैसे प्रयोग में अभिधार्थ अमान्य है और लक्षणार्थ मान्य है। 'हिरोशिमा' में मानव निर्मित अणुबम, जिसे कवि ने 'मानव निर्मित सूरज' कहा है, ने मनुष्यों का सफाया कर दिया। "भाप बनाकर सोखने" की यही व्यंजना है।

(ख) प्रतीकात्मकता :- 'नदी' समष्टि का और 'द्वीप' व्यष्टि का प्रतीक बनकर निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत है :-

"हम नदी के पुत्र हैं बैठे नदी की गोद में।" वह वृहद् भूखण्ड से हमको मिलती है। अन्य प्रतीक भी हैं, यथा- 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है और 'मानव निर्मित सूरज' अणुबम का।

(ग) बिम्ब-विधान :- शब्द-चित्रों के माध्यम से वस्तु या घटना का बोध कराना ही बिम्ब-विधान कहलाता है। 'अज्ञेय' के काव्य में बिम्बों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। कुछ बिम्ब-चित्र देखिए :-

(१) "पीपल की सूखी खाल स्निग्ध हो चली।" **(दृश्य बिम्ब)**
(२) "रेतीले कगार का गिरना छप्-छड़ाप !" **(श्रव्य बिम्ब)**

(घ) शब्द-योजना :- 'सही शब्द योजना' अज्ञेय की प्रमुख विशेषता रही है। इसीलिए यथा अवसर उन्होंने तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग किया है। किसी प्रकार के शब्द से वे परहेज नहीं करते थे। काव्य में सौन्दर्य लाने की क्षमता से संपन्न शब्दों का उन्होंने उपयुक्त स्थान पर खुलकर प्रयोग किया है, यथा-

(१) 'मतियाया सागर लहराया'। (देशज शब्द)
(२) 'वो रोम-रोम को कँपा गया'। (तद्भव शब्द)
(३) 'गोचर में एक अगोचर अप्रमेय।' (तत्सम शब्द)

उपर्युक्त विवचेन से स्पष्ट है कि अज्ञेय की भाषा भावानुरूपिणी रही है। प्रमुखतः उन्होंने खड़ी बोली में संस्कृत के तत्सम शब्दों का उपयोग किया है, पर उनकी कविता में तद्भव, देशज शब्द भी आये हैं। उनकी भाषा लक्षणा शक्ति और मुहावरा से युक्त है। उसमें प्रतीक-योजना तथा बिम्ब विधान की अपूर्व क्षमता है। मुहावरा-प्रयोग का एक उदाहरण देखिए :-

"दिन-दिन पर उसकी घिग्घी बँधती जाती थी"।

अलंकार-योजना :- अज्ञेय ने नये उपमानों को काव्य में प्रतिष्ठित किया है। उनकी कविताओं में प्रयुक्त कुछ अलंकार देखिए--

रूपक-- "मैंने आहूति बनकर देखा यह प्रेम-यज्ञ की ज्वाला है!"
अनुप्रास-- "भव सारा तुझको है स्वाहा सब कुछ तप कर अंगार बने।"
उत्प्रेक्षा-- (उपमान का नवीन प्रयोग)
"ओस बूँद की ढरकन
इतनी कोमल तरल कि झरते-झरते
मानो हरसिंगार का फूल बन गयी।"
मानवीकरण-- "सूनी-सी साँझ एक
दबे पाँव मेरे कमरे में आयी थी।"
ध्वन्यात्मकता-- "रेतीले कगार का गिरना छप्-छड़ाप।"

अन्य अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग भी अज्ञेय की कविता में मिलता है, यथा- उपमा, उल्लेख आदि।

छन्द-योजना :- अज्ञेय की प्रारम्भिक कविताओं में तुकान्त तथा मात्रिक छन्दों का प्रयोग है किन्तु बाद में उन्होंने छन्द-बन्धन से मुक्त होकर रचनाएँ कीं। इस प्रकार उनकी परवर्ती कविताएँ मुक्त-वृत्त छंद में लिखी गयीं हैं।

कवि अज्ञेय के भावपक्ष और कलापक्ष पर विचार कर लेने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि उनकी कविताएँ हिन्दी-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। अज्ञेय नयी कविता के आलोक-स्तंभ थे।



नागार्जुन

जन्म-संवत् :-- १९६८ वि०　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत :-- २०५५ वि०

जीवन-वृत्त :- कवि और कथाकार 'नागार्जुन' का नाम वैद्यनाथ मिश्र था। उनका जन्म दरभंगा जिलान्तर्गत सतलखा ग्राम में १९११ ई० में हुआ। अभावग्रस्त बाल्यावस्था ने उन्हें संघर्ष की शक्ति दी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला में हुई। देशाटन, पर्यटन और स्वाध्याय के फलस्वरूप वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन' ने मैथिली, पाली और संस्कृत भाषा में पांडित्य प्राप्त किया। प्रारम्भ में वे 'यात्री' उपनाम से रचना किया करते थे। सन् १९३७ में वे बौद्ध धर्म के प्रभाव में आये और तब उन्होंने नागार्जुन नाम धारण किया। यही नाम उनकी पहचान बन गया। आज वैद्यनाथ मिश्र नाम प्रायः अपरिचित-सा हो गया है। वे साहित्यकार नागार्जुन के रूप में ही सुविख्यात रहे हैं।

निर्धन-शोषित जनों के प्रति उदार भाव और समानुभूति धारण करने वाले नागार्जुन मानवता के उपासक और कलुष मान्यताओं के विरोधी थे। भ्रमणशील व्यक्तित्व के कारण वे घूमते-घूमते लंका जा पहुँचें। वहाँ वे संस्कृत के आचार्य के रूप में कार्यरत रहे। १९४१ ई० में वे भारत लौट आये। उन्हें सर्वप्रथम व्यंगकार, कथाकार और कवि के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त हुई। अनेक महापुरुषों तथा साहित्यकारों के संपर्क में वे रहे, पर राहुल सांकृत्यायन और महाकवि निराला का उनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। नागार्जुन की राजनीतिक विचारधारा राहुल जी से प्रभावित हुई तथा साहित्यिक भावधारा पर निराला जी का प्रभाव पड़ा। यही कारण है कि साम्यवाद तथा यथार्थवाद को मान्यता देते हुए उन्होंने रचनाएँ कीं। वे लंका के अतिरिक्त बर्मा और तिब्बत भी गये थे।

खुली दृष्टि से नागार्जुन ने समाज और शासन को देखा तथा शोषित जनता की आवाज को रचनाबद्ध किया है। उन्होंने यातनाग्रस्त मनुष्यता के उद्धार के लिए क्रान्ति का आह्वान किया तथा शासक और सामाजिक के शोषक-कार्यों का विरोध किया। उन्हें जेल-यात्रा करनी पड़ी। स्वतंत्र भारत में भी उन्हें जेल जाना पड़ा, पर निर्भीक रचनाकार नागार्जुन ने इन सबकी चिन्ता न करते हुए अपने गद्य तथा पद्य की कृतियों में रूढ़ियों, अव्यवस्थाओं, दूषित प्रवृत्तियों का विरोध किया और वे मानवता के पक्षधर बने रहे। राष्ट्रप्रेम, स्वदेश प्रेम, प्रकृति प्रेम की प्रतिष्ठा उन्होंने अपने काव्य में की। साहित्यकार नागार्जुन ने १९३० ई० में लेखन-कार्य प्रारम्भ किया। तब से वे निरंतर साहित्य-सृजन में प्रवृत्त थे। इस जनवादी प्रगतिशील कवि का निधन ५ नवम्बर, १९९८ को दरभंगा में हो गया।

रचनाएँ :- (१) उपन्यास-- 'रतिनाथ की चाची'; 'बलचनमा'; 'नई पौध'; 'बाबा बटेसर नाथ'; 'दुःख-मोचन'; 'वरुण के बेटे'; 'कुम्भी पाक'; 'हीरक जयंती'; 'उग्र तारा'; ।

(२) काव्य-- 'युगधारा'; 'प्यासी पथराई आँखें'; 'सतरंगे पंखों वाली'; 'तुमने कहा था'; ।

(३) खण्डकाव्य-- 'भष्मांकुर'।

इनके अतिरिक्त नागार्जुन की अन्य रचनाएँ भी हैं, यथा- 'खून और शोले', प्रेत का बयान', 'चनाजोर गरम', 'अब तो बन्द करो हे देवि', 'यह चुनाव का प्रहसन'।

साहित्य-साधना :- (क) उपन्यासकार के रूप में-- नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में समाजवादी यथार्थवाद को मान्यता देकर कथानकों की सृष्टि की है। आंचलिकता को उन्होंने स्वीकारा है तथा अपने उपन्यासों 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ', 'दुख मोचन', 'वरुण के बेटे' में दरभंगा और पूर्णिया जनपदों के जन-जीवन, रहन-सहन और वातावरण का सजीव चित्रांकन किया है। इन रचनाओं की भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग है तथा व्यंग को महत्त्व दिया गया है।

(ख) काव्यकार के रूप में :- एक प्रगतिवादी कवि के रूप में कवि नागार्जुन को सर्वाधिक यश प्राप्त हुआ। उन्होंने संघर्षशील सर्वहारा वर्ग की महत्ता का अंकन किया है, मध्यमवर्गीय जनता की

समस्याओं को पहचानते हुए उसका कथन किया है तथा देश की स्वतंत्रता, खुशहाली और राष्ट्रीय चेतना को उजागर कर भारत की जनता को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। उनके काव्य में वैयक्तिकता, सामाजिक यथार्थ, प्रणय भावना, स्वदेश प्रेम, प्रकृति प्रेम आदि का दर्शन मिलता है। उनकी कविताओं से उनकी काव्य-दृष्टि का परिचय मिलता है।

वैयक्तिकता :- नागार्जुन ने भोगे हुए अनुभव को यथा अवसर अपने काव्य में बड़ी सच्चाई के साथ व्यक्त किया है। जनता की आवाज को कविता में ढालने वाले इस जन-कवि ने वैयक्तिक अनुभूति को स्वर देते हुए कहा है :-

"पैदा हुआ था मैं
दीन-हीन अपठित किसी कृषक-कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव ठेठ बचपन से
कवि मैं हूँ दबी हुई दूब का
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में।"

आत्म-कथ्यमूलक इस कविता में नागार्जुन ने अपने अभावग्रस्त जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है तथा स्पष्टतः घोषित किया है कि वे 'दबी हुई दूब' के कवि हैं। निश्चय ही वे शोषितों, सर्वहारा और दलितों के कवि थे। इस कविता में 'अभाव का आसव' का रूपक-विधान तथा 'दबी हुई दूब' का प्रतीक विधान कवि के काव्य का स्वरूप ही स्पष्ट करता है।

सामाजिक यथार्थ :- नागार्जुन ने समाज के निचले तपके के लोगों का आर्तनाद सुना था, मध्यमवर्ग की समस्याओं को पहचाना था और उनकी बेचैनी का अनुभव किया था तथा समाज की आर्थिक विसंगतियों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया था। उन्होंने सेठ, साहूकार, जमींदार और सामन्ती व्यवस्था की नौकरशाही को जन-शोषण के लिए जिम्मेदार समझा। इसीलिए अपनी कविता में विविध वर्ग का अभावग्रस्त चित्र वे उतारते रहे हैं तथा शोषण में लिप्त व्यक्ति और व्यवस्था का विरोध करते रहे।

रिक्शेवालों के जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हुए उन्होंने लिखा है :-

"गुट्ठल घट्ठों वाले कुलिश-कठोर पैर
दे रहे थे गति
खड़-बिहीन ठूँठ पैडलों को
चला रहे थे
एक नहीं, दो नहीं तीन-तीन चक्र।
देर तक टकराये
उस दिन इन आँखों से वे पैर
भूल नहीं पाऊँगा फटी बिवाइयाँ
खुब गईं दूधिया निगाहों में
धँस गईं कुसुम-कोमल मन में।" --(खुरदुरे पैर)

नागार्जुन ने ऐसे चित्रों को प्रस्तुत कर शोषित जनों के प्रति पाठकों की सहानुभूति उत्पन्न की है। इसके साथ ही उन्होंने शोषक वर्ग पर आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा है :-

"जमींदार हैं, साहूकार हैं, बनिया हैं व्यापारी हैं,
अन्दर-अन्दर विकट कसाई बाहर खद्दरधारी हैं।

....

खादी ने मलमल से अपनी साँठ-गाँठ कर डाली हैं
बिड़ला, टाटा, डालमिया की तीसो दिन दीवाली है"

नागार्जुन को विश्वास था कि वैषम्य मिटेगा और वे घोषित कर उठे --

" खेत-मजूरों और किसानों में जमीन बँट जायेगी"

और तब "सुजला-सुफला के गायेंगे गीत प्रसन्न किसान-मजदूर।।"

प्रगतिवादी होकर भी नागार्जुन किसी वाद के अंधानुयायी नहीं रहे। स्वतंत्र व्यक्तित्व के धनी नागार्जुन ने बुराई का डँटकर विरोध किया।

मार्क्सवादी विचारधारा के विश्वासी नागार्जुन ने चीनी आक्रमण के समय देश-प्रेम से विह्वल होकर कम्यूनिष्ट कठमुल्लों की भी खबर ली --

"जी हाँ, पेकिंग ही रहते थे कल तक मेरे नाना
जी हाँ, मैंने अपनी माता को अबके पहचाना
जी हाँ, कल नोचेंगे मुझको कम्यूनिष्ठ कठमुल्ले
जी हाँ, लाल चीन के ठुल्ले चाबेंगे रसगुल्ले।"

आत्म-स्वीकृति और सच्चाई नागार्जुन की विशेषता थी।

प्रणय-भावना :- नागार्जुन की कविताओं में आक्रोश और विरोध ही नहीं है; उन्होंने प्रेम-विरह की रचनाएँ भी कीं हैं। उनका प्रणय-भाव मर्यादित रहा है तथा उनके विरह -संयोग वर्णन में भी शालीनता मिलती है। संयोग का स्वरूप देखिए :-

"बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर भोगे
गंध-रूप-रस-शब्द-स्पर्श सब साथ-साथ इस भू पर।"

वियोग में कवि स्वीकार करता है कि --

"तुम नहीं हो पास,
मैं तो तरसता हूँ प्यार के दो बोल सुनने के लिए।"

इस प्रकार नागार्जुन ने कोमल भावों को भी काव्य में प्रतिष्ठित किया है।

देश-प्रेम :- नागार्जुन अपने देश की चप्पा-चप्पा भूमि से प्यार करते हैं। देश के लिए मर-मिटने वालों के प्रति उनके मन में श्रद्धा थी। गाँधी जी को गोली मारी गयी तो कवि रो पड़ा। राष्ट्रपिता का महामौन उसके मन को रह-रह कर कुरेदने लगा। पितृवियोग की व्यथा से वह भर उठा। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण पर उसने 'माओ' को गाली दी और अय्यूब के हिटलरी गुमान को ललकार कर दुश्मनों को सावधान रहने की धमकी दी। देशप्रेम संबंधी भावना देखिए :-

"खेत हमारा, भूमि हमारी, सारा देश हमारा है।
इसीलिए तो चप्पा-चप्पा इसका हमको प्यारा है।।"

प्रकृति-प्रेम :- नागार्जुन ने प्रकृति के मनोरम चित्रों का अंकन किया है। कालिदास के 'मेघदूत' से वह प्रभावित रहा है और उसके चित्रों को नये संदर्भ में प्रस्तुत किया है। उसने 'बादल को घिरते देखा हैं' शीर्षक कविता में एक ही संदर्भ के कई चित्र उरेखे हैं। कुछ उदाहरण देखिए :-

१ - "पास की ऊमस से आकुल
तिक्त मधुर विसतंतु खोजते हंसों को तिरते देखा है।"
२ - "बेबस उन चकवा-चकई का, बन्द हुआ क्रंदन फिर उनमें
उस महान सरवर के तीरे
शैवालों की हरी दरी पर, प्रणय-कलह छिड़ते देखा है।"

'शरद-पूर्णिमा', 'झुकं आये कजरारे बादल' आदि कविताएँ कवि की प्रकृति संबंधी दृष्टि का परिचय देतीं हैं।

नागार्जुन ने सामयिक समस्याओं को व्यंगात्मक पद्धति पर प्रस्तुत करने में बड़ी सफलता प्राप्त की है। वे 'महँगाई के टैंक' को तोड़ने के लिए आवाहन देते रहे; सजग पहरुये को कन्धे पर बन्दूक सँभालने का संदेश देते रहे; 'रंग धुल रहा स्यारों का' कहकर नेताओं पर व्यंग करते रहे तथा उन्हें खतरे में फँसा बताते थे।

भाषा :- कवि नागार्जुन ने कविता में खड़ीबोली का प्रयोग किया है। उनकी कुछ रचनाओं में संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का उपयोग है तो कुछ अन्य रचनाओं में उर्दू, बँगला, मैथिली, अंग्रेजी शब्दों का व्यवहार है। भाषा का स्वरूप देखिए :-

१- संस्कृतनिष्ठ भाषा- "रजत-रचित मणि खचित कलामय
पान-पात्र द्राक्षासव पूरित"
२- उर्दू प्रयोग- "हमसफर को सलाम, हमसफर को सलाम
....
फनकार को सलाम, सखुनवर को सलाम।"

३- लाक्षणिकता, बिम्ब-विधान और अलंकार-- कवि नागार्जुन की रचनाओं में भाषा की लाक्षणिकता, बिम्बविधान और अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। 'बापू के भी ताऊ निकले तीनों बंदर बापू के', 'भले-भले मुँह उगल रहे हैं चीन विरोधी आग' जैसी उक्तियों में लक्षणा शक्ति का प्रयोग है। उन्होंने कई प्रकार के बिम्ब प्रस्तुत किये हैं; यथा– दृश्य, श्रव्य। दृश्य बिम्ब का एक उदाहरण देखिए :-

"छोटे-छोटे मोती जैसे अतिशय शीतल वारिकणों को
मानसरोवर के उस स्वर्णिम कमलों पर गिरते देखा है।"

उनकी रचनाओं में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग देखिए :-

उपमा-- "घिसे हुए पीतल-सी पांडुर पूस मास की धूप सुहावन।"
रूपक-- "शैवालों की हरी दरी पर"
मानवीकरण-- "तुंग हिमालय के कंधों पर"

छन्द-विधान की दृष्टि से नागार्जुन ने अधिकांश कविताएँ मुक्त छंद में लिखीं हैं किन्तु उन्होंने छन्दबद्ध रचनाएँ भी खुलकर कीं हैं। भाषा, अलंकार, छन्द और भाव की दृष्टि से नागार्जुन की रचनाओं का बड़ा महत्त्व है। निश्चय ही वे एक श्रेष्ठ कवि थे।

❖❖❖

शिवमंगल सिंह 'सुमन'

जन्म-संवत् :- १९७३वि०

मृत्यु-संवत् :- २०५९वि०

जीवन-वृत्त :- शिवमंगल सिंह का जन्म उत्तर प्रदेश स्थित उन्नाव जिलान्तर्गत झगरपुर में ५ अगस्त, सन् १९१६ ई० को नागपंचमी के दिन हुआ था। वे बाल्यावस्था से ही साहित्य के प्रति अनुरक्त रहे। राष्ट्रीयता के प्रति समर्पित 'सुमन' जी ने १९४० ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय लेकर स्नातकोत्तर उपाधि (एम०ए०की डिग्री) प्राप्त की। यहीं से वे पी-एच० डी० की उपाधि से सम्मानित हुए। वे उस समय भी अपनी काव्य-रचना के कारण सबके प्रिय रहे।

शिवमंगल सिंह ने उपनाम के रुप में 'सुमन' को स्वीकार किया। इसी नाम से वे कविता लिखते रहे। यह कवि-नाम 'सुमन' उनके नाम के साथ पूरी तरह जुट गया और वे शिवमंगल सिंह 'सुमन' के रूप में विख्यात हो गये। वे नेपाल के भारतीय दूतावास में 'कल्चरल एटैची' के रूप में रहे। इस पद पर उन्होंने प्रतिष्ठा प्राप्त की। उनकी प्रतिभा और विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में उपकुलपति पद पर नियुक्त किया गया। इस पद पर रहते हुए उन्होंने विश्वविद्यालय को गरिमा-मंडित किया। कवि 'सुमन' को साहित्य सेवा के लिए अनेक सम्मान तथा पुरस्कार प्राप्त हुए, यथा - सोवियत भूमि पुरस्कार, भारत भारती पुरस्कार आदि।

कवि 'सुमन' ने प्रारम्भ में प्रेम-गीतों का गान किया। प्रत्येक युवक युवावस्था में इसी प्रकार के गीत गाता है। 'सुमन' का कवि हृदय भी इससे अछूता नहीं रहा। रातनीति में उनकी सक्रियता छात्र-जीवन से ही थी। वे कार्ल-मार्क्स के दर्शन से प्रभावित हुए। इसके परिणामस्वरूप कविता में भी शोषित के पक्ष में और शोषको के विरोध में वे अपने विचार व्यक्त करने लगे। प्रगतिवादी विचार-धारा को काव्य में प्रभावी ढंग से प्रतिष्ठित करने वाले कवियों में उनका विशिष्ट स्थान है।

काव्य कृतियाँ :- 'हिल्लोल' शीर्षक काव्य-संग्रह में कवि की प्रेम भाव की कविताएँ संकलित हैं। 'पर आँखे भरी नहीं, में संगृहीत कविताएँ मिलन की कामना, प्रेम -भावना और सौन्दर्य-साधना से संबन्धित हैं। 'जीवन के गान', 'प्रलय -सृजन',विश्वास बढ़ता ही गया' शीर्षक काव्य संग्रहों में कवि 'सुमन' की क्रान्ति-भावना, प्रगतिवादी विचारधारा तथा राष्ट्रीय-चेतना का स्वर मुखरित है। 'विन्ध्य हिमाचल' की कविताएँ देश-प्रेम और राष्ट्रीयता की सशक्त भावधारा से युक्त हैं।

काव्य-साधना :- 'सुमन' ने सामन्ती वैभव के बीच अपनी जीवन-यात्रा प्रारम्भ की थी। वे एक सम्पन्न ठाकुर परिवार में जन्मे और पले थे। उस परिवार की सम्पन्नता को उन्होंने भोगा था, किन्तु इसके साथ ही उन्होंने सामन्तों द्वारा शोषित मजदूरों और कृषकों को दी गयी पीड़ा और उनकी बेबस जिन्दगी को भी देखा था। उनके प्रति उनमें सहानुभूति जगी और शोषकों के प्रति विद्रोह-भावना। फलत: वे मार्क्सवादी हो गये और उन्होंने 'प्रलय-सृजन', 'जीवन के गान' और 'विश्वास बढ़ता ही गया' जैसी प्रगतिवादी काव्य-कृतियाँ प्रस्तुत कीं। वे प्रारम्भ से ही मार्क्स से प्रभावित कविता लिखते रहे हों, ऐसा नहीं था। आरम्भ में उन्होंने भी प्रेम-गीतों का लेखन किया था। छायावाद के पराभव का समय था। ऐसे समय में रचनाकारों ने परंपरा और रूढ़ि के विरोध में रचना आरम्भ तो की, किन्तु व्यक्तिवादी रूप को वे छोड़ नहीं सकते थे। यहीं कारण था कि वे प्रेम, विरह,मिलन आदि भावों की कविताएँ भी लिखते रहें। 'सुमन' ने भी इन भावों से ओतप्रोत कविताओं का लेखन किया। उनकी कविताओं के दो संग्रह-'हिल्लोल' तथा 'पर आँखे भरी नहीं प्रकाशित हुए।

कवि 'सुमन' ने पहले प्रेम भाव के गीत लिखे, फिर मार्क्सवादी भावना के पोषक काव्य प्रस्तुत किये और राष्ट्रीयता तथा देश-प्रेम संबन्धी रचनाएँ कीं। गाँधी जी से प्रभावित होकर उन्होंने सत्य और अहिंसा को स्वीकारा। उनके काव्य-संकलन 'विन्ध्य-हिमाचल' में इस प्रकार की कविताएँ संकलित हैं। प्रेम-भाव, प्रगतिवाद और देश-प्रेम की रचनाओं का स्वरूप निम्नांकित कविताओं में देखा जा सकता है :-

१- "मत प्रिय को याद दिलाना
वे मुझको भूल चुके हैं।
....
बिना तुम्हारे इस जीवन में
मोह न था, आसक्ति न थी।
....
अलि सपनो को मत पूछो
वे तो अब बीत चुके हैं।"

२- मास्को के प्रति श्रद्धा और मार्क्सवाद के प्रति आस्था--

"सर्व प्रथम साम्राज्यवाद का
निकला यहीं जनाजा।
....
नव संस्कृति के अग्रदूत हैं
पददलितों की आस
एक तुम्हारी गति यह अटकी
मानवता की साँस।
पर अजेय है आज तुम्हारी
पहले से भी शक्ति
जिसमें मिले विश्व भर के
दलितों की चिर अनुरक्ति।"

३- देश और देश की मिट्टी से प्रेम तथा नव-निर्माण की कामना--

"हर किरण ज़िन्दगी की आँगन तक आने दो
नव-निर्माणों की लपटों को मत मन्द करो
इस नये सवेरे की लाली को देखो तो
इसकी अपनी कितनी पहचान पुरानी है।
भू, भुवः, स्वर्ग को एक बनाने आयी जो,
युग की गायत्री सब छन्दों की रानी है।

कवि 'सुमन' के प्रेम-गीतों में आशा-निराशा, मिलन-विरह, सुख-दुख के अनेक चित्र उभर कर

ाये हैं। उनके प्रगतिवादी काव्यों में एक ओर साम्यवाद की स्वीकृति और मास्को के प्रति आस्था का वर गूँजा है तो दूसरी ओर दलित, शोषित जनों को जागृति और आशा का संदेश देने का शंखनाद ुनायी पड़ा है। 'लाल सेना', 'मास्को अब भी दूर है', 'सोवियत रूस के प्रति' आदि कविताओं में रूस, ास्को और साम्यवाद के प्रति आस्था प्रकट की गयी है। इसके साथ ही समाज के वैषम्य पर बज्राघात रते हुए 'सुमन' ने बड़े ओजस्वी स्वर में स्थान-स्थान पर पूँजीपतियों की भर्त्सना की है और निर्धन, लितों के प्रति समानुभूति प्रगट की है। निर्धनता में पिसते लोगों की दयनीय दशा का एक चित्र खिए:-

"कुत्तो के पंजों से आहत
जर्जर तन बलहीन।
श्वान झपट ने जाता होगा
मुँह की रोटी छीन।।
....
बीन सड़ा मैला नाली का
मुँह में लेता डाल।
भूख ? भूख ने मिटा दिया है,
भले बुरे का हाल।।"

सर्वहारा के प्रति 'सुमन' सदा जागरूक रहे हैं। राष्ट्र-प्रेम के गीत लिखते समय भी उन्होंने हारा और दलितों की सुधि लेना अपना कर्तव्य माना। 'विन्ध्य हिमालय' शीर्षक पुस्तक की वाणी' शीर्षक कविता का उद्धरण देखिए :-

"इन सबसे बढ़कर भूख बिलखती मिट्टी की
पथ पर पथराई आँखें पास बुलाती हैं।
भगवान भूल में रचकर जिनको भूल गया,
जिनकी हड्डी पर धर्म-ध्वजा फहराती है।।
इनको भूलूँ तो मेरी मिट्टी-मिट्टी है,
मेरी आँखों का पानी केवल पानी है।
इनको भूलूँ तो मेरा जन्म अकारथ है,
मेरा जीना मरने की मूक कहानी है।
....
विश्वास सर्वहारा का तुमने खोया तो
आसन्न मौत की गहन गाँस गड़ जाएगी,
यदि बाँध बाँधने के पहले जल सूख गया
धरती की छाती में दरार पड़ जाएगी।"

भाषा, छन्द और अलंकार :- कवि 'सुमन' की भाषा सरल, मर्मस्पर्शी तथा व्यंजना से युक्त

है । उनकी ओजस्वी कविताओं से ओज गुण तथा प्रेम-भाव की कविताओं में प्रसाद गुण का दर्शन होता है । भावाभिव्यक्ति के लिए उन्होंने यथा-आवश्यकता मात्रिक तथा मुक्तवृत्त छन्दों का प्रयोग किया है । उनके गीतों में संगीतात्मकता और गतिमयता है । 'सुमन' की कविता में अलंकारों का स्वभाविक प्रयोग मिलता है । कुछ अलंकारों का सहज प्रयोग देखिए

अनुप्रास- **''मैं कैसे इनकी मोहकता से मुख मोड़ूँ ।''**

रूपक- **''कब तक अफीम आशा की हमें खिलाओगे ।''**

मानवीकरण- **१- ''बेबसी चीखती जब बच्चों की लाशों पर ।''**

२- ''जिस दिन लाचारी मुझपर तरस दिखाएगी ।''

यमक- **''इनको भूलूँ तो मेरी मिट्टी मिट्टी है ।''**

प्रतीक- **''जनता पूर्णिमा मनाने की जब तक सोचे**
घिर गया अमावस का अम्बर में घेरा यदि ।''

बिम्बविधान - **''अम्बर में उगती सोने-चाँदी की फसलें ।''**

कवि 'सुमन' की प्रेम-मूलक, साम्यवादी और राष्ट्र-प्रेम सम्बन्धी कविताओं को पढ़ने के पश्चात् यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वे काव्य साधना के क्षेत्र में सतत् गतिशील रहें हैं । प्रेम, प्रकृति और मानव सभी को उन्होंने अपने रागात्मक संबंध के बीच बाँधा है और काव्य में स्थान दिया है । प्रणय, सौन्दर्य और मानवता के उपासक कवि सुमन ने अपनी रचनाओं से साहित्य की श्री-वृद्धि की है ।अपनी काव्य प्रतिभा के कारण उन्होंने साहित्य जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है । जन्म-मरण एक शाश्वत सत्य है । २७ नवम्बर, २००२ को कवि 'सुमन' ने देह-त्याग किया, पर यश की काया में वे सदैव जीवित रहेंगे ।



गजानन माधव मुक्तिबोध

जन्म-संवत् :-- १६७४ वि०　　　　　　　　　　　　　　　　मृत्यु-संवत् :-- २०२१ वि०

जीवन-वृत्त :- गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म १३ नवम्बर सन् १६१७ ई० को मध्यप्रदेश स्थित ग्वालियर नामक नगर के श्यौपुर नामक स्थान पर महाराष्ट्रीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता का नाम माधव मुक्तिबोध था। वे पुलिस इन्सपेक्टर थे। गजानन माधव मुक्तिबोध की शिक्षा उज्जैन और इन्दौर में हुई थी। उन्होंने उज्जैन स्थित माधव कालेजिएट हाई स्कूल से मैट्रिक किया, तदनन्तर १६३८ में होल्कर कालेज इन्दौर से बी०ए० की उपाधि प्राप्त की। १६३६ में उनका विवाह हो गया।

मुक्तिबोध ने स्वाध्याय से दर्शन, मनोविज्ञान आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। उज्जैन में उनका परिचय पं० रमाशंकर शुक्ल से हुआ और उनकी प्रेरणा से वे अधिकाधिक विद्वानों की कृतियों को पढ़ने में प्रवृत्त हुए। उन्होंने पहले माडर्न स्कूल उज्जैन में शिक्षक के रूप में कार्य किया। १६४० में वे ग्वालियर स्थित शारदा शिक्षा सदन में अध्यापक पद पर नियुक्त हुए। इसके पश्चात् उन्होंने जबलपुर और नादगाँवपुर में क्रमशः हितकारिणी हाई स्कूल और दिग्विजय कालेज में शिक्षक के रूप में कार्य किया। उन्होंने एम०ए० की उपाधि भी प्राप्त की।

अध्यापक के रूप में कार्य करने के अतिरिक्त कवि मुक्तिबोध ने वाराणसी से प्रकाशित होने वाले प्रमुख मासिक पत्र 'हंस' के संपादकीय विभाग में भी काम किया था। आकाशवाणी, नागपुर के समाचार-विभाग से भी वे संबद्ध रहे। जीवन के अंतिम समय में वे शिक्षक के रूप में नादगाँव में ही रहे। वहीं वे पक्षाघात के शिकार हो गये। भोपाल और दिल्ली में उनकी चिकित्सा हुई, पर वे बचाये न जा सके और १२ सितम्बर, १६६४ ई० को उनका निधन हो गया।

कृतियाँ :- (१) कविता-संग्रह :- १- तार सप्तक : '१६४३' में उनकी कविताओं को 'अज्ञेय' ने स्थान दिया।

२- चाँद का मुँह टेढ़ा है।

(२) कहानी-संग्रह :- १- काठ का सपना।

२- सतह से उठता हुआ आदमी

(३) उपन्यास :- विपात्र।

(४) आलोचना :- कामायनी : एक पुनर्विचार।

(५) निबन्ध-संग्रह :- १- नयी कविता का आत्म-संघर्ष तथा अन्य निबन्ध।

२- नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र।

३- भारत-इतिहास और संस्कृति।

साहित्य-साधना :- मुक्तिबोध ने अपने साहित्य में अपने जीवन-संघर्ष को बड़ी सच्चाई के साथ उतारा है। उनकी रचनाओं में यथार्थ का कथन है। राजनीतिक विचारधारा की दृष्टि से वे मार्क्सवादी थे, इसीलिए उन्होंने अपनी प्रारंभिक रचनाओं में प्रगतिवादी विचारों को महत्त्व दिया है। उन्होंने अपने साहित्य में निम्न-वर्ग की जुझारू शक्ति को प्रकाशित किया है।

कवि मुक्तिबोध ने विविध विधाओं में साहित्य-लेखन किया किन्तु उनके यश का आधार है उनका काव्य-संसार। 'तार-सप्तक' प्रथम भाग (१६४३) में उनकी कविताओं को स्थान मिला, तदनन्तर 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' शीर्षक काव्य-संग्रह, १६६४ में प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित कविताओं ने कवि मुक्तबोध को प्रयोगवादियों के मध्य शीर्ष स्थान पर बैठा दिया।

कवि मुक्तिबोध ने १६३५ में काव्य-रचना प्रारम्भ की। पहले वे छायावादी काव्य-धारा से प्रभावित होकर रचना करते रहे। इसके बाद 'प्रगतिवाद' का प्रभाव पड़ा और उन्होंने प्रगतिवादी रचनाएँ कीं। 'तार-सप्तक' की रचनाओं में प्रगतिवादी स्वर मुखरित है। इन सबके बावजूद 'मुक्तिबोध' मूलतः प्रयोगवादी काव्य-धारा के सशक्त हस्ताक्षर कहे गये और 'नयी कविता धारा' के वे शीर्षस्थ कवि माने गये। मुक्तिबोध का काव्य नयी कविता की संपूर्ण विशेषताओं का दर्पण है। कुछ उदाहरण देखिए :-

(क) समग्र जीवन के प्रति आत्मीयता :-

"जिन्दगी में जो कुछ है, जो भी है
सहर्ष स्वीकारा है,
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है,
वह तुम्हें प्यारा है,
गरबीली गरीबी यह, ये गंभीर अनुभव सब,
यह विचार वैभव सब,
दृढ़ता यह, भीतर की सरिता, यह अभिनय सब,
मौलिक है, मौलिक है,
इसलिए कि पल-पल में
जो कुछ भी जाग्रत है अपलक है,
संवेदन तुम्हारा है।"

निश्चय ही कवि को अपनी गरीबी, अपने अनुभव, अपनी दृढ़ता, अपनी करुणा और अपनी मौलिकता से पूरा लगाव था।

संघर्ष-चेतना :- मुक्तिबोध ने न तो स्वयं परिस्थितियों के सामने घुटना टेका और न दुखी-दबे लोगों को पराजित देखना चाहा। उन्होंने ऐसे लोगों को सदैव प्रयत्नवान रहने की प्रेरणा दी; संघर्ष की चेतना दी :-

"दुःख तुम्हे भी है,
दुख मुझे भी है।
....
पीड़ा भरा उत्तरदायित्व भार हो चला,

कोशिश करो,
जमीन में गड़कर भी"

प्रगतिवादी स्वर :- मार्क्सवाद में विश्वास रखने तथा स्वयं दुःख-दर्द तथा शोषण भरी जिन्दगी देखने के कारण मुक्तिबोध बराबर शोषण-मुक्त समाज को देखने की कामना करते रहे। निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए :-

समस्या एक--
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुंदर व शोषण-मुक्त
कब होंगे ?

उन्हें विश्वास है कि 'शरीर की मिट्टी से, धूल से खिलेंगे गुलाबी फूल"। 'शरीर की मिट्टी' बलिदान का प्रतीक है तो 'गुलाबी फूल', शोषण-मुक्त सुखी, यशस्वी जीवन का। कवि का मानवतावादी विचार इन पंक्तियों में ध्वनित है।

जीवन की विषमता पर व्यंग :- मुक्तिबोध सीधे-सपाट रूप में विषमता की बात कहने की अपेक्षा व्यंग-पद्धति पर उसकी ओर संकेत करते थे तथा दुःखमूलक अभिव्यक्ति के द्वारा वैषम्य को प्रकाशित करते थे, यथा --

"नफ़रत और नफासत
बीवी के साथ भी सियासत!
लेकिन, इन सब सफेद
चमचमाते शानदारों की धाक है -
मेरा दिल चाक है।

'दिल के चाक' होने की व्यंजना महत्त्वपूर्ण है।

अभिव्यक्ति-पक्ष :- मुक्तिबोध ने अधिकांशतः लम्बी कविताएँ लिखीं हैं। इन कविताओं ने इतिवृत्तात्मकता का समावेश मिलता है। ऐसी कविताओं में नाटकीयता को उभारने का उद्देश्य लेकर उन्होंने दृश्य-विधान भी किया है। बौद्धिकता की अतिशयता के कारण उनकी कविताएँ बोध की दृष्टि से प्रायः जटिल-सी हो उठीं हैं।

अपनी कविताओं में मुक्तिबोध ने भाषा के प्रति कोई आग्रह नहीं दिखाया है। उन्होंने संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी आंदि शब्दों का व्यवहार करते हुए खड़ीबोली में रचनाएँ कीं हैं। कुछ उदाहरण देखिए :-

(क) संस्कृतनिष्ठ भाषा :- "ओ काव्यात्मन फणिधर, अपना फन फैलाओ
मणिगण को धारण करो। उन्हें
वाल्मीकि गुहा में ले जाओ;
एकत्र करो।"

(ख) अन्य भाषाओं के शब्दों से युक्त प्रयोग --

"हर एक अपना-अपना स्वर्ग, सेतु
बुलडोजर, क्रेन उठाये चल रहा है
और वहीं, हर एक
लाल-लाल आँखों से घूरते हुए
दूसरे बुलडोजर और लोहे के जीने वाले को
मन ही मन कहता है-
मारो स्साले को।"

कवि मुक्तिबोध की कविताओं में नये प्रतीकों, बिम्बों और उपमानों का प्रयोग मिलता है। उनकी रचनाओं में अलंकारों का स्वाभाविक समावेश है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :-

प्रतीक-योजना :- मुक्तिबोध ने कविताओं में 'वट वृक्ष', 'वाल्मीकि', 'राक्षस', 'ब्रह्म', 'गाँधी', 'तिलक' आदि का प्रयोग प्रतीक के रूप में ही किया है, यथा--

"मणिगण को धारण करो, उन्हें
वाल्मीक गुहा में ले जाओ"

इन मिथिकल और ऐतिहासिक पात्रों को प्रतीक के रूप में लेने के साथ ही अन्य अनेक प्रकार के प्रतीकों का व्यवहार भी उन्होंने किया है, यथा :-

'गुलाबी फूल', 'नागात्मक कविता', 'फणिधर', 'पहाड़ी', 'टीला' आदि। 'गुलाबी फूल' का प्रयोग देखिए --

"आत्म-विस्तार वह
बेकार नहीं जायेगा
जमीन में गड़े हुए देहों की खाक से
शरीर की मिट्टी से, धूल से,
खिलेंगे गुलाबी फूल।"

बिम्ब-विधान :- मुक्तिबोध ने अपने परिवेश से बिम्बों को चुना है। उन्होंने कई बिम्बों को गढ़ा भी है। दो उदाहरण देखिए :-

१- "हम एक ढहे हुए मकान के नीचे दबे हैं।
....
तो उन चट्टानों की
आन्तरिक परतों की सतहों में
चित्र उभर आएंगे

हमारे चेहरे के, तन बदन शरीर के,
अन्तर की तस्वीरें उभर आएंगी" (काव्य-बिम्ब)
२- "तब न मालूम कहाँ से एक खयाल
गले में बाँह डालता है
मुलायम, मीठा एक उबाल
दिल उछलता है।" (दृश्य बिम्ब)

अलंकार-प्रयोग :-

उपमा-- "बिल्ली की, बाघों की आँखों सी चमक रही,
ये राग-द्वेष ईर्ष्या भय मत्सर की आँखें।"

मूर्तविधान-- "एक खयाल
खड़ा होकर
गले में बाँह डालता है".

रूपक-- "वह विकृत आइना मन का"

मुक्तिबोध की कविताओं में उल्लेख, रूपकातिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, वक्रोक्ति आदि अलंकारों का भी सहज प्रयोग मिलता है।

कवि मुक्तिबोध की इतिवृत्तिमूलक बड़ी कविताओं तथा उनकी रचनाओं में निहित बौद्धिकता उनके काव्य को कहीं-कहीं नीरस और दुर्बोध बनाती है, पर इसे 'नयी कविता' की स्थापनाओं के सन्दर्भ में दोष नहीं कहा जा सकता है। उनकी कविताओं में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का समन्वित रूप देखकर समीक्षक यह मानते हैं कि मुक्तिबोध ने मनुष्य को उसके यथार्थ स्वरूप से परिचित कराया है तथा उसे संघर्षशील बने रहने की प्रेरणा दी है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए उन्होंने नवीन प्रतीकों तथा बिम्बों का उपयोग कर नयी कविता के शिल्प-तत्त्व को प्रभावित किया है। निश्चय ही वे 'नयी कविता- धारा' के प्रमुख कवि थे।



गिरिजा कुमार माथुर

जन्म-संवत् :-- १६७६ वि० **मृत्यु-संवत् :--** २०५१ वि०

जीवन-वृत्त :- गिरिजा कुमार माथुर का जन्म १९१९ ई० में बुन्देलखण्ड स्थित अशोकनगर में देवी चरण के घर हुआ था। उनके पिता देवी चरण एक रससिद्ध कवि थे और ब्रजभाषा में कविता करते थे। बालक गिरिजा कुमार पर भी इसका प्रभाव पड़ा। ६ वर्ष की अवस्था में ही वे ब्रजभाषा की कविता में रुचि लेने लग गये थे। उन्होंने प्रारम्भ में ब्रजभाषा में ही कविताएँ लिखीं थीं। उस समय काव्य-लेखन की शिक्षा के रूप में कवियों से समस्या-पूर्ति कराने की प्रथा थी। 'आरती' शब्द देकर कविता लिखने को कहा गया था। गिरिजाकुमार माथुर ने अत्यन्त सुन्दर रचना प्रस्तुत की। गणेशोत्सव पर विद्यालय में आयोजित कवि-सम्मेलन में इसे कवि माथुर ने पढ़कर सुनाया और उन्हें बड़ी प्रशंसा मिली। उनकी काव्य-प्रतिभा का सिक्का जम गया। वह कविता यहाँ उद्धृत की जा रही है :-

"शोभा मुखचंद्र की अनोखी सुप्रभा ललाम,
ऊषा उस छवि पर निज छवि को थी वारती,
रूप रस पान करने को घुँघरारी लट,
मधुप समान शुभ साज काज सारती"
सुन्दर सिंदूर भरा तेजवान मुख देख,
रति सकुचाई अरु मौन हुई भारती।
कोटिन कलाधर की कला बलिहारी जात,
गिरिजाकुमार की उतारे सब आरती।।"

गिरिजा कुमार माथुर छायावाद से प्रभावित थे। उन्होंने इसी प्रभाववश कुछ गीतों की रचना भी की। विक्टोरिया कालेज, ग्वालियर में आयोजित कवि-सम्मेलन में उन्होंने एक गीत पढ़कर सुनाया। कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' थे। उन्होंने उसपर मत व्यक्त करते हुए कहा कि यदि इसके साथ कवि का नाम न दिया जाए तो यह रचना कवयित्री महादेवी की कृति लगेगी। गिरिजा कुमार माथुर को यह बात चुभ गयी। उन्होंने निश्चय किया कि वे सबसे अलग तरह की रचना करेंगे। १९३७-३८ में हुए इस परिवर्तनवश कवि माथुर ने कविता में नये प्रयोग प्रारम्भ कर दिये। मुक्तवृत्त छन्द, बिम्ब-विधान, प्रतीक-योजना आदि की नवीनता के कारण उनकी अपनी पहचान बन गयी। वे प्रारम्भ में छायावादी गीतकार अवश्य थे, पर बाद में प्रगतिवादी कविता धारा की ओर मुड़ते हुए वे प्रयोगवादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वे नई कविता के शीर्षस्थ कवि माने गये। १९४३ में 'अज्ञेय' ने 'तार सप्तक' का संपादन किया। इसमें सात प्रयोगधर्मी कवियों को स्थान दिया गया। कवि माथुर इनमें से एक थे। ७३ वर्ष की अवस्था में १० जंनवरी, १९९४ को गिरिजा कुमार माथुर का निधन हो गया।

कृतियाँ :- 'मंजीर'; 'नाश और निर्माण'; 'धूप के धान'; 'कल्पांतर'; 'शिला पंख चमकीले'; 'जो बँध न सका'; 'साक्षी रहे वर्तमान'; 'भीतरी नदी की यात्रा'; 'मैं बंधन के हूँ सामने'। 'मैं बंधन के हूँ सामने' पर कवि माथुर को 'व्यास सम्मान' तथा अकादमी सम्मान से सम्मानित किया गया था।

काव्य-यात्रा के सोपान :- कवि माथुर ने विद्यार्थी जीवन में ही काव्य-रचना आरंभ कर दी थी। १९३७ में 'बिखरी स्मृतियाँ, और 'तीसरा पहर' शीर्षक कविताओं का उन्होंने लेखन किया। 'तीसरा पहर' में उनके प्रयोगवादी रूप का परिचय मिला। १९४१ में कवि माथुर का प्रथम काव्य-संग्रह

'मंजीर' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रणय, विरह, हर्ष, रोमांच और विषाद भाव को व्यक्त करती हैं, किन्तु कुछ कविताओं में जीवन और जगत की समस्याओं तथा ऐतिहासिक बोध का भी प्रकाशन है। संग्रह की कुछ कविताओं में कवि का छायावादी रूप भी झलकता दिखायी पड़ा है, पर छन्द-मुक्त रचनाओं की प्रतीक-योजना, बिम्ब-विधायिनी शक्ति तथा अन्य विशेषताओं के कारण यह संग्रह भी गिरिजा कुमार माथुर के नव्य प्रयोग का ही सूचक है।

१६४३ में कवि माथुर की बारह कविताओं को प्रथम 'तार-सप्तक' में स्थान मिला। उनकी प्रशस्ति के मूल में इसका अत्यधिक योगदान था। इनमें से कुछ शीर्षक हैं- 'पानी के बादल' 'क्वार की दोपहरी', 'भीगा दिन', 'अधूरा गीत', 'बुद्ध' आदि। १६४६ ई० में 'नाश और निर्माण' शीर्षक दूसरा काव्य-संग्रह पाठकों के सामने आया। गिरिजा कुमार माथुर का तीसरा काव्य-संग्रह 'धूप के धान' १६५५ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में ४५ कविताएँ हैं। इनमें कुछ कविताएँ गीत शैली में लिखित रूमानी भाव की हैं, पर अधिकांश मानववादी विचारधारा की पोषक हैं, यथा- 'एशिया का जागरण', 'पहिये', 'धारादीप' आदि।

१६६१ ई० में कवि माथुर की कविताओं का चौथा संग्रह 'शिला पंख चमकीले' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल २५ कविताएँ संकलित हैं। १६६८ में उनका पाँचवाँ संकलन सामने आया। इसका शीर्षक है- 'जो बँध न सका'। इस संग्रह में कवि की ६३ रचनाओं को स्थान मिला है। कवि ने इसे तीन खण्डों में विभाजित किया है - (१) 'इतिहास की पीड़ा', (२) 'कालदृष्टि', (३) 'प्रतिबिम्बों की लय'। प्रथम खण्ड में २३ कविताएँ हैं। इनमें आधुनिक विषमताओं का चित्र उपस्थित करते हुए कवि ने त्रस्त मानव का यथार्थ बिम्ब उभारा है। द्वितीय खण्ड की छः कविताओं में प्रतीकात्मकता अधिक है। इनमें देश की अपेक्षा काल के बिम्बों को प्रस्तुत करने में कवि ने रुचि ली हैं। तीसरे खण्ड की कविताएँ अधिकांशतः रूमानी कल्पना से समन्वित हैं।

गिरिजा कुमार माथुर की सभी काव्य-कृतियों में नये उपमानों, प्रतीकों, बिम्बों तथा छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसीलिए वे नये कवियों के प्रकाश-स्तंभ बन गये थे।

भावपक्ष :- गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में प्रेम-भावना, प्रकृति-प्रेम, देशप्रेम, युगानुभूति आदि का उज्ज्वल स्वरूप देखने को मिलता है। उदाहरण प्रस्तुत है :-

(क) प्रेम-भावना-- कवि माथुर की प्रेम-मूलक कविताओं में रूप वर्णन, संयोग भावना तथा विरहानुभूति के मनोरम चित्र मिलते हैं। रूप-वर्णन का स्वरूप देखिए :-

"बड़ा काजल आँजा है आज
भरी आँखों में हल्की है लाज।"

कवि को संयोग-समय की याद बराबर आती रहती थी। सिल्क के कुर्ते में लिपटे रेशमी चूड़ी के टुकड़े को गिरते देख वह कह उठा है :-

"दूज कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें
सेज सुनहली
कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना
निकल गयीं सपने जैसी वे मीठी रातें।"

'कसे हुए बधंन' का संयोग-सुख लेनेवाला कवि विरह की अनुभूति के क्षणों में मौन नहीं रह पाता है। स्मृति में वह डूब जाता है और पूछ बैठता है :-

"आज भूल जाऊँ मैं कैसे ग्राम बालिका-सा अल्हड़पन।"

(ख) प्रकृति-प्रेम-- कवि माथुर प्रकृति के उपासक थे। बुन्देलखण्ड के परिवेश ने उन्हें

प्रकृति-प्रेमी बना दिया था, फलतः उनकी रचनाओं में कहीं प्रकृति आलंबन रूप में, कहीं सचेतन रूप में और कहीं उद्दीपन रूप में आयी है। आलंबन रूप का कथन देखिए :-

"लाल पत्थर, लाल मिट्टी, लाल कंकड़, लाल बजरी
लाल फूले ढाक के बन, डाँग गाती फाग कजरी।
सनसनाती साँझ सूनी वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी की झाँझ सा बीहड़ झनकता।"

'ढाकबनी' शीर्षक इस कविता में बुन्देलखण्ड की प्रकृति का वर्णन करते हुए उसके आलंबन रूप का कथन कवि ने नये रूप में किया है। 'सनसनाती साँझ' 'वायु का कठला' आदि की व्यंजना तथा 'झाँझ-सा बीहड़' की उपमा सर्वथा नवीन है।

प्रकृति का मानवीकरण कर उसका मनोरम चित्र प्रस्तुत करते हुए एक स्थान पर कहा गया है:-

"शर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदुशाल पहने
....
झाँकती है झझरियों से"

यह धूप 'गृहणी सरीखी मंद पग धर' 'चाय के लघु टेबुलों पर' आ गयी है। प्रकृति का सचेतन रूप प्रस्तुत करने में निश्चय ही गिरिजाकुमार माथुर अद्वितीय थे।

(ग) देश-प्रेम-- गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में देश-प्रेम के अनेक चित्र उभर कर आये हैं। उन्होंने देश की मिट्टी से प्रेम किया, भारत के स्वरूप को आत्मसात किया; देश-प्रेम तथा देश-गौरव के प्रतीक नेतृत्व को श्रद्धा दी तथा जनता-जनार्दन की प्रगति को रेखांकित किया। उनकी रचनाओं 'नये साल की साँझ', 'विजयी दशमी', 'इन्दुमती' आदि में देश-प्रेम का ही दर्शन होता है।

आज़ादी के लिए अग्रसर जनता का एक चित्र देखिए :-

"हो एक प्राण, हो एक चरण, हो एक दिशा ज़नता निकली
इतिहास सूर्य के अश्व मुड़े, युग-जीवन ने करवट बदली
नयनो में अग्नि-शिखाएँ हैं, मुख पर मानवता का चंदन
जनता-जनार्दन आज बढ़ीं करने आजादी का बंदन।

-- (एशिया की आग)

कवि ने 'पन्द्रह अगस्त : १९४७' शीर्षक कविता में देश के पहरुओं को सचेत करते हुए कहा है :-

"आज जीत की रात पहरुए, सावधान रहना,
खुले देश के द्वार, अचल दीपक समान रहना।"

(घ) युगानुभूति-- समाज में व्याप्त शोषण, अत्याचार-अनाचार, आर्थिक विसंगति, सामन्ती वैभव, साम्राज्यवादी दृष्टि और उसके कुफल को कवि माथुर ने देखा-परखा था। उनकी रचनाओं में इन स्थितियों का स्वाभाविक कथन मिलता है। 'आत्मा पर बैठ विषधर- से सामंती शासन' और 'छाती पर रखे हुए साम्राज्यवाद के रक्त-कलश' की पीड़ा का अनुभव कवि ने किया था और उसे प्रसन्नता थी कि उसने सबके साथ मिलकर जीवन की ज्वाला में सदियों का पाप जला दिया। वह कह उठा :-

"हमने जीवन की ज्वाला में पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है यह कुलिश नवीन अस्थियों का"।

कवि माथुर ने पीड़ित मानव के संघर्षशील व्यक्तित्व को पहचाना है तथा इच्छा की है :-

"इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान।
दुख-दर्द, अभाव भोगकर भी जो झुके नहीं,
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान।"

गिरिजाकुमार माथुर का काव्य अनुभूति की दृष्टि से तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही, वह कला-शिल्प अर्थात् अभिव्यक्ति के मानदण्ड पर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है।

कला-शिल्प :- शिल्पगत विविध नये प्रयोगों के कारण गिरिजा कुमार माथुर नयी कविता के कवियों में शीर्षस्थ थे। उनकी रचनाओं में भाषागत नये प्रयोग हैं; नये प्रतीकों, बिम्बों और अलंकारों का संयोजन है तथा छन्द के विविध रूप हैं। ब्रजभाषा में प्रारम्भ में रचना करने के बाद उन्होंने खड़ी बोली में परिनिष्ठित शब्दावली का व्यवहार करते हुए कविताएँ लिखीं। तद्भव शब्दों के स्वाभाविक प्रयोग को भी उन्होंने पूरी तरह स्वीकार किया। भाषा प्रयोग के दोनों रूप देखिए :-

(१) परिनिष्ठित शब्दावलीयुक्त भाषा-- "नयनों में अग्नि-शिखाएँ"

(२) तद्भव शब्दयुक्त भाषा-- "बड़ा काजल आँजा है आज"

भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का भी कवि माथुर ने स्वाभाविक प्रयोग किया है, यथा- 'सनसनाती साँझ सूनी'; 'काला नाग पालना' आदि ।

नये प्रतीक :- (१) "कोटि दीप जलते थे मन में,
कितने मरु तपते यौवन में"

इस कविता में 'दीप' और 'मरु' का प्रयोग दर्शनीय है।

(२) "एटम और उद्जन बम हैं
नभगामी महलों के कर में"

जैसी पंक्तियों में 'एटम' और 'उद्जन बम' जैसे वैज्ञानिक प्रतीक प्रयुक्त हैं।

बिम्ब-विधान :- कवि माथुर की कविताओं में विभिन्न प्रकार के बिम्ब उभर कर आये हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

"फैली हैं काजल-सी चिकनी चौड़ी सड़कें"

अलंकार-प्रयोग:-

उपमा-- 'हिमालय-सी बाहें'; 'झांझ-सा बीहड़' आदि ।

रूपक-- "जिसे समय का दीपक काट नहीं पाया।"

उत्प्रेक्षा-- "बज्र बन धँसे हैं वे तेरे इस्पात-चिह्न,
मानो पत्थर भी गल के मोम बन गया तब"

मानवीकरण, रूपकातिशयोक्ति आदि का सहज प्रयोग भी कवि माथुर ने किया है। उनकी रचनाओं में तुकान्त, तुकमुक्त, मात्रिक, मुक्तवृत्त आदि छन्दों का प्रयोग है। भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही आधार पर यह कहा जा सकता है कि गिरिजा कुमार माथुर एक श्रेष्ठ कवि थे।



'मंजीर' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ प्रणय, विरह, हर्ष, रोमांच और विषाद भाव को व्यक्त करती हैं, किन्तु कुछ कविताओं में जीवन और जगत की समस्याओं तथा ऐतिहासिक बोध का भी प्रकाशन है। संग्रह की कुछ कविताओं में कवि का छायावादी रूप भी झलकता दिखायी पड़ा है, पर छन्द-मुक्त रचनाओं की प्रतीक-योजना, बिम्ब-विधायिनी शक्ति तथा अन्य विशेषताओं के कारण यह संग्रह भी गिरिजा कुमार माथुर के नव्य प्रयोग का ही सूचक है।

१६४३ में कवि माथुर की बारह कविताओं को प्रथम 'तार-सप्तक' में स्थान मिला। उनकी प्रशस्ति के मूल में इसका अत्यधिक योगदान था। इनमें से कुछ शीर्षक हैं- 'पानी के बादल' 'क्वार की दोपहरी', 'भीगा दिन', 'अधूरा गीत', 'बुद्ध' आदि। १६४६ ई० में 'नाश और निर्माण' शीर्षक दूसरा काव्य-संग्रह पाठकों के सामने आया। गिरिजा कुमार माथुर का तीसरा काव्य-संग्रह 'धूप के धान' १६५५ में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में ४५ कविताएँ हैं। इनमें कुछ कविताएँ गीत शैली में लिखित रूमानी भाव की हैं, पर अधिकांश मानववादी विचारधारा की पोषक हैं, यथा- 'एशिया का जागरण', 'पहिये', 'धारादीप' आदि।

१६६१ ई० में कवि माथुर की कविताओं का चौथा संग्रह 'शिला पंख चमकीले' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में कुल २५ कविताएँ संकलित हैं। १६६८ में उनका पाँचवाँ संकलन सामने आया। इसका शीर्षक है- 'जो बँध न सका'। इस संग्रह में कवि की ६३ रचनाओं को स्थान मिला है। कवि ने इसे तीन खण्डों में विभाजित किया है - (१) 'इतिहास की पीड़ा', (२) 'कालदृष्टि', (३) 'प्रतिबिम्बों की लय'। प्रथम खण्ड में २३ कविताएँ हैं। इनमें आधुनिक विषमताओं का चित्र उपस्थित करते हुए कवि ने त्रस्त मानव का यथार्थ बिम्ब उभारा है। द्वितीय खण्ड की छः कविताओं में प्रतीकात्मकता अधिक है। इनमें देश की अपेक्षा काल के बिम्बों को प्रस्तुत करने में कवि ने रुचि ली हैं। तीसरे खण्ड की कविताएँ अधिकांशतः रूमानी कल्पना से समन्वित हैं।

गिरिजा कुमार माथुर की सभी काव्य-कृतियों में नये उपमानों, प्रतीकों, बिम्बों तथा छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसीलिए वे नये कवियों के प्रकाश-स्तंभ बन गये थे।

भावपक्ष :- गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में प्रेम-भावना, प्रकृति-प्रेम, देशप्रेम, युगानुभूति आदि का उज्ज्वल स्वरूप देखने को मिलता है। उदाहरण प्रस्तुत है :-

(क) प्रेम-भावना-- कवि माथुर की प्रेम-मूलक कविताओं में रूप वर्णन, संयोग भावना तथा विरहानुभूति के मनोरम चित्र मिलते हैं। रूप-वर्णन का स्वरूप देखिए :-

"बड़ा काजल आँजा है आज
भरी आँखों में हल्की है लाज।"

कवि को संयोग-समय की याद बराबर आती रहती थी। सिल्क के कुर्ते में लिपटे रेशमी चूड़ी के टुकड़े को गिरते देख वह कह उठा है :-

"दूज कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगी तुम्हारी सब लज्जित तस्वीरें
सेज सुनहली
कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना
निकल गयीं सपने जैसी वे मीठी रातें।"

'कसे हुए बधंन' का संयोग-सुख लेनेवाला कवि विरह की अनुभूति के क्षणों में मौन नहीं रह पाता है। स्मृति में वह डूब जाता है और पूछ बैठता है :-

"आज भूल जाऊँ मैं कैसे ग्राम बालिका-सा अल्हड़पन।"

(ख) प्रकृति-प्रेम-- कवि माथुर प्रकृति के उपासक थे। बुन्देलखण्ड के परिवेश ने उन्हें

प्रकृति-प्रेमी बना दिया था, फलतः उनकी रचनाओं में कहीं प्रकृति आलंबन रूप में, कहीं सचेतन रूप में और कहीं उद्दीपन रूप में आयी है। आलंबन रूप का कथन देखिए :-

"लाल पत्थर, लाल मिट्टी, लाल कंकड़, लाल बजरी
लाल फूले ढाक के बन, डाँग गाती फाग कजरी।
सनसनाती साँझ सूनी वायु का कठला खनकता
झींगुरों की खंजड़ी की झाँझ सा बीहड़ झनकता।"

'ढाकबनी' शीर्षक इस कविता में बुन्देलखण्ड की प्रकृति का वर्णन करते हुए उसके आलंबन रूप का कथन कवि ने नये रूप में किया है। 'सनसनाती साँझ' 'वायु का कठला' आदि की व्यंजना तथा **'झाँझ-सा बीहड़'** की उपमा सर्वथा नवीन है।

प्रकृति का मानवीकरण कर उसका मनोरम चित्र प्रस्तुत करते हुए एक स्थान पर कहा गया है:-

"शर्दियों की धूप
उजले ऊन की मृदुशाल पहने
....
झाँकती है झझरियों से"

यह धूप 'गृहणी सरीखी मंद पग धर' 'चाय के लघु टेबुलों पर' आ गयी है। प्रकृति का सचेतन रूप प्रस्तुत करने में निश्चय ही गिरिजाकुमार माथुर अद्वितीय थे।

(ग) देश-प्रेम-- गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं में देश-प्रेम के अनेक चित्र उभर कर आये हैं। उन्होंने देश की मिट्टी से प्रेम किया, भारत के स्वरूप को आत्मसात किया; देश-प्रेम तथा देश-गौरव के प्रतीक नेतृत्व को श्रद्धा दी तथा जनता-जनार्दन की प्रगति को रेखांकित किया। उनकी रचनाओं 'नये साल की साँझ', 'विजयी दशमी', 'इन्दुमती' आदि में देश-प्रेम का ही दर्शन होता है।

आज़ादी के लिए अग्रसर जनता का एक चित्र देखिए :-

"हो एक प्राण, हो एक चरण, हो एक दिशा जनता निकली
इतिहास सूर्य के अश्व मुड़े, युग-जीवन ने करवट बदली
नयनो में अग्नि-शिखाएँ हैं, मुख पर मानवता का चंदन
जनता-जनार्दन आज बढ़ीं करने आजादी का बंदन।

-- (एशिया की आग)

कवि ने 'पन्द्रह अगस्त : १९४७' शीर्षक कविता में देश के पहरुओं को सचेत करते हुए कहा है :-

"आज जीत की रात पहरुए, सावधान रहना,
खुले देश के द्वार, अचल दीपक समान रहना।"

(घ) युगानुभूति-- समाज में व्याप्त शोषण, अत्याचार-अनाचार, आर्थिक विसंगति, सामन्ती वैभव, साम्राज्यवादी दृष्टि और उसके कुफल को कवि माथुर ने देखा-परखा था। उनकी रचनाओं में इन स्थितियों का स्वाभाविक कथन मिलता है। 'आत्मा पर बैठ विषधर- से सामंती शासन' और 'छाती पर रखे हुए साम्राज्यवाद के रक्त-कलश' की पीड़ा का अनुभव कवि ने किया था और उसे प्रसन्नता थी कि उसने सबके साथ मिलकर जीवन की ज्वाला में सदियों का पाप जला दिया। वह कह उठा :-

"हमने जीवन की ज्वाला में पाप जलाया सदियों का
इस महायज्ञ से निकला है यह कुलिश नवीन अस्थियों का"।

कवि माथुर ने पीड़ित मानव के संघर्षशील व्यक्तित्व को पहचाना है तथा इच्छा की है :-

"इस लाली का मैं तिलक करूँ हर माथे पर
दूँ उन सबको जो पीड़ित हैं मेरे समान।
दुख-दर्द, अभाव भोगकर भी जो झुके नहीं,
जो अन्यायों से रहे जूझते वक्ष तान।"

गिरिजाकुमार माथुर का काव्य अनुभूति की दृष्टि से तो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है ही, वह कला-शिल्प अर्थात् अभिव्यक्ति के मानदण्ड पर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है।

कला-शिल्प :- शिल्पगत विविध नये प्रयोगों के कारण गिरिजा कुमार माथुर नयी कविता के कवियों में शीर्षस्थ थे। उनकी रचनाओं में भाषागत नये प्रयोग हैं; नये प्रतीकों, बिम्बों और अलंकारों का संयोजन है तथा छन्द के विविध रूप हैं। ब्रजभाषा में प्रारम्भ में रचना करने के बाद उन्होंने खड़ी बोली में परिनिष्ठित शब्दावली का व्यवहार करते हुए कविताएँ लिखीं। तद्भव शब्दों के स्वाभाविक प्रयोग को भी उन्होंने पूरी तरह स्वीकार किया। भाषा प्रयोग के दोनों रूप देखिए :-

(१) परिनिष्ठित शब्दावलीयुक्त भाषा-- "नयनों में अग्नि-शिखाएँ"

(२) तद्भव शब्दयुक्त भाषा-- "बड़ा काजल आँजा है आज"

भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरों का भी कवि माथुर ने स्वाभाविक प्रयोग किया है, यथा- 'सनसनाती साँझ सूनी'; 'काला नाग पालना' आदि ।

नये प्रतीक :- (१) "कोटि दीप जलते थे मन में,
कितने मरु तपते यौवन में"

इस कविता में 'दीप' और 'मरु' का प्रयोग दर्शनीय है।

(२) "एटम और उद्जन बम हैं
नभगामी महलों के कर में"

जैसी पंक्तियों में 'एटम' और 'उद्जन बम' जैसे वैज्ञानिक प्रतीक प्रयुक्त हैं।

बिम्ब-विधान :- कवि माथुर की कविताओं में विभिन्न प्रकार के बिम्ब उभर कर आये हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है -

"फैली हैं काजल-सी चिकनी चौड़ी सड़कें"

अलंकार-प्रयोग:-

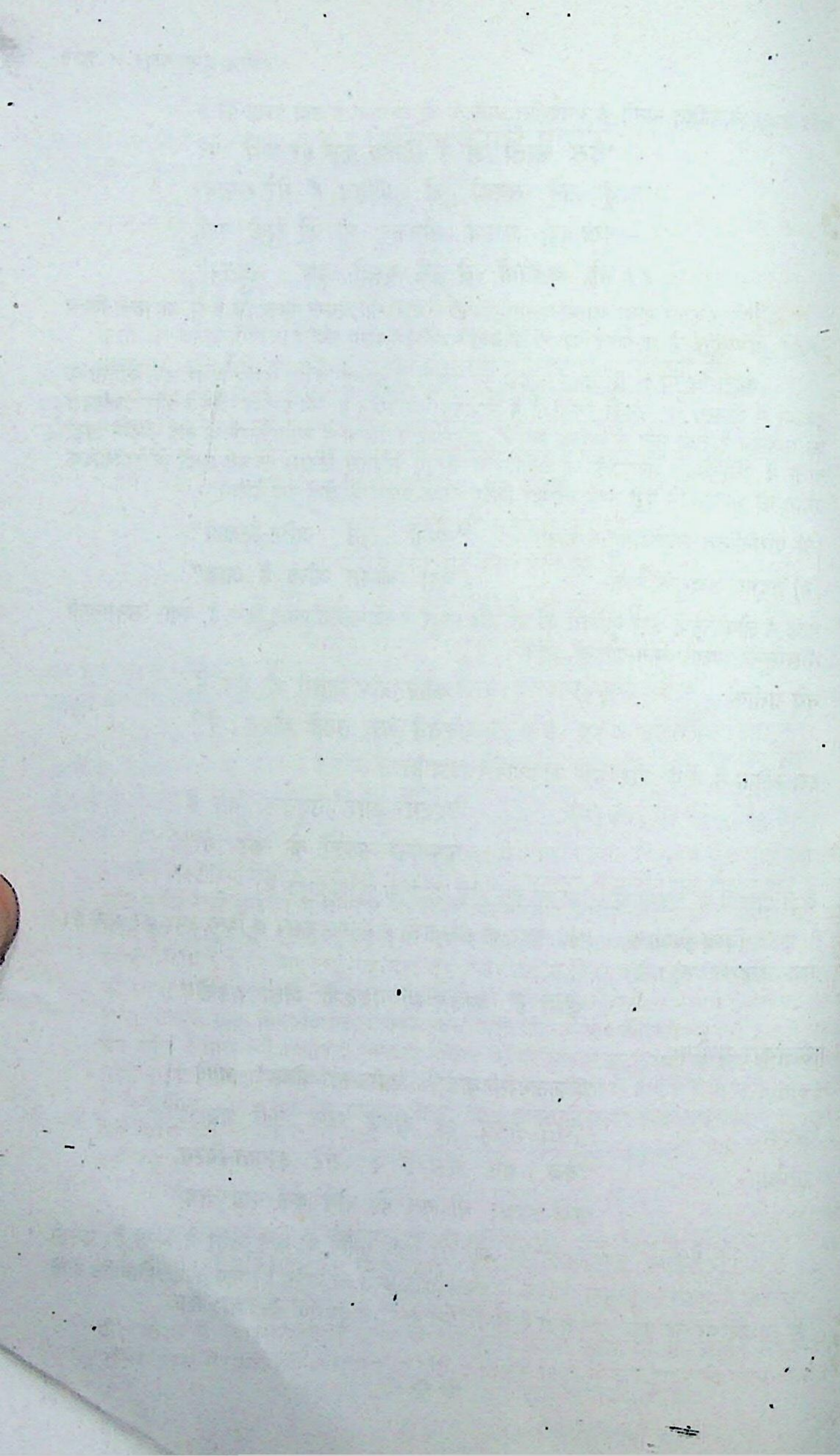
उपमा-- *'हिमालय-सी बाहें'; 'झांझ-सा बीहड़' आदि ।*

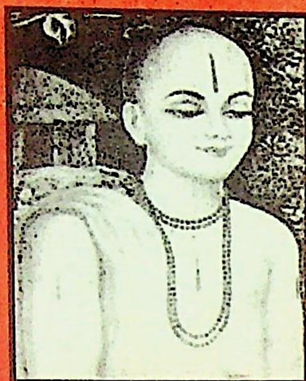
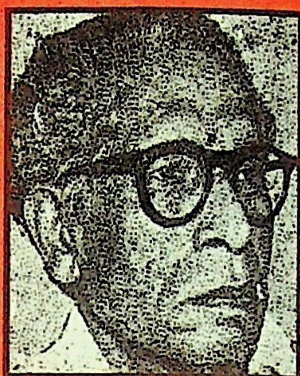
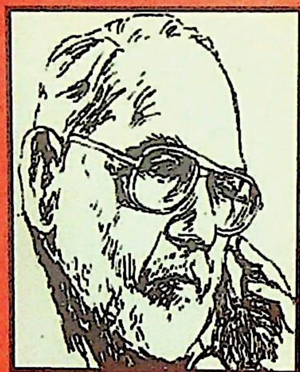
रूपक-- *"जिसे समय का दीपक काट नहीं पाया।"*

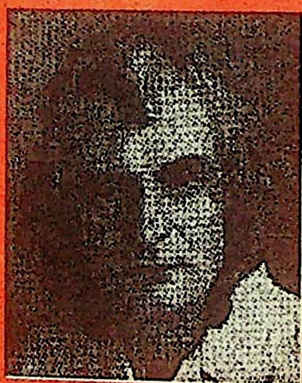
उत्प्रेक्षा-- *"बज्र बन धँसे हैं वे तेरे इस्पात-चिह्न,*
मानो पत्थर भी गल के मोम बन गया तब"

मानवीकरण, रूपकातिशयोक्ति आदि का सहज प्रयोग भी कवि माथुर ने किया है। उनकी रचनाओं में तुकान्त, तुकमुक्त, मात्रिक, मुक्तवृत्त आदि छन्दों का प्रयोग है। भाव और अभिव्यक्ति दोनों ही आधार पर यह कहा जा सकता है कि गिरिजा कुमार माथुर एक श्रेष्ठ कवि थे।








संजय बुक सेन्टर
गोलघर, वाराणसी